हाँ, किसी देवदूत के धोखे से इस इन्द्रपुरी मे जो कुछ दिन के लिए मुझे स्थान मिल गया था, सो आज अनधिकार-प्रवेश की सारी लज्जा सिर पर धारण कर मुझे यहाँ से सदा के लिए निर्वासित होना पड़ेगा।

इसके अनन्तर परेश बाबू के कोठे का दरवाज़ा पार करते ही उसने ललिता को देखा, जिससे उसकी इच्छा हुई कि ललिता से इस अन्तिम बिदा के समय मिल लूँ और उसके आगे अपमान का बोझ सिर पर लेकर पूर्व परिचय के सम्बन्ध-सूत्र को अच्छी तरह तोड़कर ही जाऊँ। किन्तु किस तरह इसमे सफलता होगी, इसका एक भी उपाय उसे न सूझा। इससे वह ललिता के मुँह की ओर देखे बिना ही चुपचाप हाथ जोड़कर चला गया।

कुछ दिन पूर्व यही विनय परेश बाबू के घर से बिलकुल अपरिचित था, उनके घर से इसका कोई सम्बन्ध न था। पहले भी वह उस घर के बाहर था। आज भी उस घर के बाहर खड़ा हुआ है। किन्तु यह अन्तर कैसा। उस बाहर मे और इस बाहर मे इतना अन्तर क्यों। वह बाहर आज ऐसा सूना क्यों दीखता है? उसके पूर्वकाल के जीवन मे तो कोई विषमता नही आई है। किसी तरह की क्षति दिखाई नही देती। उसके गोरा और आनन्दी तो विद्यमान हैं। किन्तु तो भी उसका मन इस तरह छटपटाने लगा जैसे पानी से बाहर सूखी धरती पर मछली आ पड़ी हो। वह जिधर जाता है उधर

ही अपने को निराधार पाता है। मानों उसके जीवन का सहारा किसी ने छीन लिया हो। उसे सारा संसार अन्धकारमय दीखता है। अनेक प्रकार के मकानों से भरे हुए इस जनाकीर्ण राजपथ मे विनय सर्वत्र ही अपने जीवन के, पीलापन लिये हुए, सर्वनाश की एक धुँधली सी छाया देखने लगा। इस विश्वव्यापिनी उदासीनता और शून्यता मे वह आपही एक अद्‌भुत जीव सा हो गया। वह क्या था और क्या हो रहा! क्यों ऐसा हुआ, कब हुआ, कैसे हुआ, इन बातो को वह उस हृदयहीन सूने स्थान से बार-बार पूछने लगा।

विनय बाबू! विनय बाबू!

ये शब्द कान मे पड़ते ही वह चौंक उठा। पीछे घूमकर देखा तो सतीश! विनय ने झट उसे गले से लगा लिया। कहा—क्या है भैया! क्या है मित्र! विनय का कण्ठ मानो भर आया। परेश बाबू के घर मे यह बालक भी कितने माधुर्य और प्यार की चीज़ था। विनय को आज इस बात का जैसा अनुभव हुआ है वैसा इसके पूर्व प्रायः कभी नहीं हुआ।

सतीश ने कहा—आप मेरे यहाँ क्यों नही जाते? कल लावण्य और ललिता बहन की मेरे यहाँ जेवनार होगी। मौसी ने आपको नेवता देने के लिए मुझको भेजा है।

विनय ने समझा, मौसी शायद मेरे सम्बन्ध की कोई बात नहीं जानती। उसने कहा—मौसी से मेरा प्रणाम कह देना। आज मैं जा नहीं सकूँगा।

सतीश ने बड़े प्यार से विनय का हाथ पकड़कर कहा—क्यो नही जा सकोगे? आपको जाना ही होगा। मैं किसी तरह आपको न छोड़ूँगा।

सतीश के इतने अधिक अनुरोध का एक कारण था। उसके स्कूल के मास्टर ने उसे "पशुओं के प्रति व्यवहार" पर एक निबन्ध लिख लाने को दिया था। उस निबन्ध-रचना मे उसने पचास नम्बरों मे ४२ पाये थे। उसकी प्रबल इच्छा थी कि वह लेख विनय को दिखलावे। वह जानता था कि विनय बहुत बड़ा विद्वान् और विचारवान् पुरुष है। उसने मन मे समझ रक्खा था कि विनय के सदृश मर्मज्ञ लोग ही मेरे लेख का मूल्य समझ सकेंगे। यदि उसके लेख की उत्तमता को विनय स्वीकार कर ले तो नासमझ लीलावती—सतीश की प्रतिभा को मन्द बताने पर—मूर्ख समझी जायगी, कोई उसकी बात पर विश्वास न करेगा। इसी कारण मौसी से कहकर सतीश ने ही निमन्त्रण देने की बात ठानी थी। उसकी यही इच्छा थी कि विनय जब मेरे लेख पर अपनी सम्मति प्रकट करे तब मेरी बहनें, लावण्य और ललिता, भी वहाँ रहे।

विनय निमन्त्रण मे न जा सकेगा, यह सुनकर सतीश बड़ा ही उदास हुआ।

विनय ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—सतीश बाबू, तुम हमारे घर चलो।

सतीश की जेब ही मे वह लेख था, इसलिए वह विनय

के बुलावे को नामञ्जूर न कर सका। कवियशः-प्रार्थी वालक, अपनी पाठशाला की समीपीय परीक्षा के समय, समय को नष्ट करने का अपराध स्वीकार करके ही विनय के घर गया।

विनय ने किसी तरह उसे छोड़ना न चाहा, मानों वह इसी से वाध्य होकर उसके साथ हो लिया! विनय ने उसका लेख तो सुना ही किन्तु जो प्रशंसा की उससे समालोचक की यथार्थ रूप से निरपेक्षता प्रकट न हुई। प्रशंसा के साथ-साथ विनय ने वाज़ार से जल-पान के लिए कुछ मँगाकर उसे खिलाया।

इसके बाद सतीश को अपने साथ ले वह उसके घर तक पहुँचाकर, कुछ अनावश्यक व्यग्रता का भाव दिखाकर, वोला—सतीश वावू, तो मैं अव जाता हूँ।

सतीश ने उसका हाथ पकड़कर कहा—यह न होगा। आप मेरे घर चलिए।

आज इस अनुनय का कोई फल न हुआ। सतीश हार मानकर अकेला वहाँ से अपने घर को गया।

विनय स्वप्नावस्थित की भाँति चलते-चलते आनन्दी के घर आ पहुँचा। किन्तु वहाँ उसे न पाया। तब वह छत के ऊपर उस सूने कोठे में गया जिसमे गौरमोहन सोता था। इस घर मे उसने बाल्यकाल मे मित्र गौरमोहन के साथ कितने ही दिन और कितनी ही रातें सुख से विताई थी। इस कमरे मे कितने ही प्रेमालाप, कितने ही हास्य-विनोद, कितने ही शुभ सङ्कल्प

और कितने ही गम्भीर विषयों की आलोचना होती थी। कितना प्रेम-कलह और फिर प्रेमामृत के द्वारा ही उस कलह की शान्ति होती थी। इस कमरे मे पैर रखते ही विनय को इन सब बातों का स्मरण हो आया और उसने अपने पूर्व जीवन के भीतर उसी तरह अपने को भूलकर प्रवेश करना चाहा। किन्तु यह कई दिनों का नया परिचय बीच मे राह रोककर खड़ा हो गया। उसने विनय को आगे बढ़ने न दिया। जीवन का केन्द्र कब नियत स्थान से फिसल पड़ा और जीवन के निश्चित मार्ग मे कब क्या परिवर्तन हुआ, यह इस समय तक विनय को स्पष्ट रूप से ज्ञात न था। आज जब उस विषय मे कोई सन्देह न रहा तब वह डर गया।

छत के ऊपर कपड़े सूखने को डाले गये थे। तीसरे पहर को, धूप कम होने पर, जब आनन्दी उन्हे उठाने आई तब गौर-मोहन के कोठे मे विनय को देखकर वह अचम्भे मे आ गई। आनन्दी ने झट उसके पास आकर उसकी पीठ पर हाथ रख-कर कहा—विनय, तुम्हारा मुँह क्यों सूख गया है? तुम ऐसे उदास क्यो दीखते हो? ठीक-ठीक कहो बेटा।

विनय उठ बैठा और बोला—माँ, मैं जब पहले परेश बाबू के घर जाने-आने लगा तब गौर को मेरा वहाँ जाना-आना अच्छा न लगता था, वह मुझ पर क्रोध करता था। उसके क्रोध को मैं तब अयुक्त समझता था, किन्तु उसका क्रोध अयुक्त नहीं था, मेरी ही मूर्खता थी।

आनन्दी ने मुस्कुराकर कहा—तू तो मेरा चतुर लड़का है। इसी से मैं तुझसे कभी कुछ नहीं कहती। अब इस बीच मे तुमने अपने भीतर मूर्खता का कौन सा लक्षण देखा?

विनय ने कहा—माँ, हमारा समाज और समाजों से एकदम जुदा है, इस बात को मैं कभी न सोचता था। उन सबों के बन्धुत्व व्यवहार और भेंट-मुलाक़ात से मुझे बड़ा आनन्द होता था और कुछ उपकार भी जान पड़ता था। इसी से मैं उनके पास एकदम खिंच गया था। किन्तु इस बात को मैंने एक बार भी कभी न सोचा था कि यह घनिष्ठता किसी दिन मेरे लिए विशेष चिन्ता का कारण होगी।

आनन्दी—तुम्हारी बात सुनकर अब भी तो मेरे मन मे किसी चिन्ता का उदय नहीं होता।

विनय ने कहा—माँ, तुम नहीं जानती कि मैं समाज मे उन सबों के प्रति एक भारी अशान्ति फैलाने का अपराधी हुआ हूँ। लोगों ने इस प्रकार निन्दा करना आरम्भ कर दिया है कि मैं अब वहाँ जाने योग्य—

आनन्दी बोली—गोरा एक बात बार-बार मुझसे कहता था, वह मुझे ख़ूब याद है। वह कहता था कि जहाँ भीतर किसी जगह कोई अन्याय छिपा है, वहाँ बाहर शान्ति रहने पर भी अमङ्गल की आग सुलगती रहती है और वह किसी दिन भभककर अवश्य हानि पहुँचाती है। यदि उनके समाज मे अशान्ति फैली है तो तुम्हे अनुताप करने की कोई

आवश्यकता नहीं। देखना, इससे अच्छा ही फल होगा। हाँ, तुम्हे अपना व्यवहार शुद्ध रखना चाहिए।

इसी बात का तो विनय के मन मे भारी खटका था। मेरा अपना व्यवहार शुद्ध है या नहीं, यह ठीक-ठीक उसकी समझ मे न आता था। इसका फ़ैसला वह आप न कर सकता था। ललिता जब अन्य समाज की है, उसके साथ विवाह होना जब सम्भव नहीं है तब उस पर विनय का अनुराग होना ही, एक गुप्त पाप की तरह, उसे सन्ताप दे रहा था और इस पाप के दुस्तर प्रायश्चित्त का जो समय उपस्थित हुआ है, इस बात को सोचकर वह और भी व्याकुल हो रहा था।

विनय सहसा बोल उठा—माँ, शशिमुखी के साथ जो मेरे विवाह का प्रस्ताव हुआ था वह हो जाने ही से अच्छा होता। जहाँ मेरा अधिकार है वहीं किसी तरह मेरा बद्ध हो रहना उचित है। मैं इस तरह बद्ध होकर रहना चाहता हूँ जो वहाँ से फिर किसी तरह हिल न सकूँ।

आनन्दी ने हँसकर कहा—समझ गई, तुम शशिमुखी को अपने घर की बहू बनाकर नहीं, किन्तु उसे घर की साँकल बनाकर रखना चाहते हो। शशि का ऐसा भाग्य कहाँ!

इसी समय दरवान ने आकर ख़बर दी, परेश बाबू के घर की दो स्त्रियाँ आई हैं। सुनते ही विनय की छाती धड़क उठी। उसने समझा, मुझको सावधान करने ही के लिए वे

दोनों आनन्दी से शिकायत करने आई हैं। उसने खड़े होकर कहा—तो मैं अब जाता हूँ।

आनन्दी ने झट खड़ी हो उसका हाथ पकड़कर कहा—विनय, अभी मत जाओ। नीचे के कमरे में बैठो।

नीचे जाते समय विनय यों मन ही मन कहने लगा—इसकी तो कोई आवश्यकता न थी। जो हो गया सो हो गया। मैं तो मर जाने पर भी अब वहाँ नहीं जा सकता। अपराध का उत्ताप जब आग की तरह एकाएक हृदय मे धधक उठता है तब उस उत्ताप से जल मरने पर भी अपराधी की वह शोकाग्नि शीघ्र नहीं बुझती।

सड़क के सामने नीचे गौरमोहन की जो बैठक थी उसमे जब विनय जा रहा था उसी समय महिम अपनी तोंद को चपकन के बटन-बन्धन से मुक्त करते-करते आफ़िस से अपने घर लौट आया। उसने विनय का हाथ पकड़कर कहा—वाह! विनय बाबू तो भले मौक़े पर मिल गये। मै तुमको कई दिनों से खोज रहा था।—यह कहकर वह विनय को बड़े आदर से गौर की बैठक मे ले गया और उसे एक कुरसी पर बिठाकर आप भी बैठा। पाकेट से पान का डिब्बा निकालकर उसने एक बीड़ा विनय को दिया।

"अरे कोई है! तम्बाकू भरकर ले आओ।" नौकर को यह आज्ञा दे उसने काम की बात चलाई। पूछा—विनय बाबू, उस विषय में तुमने क्या निश्चय किया?

अब तो विनय का भाव पहले से बहुत कोमल दिखाई पड़ा। यद्यपि विशेष उत्साह लक्षित न हुआ तथापि यह भी नहीं कि बात टाल देने की कोई चेष्टा दिखाई दी हो। तब महिम ने एकबारगी विवाह का दिन मुहूर्त पक्का करना चाहा।

विनय ने कहा—गौर बाबू आ ले।

महिम ने आश्वस्त होकर कहा—उसके आने मे तो अभी कई दिनों की देर है। अच्छा, कुछ जलपान करोगे तो मँगाऊँ? कहो क्या कहते हो? आज तुम्हारा मुँह बहुत सूखा दीखता है। स्वास्थ्य मे किसी तरह की गड़बड तो नहीं हुई?

विनय से जलपान का आग्रह कर चुकने पर महिम अपनी क्षुधा निवारण करने हवेली के भीतर गया। गौर की टेबल पर से कोई किताब खींचकर विनय उसके पत्ते उलटाने लगा। इसके बाद किताब को टेबल पर फेककर कमरे के भीतर टहलने लगा।

नौकर ने आकर कहा—माँ बुलाती हैं।

विनय ने पूछा—किसको?

नौकर—आपको।

विनय—वहाँ और लोग है?

नौकर—जी हाँ।

परीक्षा-घर की ओर विद्यार्थी जैसे जाता है वैसे ही विनय ऊपर को चला। छत के ऊपर पैर रखते ही सुशीला ने पहले ही की तरह अपने स्वाभाविक स्निग्ध कण्ठ से कहा—"आइए,

विनय बाबू।" यह सुधा-सिञ्चित स्वर सुनकर विनय ने मानो आशातीत धन पाया।

विनय जब घर के भीतर आया तब उसको देखकर सुशीला और ललिता को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होने सोचा कि विनय को न जाने क्या हो गया है, जिसका चिह्न इस थोड़े से ही समय मे इसके चेहरे पर झलकने लगा है। जैसे किसी सरस श्यामल खेत पर टिड्डी-दल के उतर पड़ने से वह सूख जाता है, उसी खेत की तरह विनय का सहास्य मुख फीका हो गया है। ललिता के मन मे वेदना और करुणा के साथ-साथ कुछ आनन्द का भी आभास दिखाई दिया।

और दिन होता तो ललिता एकाएक विनय के साथ बात न करती—किन्तु आज जैसे ही विनय घर मे आया वैसे ही उसने कहा—विनय बाबू, आप से एक बात का विचार करना है।

विनय के हृदय मे यह शब्द आनन्द के रूप मे लहराने लगा। वह मारे ख़ुशी के भौंचक सा हो रहा। उसकी मुरझाई हुई आशा-लता ललिता के शीतल वाक्य-जल से एकाएक लहलहा उठी। विनय के उदास चेहरे पर तुरन्त प्रसन्नता की झलक दिखाई देने लगी।

ललिता ने कहा—हम कई बहनें मिलकर एक छोटी सी कन्या-पाठशाला खोलना चाहती है।

विनय ने उत्साहित होकर कहा—कन्या-पाठशाला स्थापित करना तो बहुत दिन से मेरे जीवन का एक सङ्कल्प है।

ललिता—आपको इस कार्य में हमारी सहायता करनी पड़ेगी।

विनय—मुझसे जहाँ तक हो सकेगा, पीछे न हटूँगा। मुझे क्या करना होगा, बताइए।

ललिता—हम लोगों को ब्राह्म समझकर हिन्दू लोग हमारा विश्वास नहीं करते। इस विषय में आपको कुछ भार अपने ऊपर लेना होगा।

विनय ने प्रसन्न होकर कहा—आप अन्देशा न करें। मैं वह भार लेने को तैयार हूँ।

आनन्दी—हाँ, यह अवश्य भार लेगा! लोगों को बातों में भुलाकर वश में कर लेना यह ख़ूब जानता है।

ललिता—पाठशाला का काम किस नियम से करना होगा, उसके लिए क्या सामान दरकार है, समय नियत करना, क्लासबन्दी करना, किस क्लास में कौन सी किताब पढ़ाई जायगी—ये सब काम आप कीजिएगा।

ये सब काम भी विनय के लिए कुछ कठिन नहीं है। किन्तु वह कुछ सोचकर एकाएक ठिठक गया। शिवसुन्दरी ने जो अपनी लड़कियों के साथ उसे मिलने को मना कर दिया है और समाज में उन सबों के विरुद्ध जो आन्दोलन हो रहा है, इसकी कुछ भी ख़बर क्या ललिता को नहीं है। ऐसी हालत में विनय यदि ललिता का अनुरोध रखने की प्रतिज्ञा करे तो वह अन्याय या ललिता के लिए अनिष्ट तो न

होगा ? यह प्रश्न उसे आघात पहुँचाने लगा। इस ओर ललिता यदि किसी शुभ कार्य में उससे सहायता की प्रार्थना करे तो उस अनुरोध का यथासाध्य पालन करना विनय अपने जीवन का प्रधान उद्देश समझेगा। उसे अस्वीकार करने की शक्ति विनय में कहाँ ?

ललिता की बात से सुशीला को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। स्वप्न में भी उसे इसकी भावना न थी कि ललिता एकाएक इस तरह विनय से कन्या-पाठशाला के लिए अनुरोध करेगी। एक तो विनय के विषय में समाज में चारों ओर घोर आन्दोलन हो रहा है, उस पर फिर ऐसा बर्ताव ! ललिता सब बातें जान-बूझकर अपनी इच्छा से ऐसा काम करने को उद्यत हुई है, यह देख सुशीला डर गई। ललिता के मन में विद्रोह का भाव जाग उठा है, यह वह समझ गई। किन्तु क्या बेचारे विनय को इस विद्रोह में सम्मिलित करना उचित है ? सुशीला अपने मन के आवेश को न रोक सहसा बोल उठी—इस विषय में एक दफ़े पिताजी से सलाह कर लेना आवश्यक है। विनय बाबू को कन्या-पाठशाला की इन्सपेक्टरी का पद पाने की अभी पूरी आशा न करनी चाहिए।

सुशीला ने जो चतुराई के साथ इस प्रस्ताव में बाधा डाली, यह विनय समझ गया। इससे उसके मन की आशङ्का और भी बढ़ गई। यह बात भली भाँति जान पड़ी कि जो सङ्कट उपस्थित हुआ है उसे सुशीला जानती है और ललिता से

भी वह छिपा नहीं है, तब ललिता क्यों इस तरह करती है। कुछ भी स्पष्ट ज्ञात नहीं होता।

ललिता ने कहा—पिताजी से तो पूछना ही होगा। विनय बाबू राज़ी हो तो पिताजी से पूछ लूँगी। वे कभी आपत्ति न करेंगे। उन्हें भी हमारे इस विद्यालय में योग देना होगा। आनन्दी की ओर देखकर कहा—आपको भी हम न छोड़ेंगी।

आनन्दी ने हँसकर कहा—मैं तुम्हारे स्कूल के घर को झाड़-बुहार आऊँगी, इससे अधिक काम मेरे द्वारा और क्या होगा।

विनय ने कहा—यही यथेष्ट होगा। स्कूल एकबारगी स्वच्छ हो जायगा।

सुशीला और ललिता के चले जाने पर विनय एकाएक पैदल ही ईडन-गार्डन की ओर चल दिया। महिम ने आनन्दी के पास आकर कहा—विनय मेरे उस प्रस्ताव पर बहुत कुछ राज़ी हो गया है। अब जहाँ तक हो सके शीघ्र काम कर लेना ही अच्छा है। क्या जाने फिर कहीं मति फिर जाय।

आनन्दी ने विस्मित होकर कहा—क्या कहते हो। विनय फिर कब राज़ी हुआ? मुझसे तो उसने कुछ नहीं कहा।

महिम—आज ही मेरे साथ उसकी बातचीत हो गई है। वह कहता है, गोरा के आने पर मुहूर्त्त स्थिर किया जायगा।

आनन्दी ने सिर हिलाकर कहा—महिम, मैं तुमसे कहती हूँ, तुमने ठीक नहीं समझा।

महिम—मेरी बुद्धि चाहे जितनी ही मोटी हो, किन्तु सीधी बात समझने के योग्य मेरी उमर ज़रूर हुई है, यह तुम निश्चय जानो।

आनन्दी—मै जानती हूँ, तुम मुझ पर क्रोध करोगे, किन्तु इस बात मे ज़रूर कोई न कोई बखेड़ा खड़ा होगा।

महिम ने मुँह लटकाकर कहा—बखेड़ा खड़ा करने से ही खड़ा हो जाता है।

आनन्दी—महिम, तुम जो कहोगे सब सहूँगी, किन्तु जिस बात से कोई उपद्रव होगा मै उसमे शामिल न हो सकूँगी। यह केवल तुम्हारी ही भलाई के लिए है।

महिम ने रुष्ट होकर कहा—मेरी भलाई की बात सोचने का भार यदि मेरे ही ऊपर रहने दो तो तुम्हे कोई बात सोचने-समझने की आवश्यकता न पड़े और मेरा भी इसी मे भला होगा। बल्कि शशिमुखी का ब्याह हो जाने पर फिर जहाँ तक तुमसे हो सके मेरी भलाई की चिन्ता करना। कहो क्या कहती हो?

आनन्दी ने इसका कुछ उत्तर न दे एक लम्बी साँस ली। महिम पाकेट से पान का डिब्बा निकालकर उसमे से एक बीड़ा पान ले मुँह में रख चबाते-चबाते चला गया।

परेश बाबू कुछ देर चुप रहकर बोले—सब बातों को भली भाँति सोचकर देखने से वे कभी राज़ी न होंगे।

ललिता का मुँह विवर्ण हो गया। वह अपने आँचल में बँधे हुए चाबियों के गुच्छे को हिलाने लगी।

अपनी बेटी की दुःख से भरी ऐसी दशा देख परेश बाबू का हृदय व्यथित हो गया। हम क्या कहकर उसे आश्वासन दें, यह उनकी समझ में न आया। कुछ देर बाद ललिता ने धीरे-धीरे सिर उठाकर कहा—पिताजी, तो हमारा यह स्कूल न चल सकेगा?

परेश—चलने में अभी अनेक बाधाएँ हैं। व्यर्थ चेष्टा करने जाकर हम लोग अप्रिय आलोचना के लक्ष्य बनेंगे।

आख़िर हरि बाबू की ही जीत होगी और अन्याय के आगे हार माननी होगी; ललिता के लिए इससे बढ़कर और दुःख कोई नहीं। इस विषय में वह अपने आपको छोड़ और किसी का कहना नहीं मान सकती। वह किसी अप्रिय व्यवहार की परवा नहीं करती, किन्तु अन्याय को कैसे सह सकेगी? वह धीरे-धीरे परेश बाबू के पास से उठ गई।

अपने कोठे में जाकर उसने देखा कि मेरे नाम की एक चिट्ठी डाक में आई है। हाथ के अक्षर देखकर वह समझ गई कि यह मेरी बाल्यसखी शैलकुमारी की लिखी है। वह विवाहिता है और अपने पति के साथ बाँकीपुर में रहती है।

चिट्ठी में लिखा था—तुम्हारे सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें सुनकर मन बहुत ख़राब हो गया था। कई दिनों से तुमको

पत्र लिखने का विचार कर रही थी, परन्तु समय नहीं मिलता था। परसों एक मनुष्य से (उसका नाम नहीं बता सकती) जो ख़बर मिली है उसे सुनकर कलेजा काँप उठा। यह सम्भव है, इसका मैं स्वप्न में भी विश्वास नहीं कर सकती। किन्तु जिन्होंने लिखा है वे एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनका अविश्वास करना भी कठिन है। किसी हिन्दू युवक के साथ तुम्हारा व्याह होने की सम्भावना है। तुम समाज-बन्धन तोड़कर उसके साथ—इत्यादि—मैं नहीं कह सकती, ये सब बाते कहाँ तक सत्य हैं।

क्रोध से ललिता का सर्वाङ्ग जल उठा। वह एक क्षण का भी विलम्ब न कर सकी। उसी समय उसने पत्र का उत्तर लिखा—ख़बर सच है या नहीं, यह जानने के लिए जो तुमने मुझसे प्रश्न किया है, यही मुझे आश्चर्य जान पड़ता है। ब्राह्म-समाज के किसी व्यक्ति ने जो तुमको ख़बर दी है उसके सत्या-सत्य की तुम जाँच करोगी! इतना अविश्वास? इसके अनन्तर किसी हिन्दू युवक के साथ मेरे व्याह होने की बात सुनकर तुम्हारा कलेजा काँप उठा, किन्तु मैं तुमसे सच कहती हूँ, ब्राह्मसमाज मे कोई कोई ऐसे सुविख्यात साधु युवक हैं जिनके साथ व्याह होने की आशङ्का वज्रपात के बराबर है और मैं ऐसे दो-एक हिन्दू युवकों को जानती हूँ जिनके साथ व्याह होना किसी भी ब्राह्मकुमारी के लिए गौरव का विषय है। इससे अधिक मैं एक बात भी तुमसे कहना नहीं चाहती।

इधर उस दिन परेश बाबू ललिता की चिन्ता से परेशान हो गये। वे अपना काम-धाम छोड़ चुप-चाप एकान्त मे बैठकर उन बातों को सोचने लगे। इसके बाद सोचते-सोचते वे धीरे-धीरे सुशीला के कमरे मे गये। परेश बाबू का चिन्तित मुँह देखकर सुशीला का हृदय व्यथित हो गया। वह जानती थी कि उनके मन में किस विषय की चिन्ता है और इस चिन्ता के कारण सुशीला भी कई दिनो से उद्विग्न हो रही थी।

परेश बाबू सुशीला के साथ सूने कमरे मे बैठे और उससे बोले--बेटी, ललिता के सम्बन्ध मे कुछ सोच-विचार का समय उपस्थित हुआ है।

सुशीला ने परेश बाबू के मुँह की ओर अपनी भक्ति और करुणा-भरी दृष्टि से देखकर कहा--जानती हूँ।

परेश बाबू ने कहा--मैं सामाजिक निन्दा की बात नहीं सोचता। मैं सोचता हूँ--अच्छा ललिता क्या--

परेश बाबू को आगे कहने मे संकुचित होते देख सुशीला ने स्वयं उनकी बात को पूरी करने की चेष्टा की। उसने कहा--ललिता बराबर अपने मन की बात खोलकर मुझसे कहा करती थी। किन्तु इधर कुछ दिनो से वह उस तरह सब बातें मुझसे नही कहती। मैं अच्छी तरह समझ चुकी हूँ--

परेश ने बीच ही मे रोककर कहा--ललिता के मन मे ऐसे किसी भाव का उदय हुआ है जिसे वह आप भी स्वीकार करना नहीं चाहती। मैं नहीं कह सकता कि क्या करने से

उसका भला होगा। क्या तुम कहती हो कि विनय को जो मैंने अपने घर वेधड़क आने-जाने दिया, इससे ललिता का कुछ अनिष्ट हुआ है ?

सुशीला ने कहा—पिताजी। आप तो जानते ही हैं, विनय वावू मे कोई दोष नही है—उनका स्वभाव निर्मल है। उनके ऐसा सुशील पुरुष वहुत कम देखने मे आता है।

परेश वावू ने सुशीला की वात से मानों कोई नया तत्त्व लाभ किया। वे वोल उठे—राधा, तुम सच कहती हो। वे सज्जन हैं या नही, यही देखने का विषय है। अन्तर्यामी ईश्वर भी यही देखते हैं। विनय को सच्चरित्र मानने मे मेरी कोई भूल नही हुई, इसलिए मैं उन (ईश्वर) को वार-वार प्रणाम करता हूँ।

परेश वावू के मन मे जो एक कुहरा छाया था, फट गया। कही से मानों उनके जी मे जी आ गया। परेश वावू ने अपने देवता के आगे अन्याय नही किया है। ईश्वर जिस तराजू पर मनुष्य का वज़न करते है उस नित्यधर्म की तुला को ही उन्होने माना है। उसमे उन्होने अपने समाज का वनाया कोई कृत्रिम वटखरा नही रक्खा, इसलिए उनके मन मे कुछ ग्लानि नही रही। यह अत्यन्त सीधी वात इतनी देर तक न समझकर हम क्यों ऐसे कष्ट का अनुभव कर रहे थे, इस वात से उन्हे वड़ा आश्चर्य जान पड़ा। सुशीला के सिर पर हाथ रखकर उन्होने कहा—वेटी ! आज तुमसे मुझे एक शिक्षा मिली।

सुशीला ने झट उनके पैरों की धूल माथे मे लगाकर कहा—नहीं ! नहीं ! यह आप क्या कहते हैं ?

परेश—सम्प्रदाय एक ऐसी चीज़ है कि वह मनुष्य को मनुष्य समझने की सीधी सी बुद्धि नहीं रहने देता। मनुष्य ब्राह्म हो चाहे हिन्दू, हैं तो दोनों मनुष्य ही, मनुष्यता मे अन्तर नहीं आता। परन्तु जो जिस समाज मे है वे अपने ही समाज को सर्वोपरि सत्य मानेंगे।

कुछ देर चुप रहकर फिर वे सुशीला की ओर देखकर बोले—ललिता अपने गर्ल्स-स्कूल का सङ्कल्प किसी तरह छोड़ नहीं सकती। वह इस कार्य मे विनय से सहायता लेने के हेतु मेरी सम्मति चाहती है।

सुशीला ने कहा—अभी कुछ दिन ठहरिए।

परेश बाबू की सम्मति न पाने पर ललिता जब अपने क्षुब्ध हृदय के सम्पूर्ण वेग को दबाकर उनके पास से उठकर चली गई तब, उस समय की, उसकी विषाद-भरी मूर्त्ति परेश बाबू के स्नेह-भरे हृदय को अत्यन्त क्लेश देने लगी। वे जानते थे कि मेरी इस ओजस्विनी कन्या के प्रति समाज जो अन्याय कर रहा है उस अन्याय से वह वैसा कष्ट नहीं पाती जैसा इस अन्याय के विरुद्ध संग्राम करने मे रोकी जाने से पा रही है और वह भी ख़ासकर पिता से। इसलिए वे अपने निषेध को हटा लेने के लिए व्यग्र थे। उन्होने कहा—क्यो राधा ! अभी ठहरें क्यो ?

सुशीला—आपकी सलाह से माँ (शिवसुन्दरी) बड़ी ख़फ़ा होगी।

परेश को यह बात सही जान पड़ी।

इसी समय सतीश ने घर मे आकर सुशीला के कान मे न मालूम क्या कहा। सुशीला ने कहा—नही भाई बख़्तियार, आज नही कल।

सतीश ने गिड़गिड़ाकर कहा—कल मै तो स्कूल जाऊँगा।

परेश ने स्नेह की हँसी हँसकर कहा—क्या है सतीश, क्या चाहिए ?

सुशीला—इसका एक—

सतीश ने झट सुशीला का मुँह अपने हाथ से दबाकर कहा—नही बहन, मत कहो, मैं नही कहने दूँगा।

परेश—अगर कोई गुप्त बात होगी तो सुशीला क्यो कहेगी ?

सुशीला—नहीं पिताजी। उसका आन्तरिक अभिप्राय यही है—वह जी से चाहता है कि यह गुप्त बात आपके कान मे पड़े।

सतीश ख़ूब ज़ोर से बोला—कभी नही, तुम्हे हमारी सौगन्ध, अभी मत कहो—यह कहता हुआ वह वहाँ से भाग गया।

विनय ने उसकी जिस रचना की इतनी प्रशंसा की थी वह रचना सुशीला को दिखाने की बात थी। परेश बाबू के सामने

वह बात सुशीला के कान मे कहने का उद्देश्य यही था कि तुम मेरी रचना देखने की बात भूल मत जाना। ऐसे गम्भीर मन का अभिप्राय संसार मे इतनी आसानी से जाना जा सकता है, यह बेचारे सतीश को मालूम न था।

[४७]

चार दिन के बाद हरि बाबू हाथ मे एक चिट्ठी लिये हुए शिवसुन्दरी के पास आया। आजकल उसे परेश बाबू से कुछ आशा नहीं है।

हरि बाबू ने शिवसुन्दरी के हाथ में चिट्ठी देकर कहा—मैंने आप लोगों को पहले ही से सावधान कर देने की बहुत चेष्टा की है। इस कारण मै आप लोगों के निकट अप्रिय हो गया हूँ, अब आप इस चिट्ठी से ही समझ सकेंगी कि भीतर ही भीतर बात कहाँ तक बढ़ गई है।

ललिता ने शैलकुमारी को जो पत्र लिखा था वह शिवसुन्दरी ने पढ़कर कहा—बतलाइए मैं यह सब कैसे जानती, जो बात कभी अनुभव मे भी न आई थी वही प्रत्यक्ष हो पड़ी है। किन्तु इसके लिए आप मुझको दोष मत दें, यह मैं अभी आपसे कह रखती हूँ। सुशीला को आप सबों ने मिलकर "बड़ी अच्छी है" "बड़ी अच्छी है" कहकर एकबारगी अभिमान के शिखर पर चढ़ाकर उसके मन को फेर दिया है। सच मानिए, ब्राह्म-समाज मे कोई ऐसी लड़की नहीं है। अब आप लोग अपनी

इस आदर्श ब्राह्म-बालिका की कीर्त्ति को सँभालिए। विनय और गौर को तो इन्हीं (परेश) ने अपने घर मे आने-जाने देकर अपने आत्मीय वर्ग मे मिला लिया है। तो भी मैं विनय को बहुत दूर तक अपने पथ पर खींच लाई थी। इसके बाद इन्होंने न जाने कहाँ से सुशीला की मौसी को लाकर मेरे घर में ठाकुरजी का पूजा-पाठ आरम्भ करा दिया। विनय को भी इस तरह बिगाड़ दिया कि वह अब मुझको देखते ही भागता है। अभी यह जो घटना हुई है उसका मूल कारण आपकी यह सुशीला ही है। वह लड़की जैसी छटी है, यह मैं कब से नहीं जानती हूँ, किन्तु कभी मैंने उससे कुछ कहा नहीं। मैं उसका इस प्रकार पालन-पोषण करती आई हूँ जो किसी को यह न मालूम हो कि वह मेरी अपनी लड़की नहीं है। आज इसका अच्छा फल मिला। अब मुझको आप यह चिट्ठी व्यर्थ क्यों दिखाते हैं—जो आपको करना हो, कीजिए।

हरि बाबू ने किसी समय शिवसुन्दरी को दोषी ठहराया था, अतः आज स्पष्ट रूप से भूल स्वीकार कर उसने बड़ी उदारता के साथ अनुताप प्रगट किया। आखिर परेश बाबू बुलाये गये।

"लीजिए, यह देखिए।" कहकर शिवसुन्दरी ने चिट्ठी उनके सामने टेबल पर फेंक दी। परेश बाबू ने दो-तीन बार उस चिट्ठी को पढ़कर कहा—तो क्या हुआ?

शिवसुन्दरी ने उत्तेजित होकर कहा—क्या हुआ है! इससे बढ़कर अब क्या होगा? अब क्या होना बाक़ी रह

गया ? ठाकुर पूजिए, जात-पाँत मानकर चलिए, किसी के हाथ का छूआ मत खाइए ! जो होने को था सब तो हुआ। अब केवल हिन्दू के घर मे आपकी लड़की का व्याह होना बाक़ी रह गया है। वह होने से सब ठीक हो जायगा। उसके बाद प्रायश्चित्त करके हिन्दू-समाज मे प्रवेश कीजिएगा। किन्तु मै कह रखती हूँ—

परेश बाबू ने मुस्कुराकर कहा—तुमको कुछ कहना न होगा। अभी कुछ कहने का समय भी नही हुआ है। बात यह है कि तुम लोगों ने निश्चय कर लिया है कि ललिता का ब्याह हिन्दू के घर मे होना स्थिर हुआ है। इस चिट्ठी में तो कोई वैसी बात देखने मे नही आती।

शिवसुन्दरी—आज तक मै नहीं समझ सकी कि क्या होने पर आप स्पष्ट बात देख सकेंगे। समय पर यदि आप देख पाते तो आज इतनी बात क्यों बढ़ती ? ऐसी घटना ही क्यों होती ? चिट्ठी मे मनुष्य इससे अधिक खोलकर और क्या लिखेगा ?

हरि ने कहा—मै समझता हूँ, ललिता को यह चिट्ठी दिखाकर उसका अभिप्राय जान लेना चाहिए। आप लोगों की अनुमति हो तो मैं ही उससे पूछूँ।

इसी समय ललिता बवंडर की तरह घर के भीतर आकर बोली—पिताजी, यह देखिए, ब्राह्म-समाज से आजकल इसी तरह बेनाम की चिट्ठियाँ आती है।

परेश बाबू ने चिट्ठी पढ़ डाली। उसमे जो बातें लिखी थीं, उनका भावार्थ यही था कि विनय के साथ ललिता का ब्याह जो चुपके-चुपके स्थिर हुआ है उसका भेद समाज मे अच्छी तरह खुल गया है। समाज में सर्वत्र ललिता की निन्दा हो रही है। साथ ही इसके, विनय की नीयत भी ठीक नही, वह दो ही दिन बाद ब्राह्म-स्त्री को छोड़कर हिन्दू की लड़की से ब्याह करेगा। ललिता मारी-मारी फिरेगी, इत्यादि।

परेश बाबू के पढ़ चुकने पर हरि ने चिट्ठी पढ़कर कहा—ललिता, यह चिट्ठी पढ़कर तुम्हे क्रोध होता होगा। किन्तु इस तरह की चिट्ठी लिखने का कारण क्या तुमने पैदा नही किया है; इस चिट्ठी की बात जाने दो। तुमने अपने हाथ से यह चिट्ठी कैसे लिखी, यह बतलाओ।

ललिता ने कुछ देर अचम्भे के साथ उस पत्र को देखकर कहा—मालूम होता है, शैलकुमारी के साथ आपका इस विषय मे पत्र-व्यवहार जारी है?

हरि बाबू ने इसका स्पष्ट उत्तर न देकर कहा—ब्राह्म-समाज के प्रति अपने कर्तव्य का स्मरण करके शैल तुम्हारी यह चिट्ठी भेज देने को विवश हुई है।

ललिता ने बड़ी दृढ़ता से खड़ी होकर कहा—अब ब्राह्म-समाज क्या कहना चाहता है?

हरि बाबू ने कहा—विनय बाबू और तुम्हारे सम्बन्ध मे जो यह अफ़वाह समाज मे सर्वत्र फैल गई है, इस पर मैं कदापि

विश्वास नहीं कर सकता। किन्तु तो भी तुम्हारे मुँह से इसका स्पष्ट प्रतिवाद सुना चाहता हूँ।

ललिता की आँखों से मानों चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने एक कुर्सी के पृष्ठभाग को, काँपते हुए हाथ से, पकड़कर कहा—क्यों आप उस बात पर विश्वास नहीं कर सकते?

परेश बाबू ने ललिता की पीठ पर हाथ फेरकर कहा—ललिता, अभी तुम्हारा मन स्थिर नहीं है। यह बात कुछ देर बाद मेरे साथ करना। अभी ठहरो।

हरि बाबू ने कहा—आप इस बात को दबाने की चेष्टा न करें।

ललिता हरि बाबू की बात से फिर जल-भुनकर बोली—दबाने की चेष्टा बाबूजी करेंगे! आप लोगों की तरह पिताजी सत्य से नहीं डरते। सत्य को वे ब्राह्म-समाज से भी बढ़कर जानते हैं। मैं आपको सुनाकर कहती हूँ, विनय बाबू से विवाह करने को मैं कुछ भी असम्भव या अन्याय नहीं समझती।

हरि बोल उठा—क्या उन्होंने ब्राह्म-धर्म में दीक्षित होना स्वीकार किया है?

ललिता—स्वीकार नहीं किया है—इसके लिए दीक्षा ग्रहण करनी ही हो यह कुछ बात नहीं।

शिवसुन्दरी अब तक चुप थी, कुछ न बोलती थी। वह मन ही मन चाहती थी कि आज हरि बाबू की जीत हो और परेश बाबू अपना अपराध स्वीकार कर पश्चात्ताप करें। किन्तु

अब वह चुप न रह सकी। उसने कहा—ललिता, तू पागल तो नहीं हो गई है ? यह क्या वकती है !

ललिता—नहीं माँ, पागल की बात नहीं है। मैं जो कहती हूँ, सो विचार करके ही कहती हूँ। मुझे चारों ओर से लोग घेरना चाहेंगे तो मैं यह कदापि नहीं सह सकूँगी—मैं हरिश्चन्द्र प्रभृति महाशयों के इस समाज से मुक्त हूँगी।

हरि बाबू—तो तुम उच्छृङ्खलता को ही मुक्ति कहती हो ?

ललिता—नहीं, नीचता के आक्रमण से और असत्य के दासत्व से मुक्त होने को ही मैं मुक्ति कहती हूँ। जहाँ मैं कोई अन्याय या कोई अधर्म नहीं देखती वहाँ ब्राह्म-समाज मुझे क्यों छेड़ेगा ? क्यों बाधा देगा ?

हरि बाबू ने बड़ी स्पर्धा के साथ कहा—परेश बाबू, यह देखिए, मैं जानता ही था। अन्त में यही बात होने को है। मुझसे जहाँ तक हो सका, मैंने आपको सावधान करने की चेष्टा की। परन्तु कोई फल न हुआ।

ललिता ने कहा—हरि बाबू, आपको भी सावधान कर देने की आवश्यकता है। जो आपसे सभी विषयों में श्रेष्ठ हैं उनको सावधान कर देने का अहङ्कार आप अपने मन में न रक्खें।

यह कहकर ललिता वहाँ से चली गई।

शिवसुन्दरी ने कहा—यह सब क्या हो रहा है ? अब क्या किया जाय, इसका विचार कीजिए।

परेश बाबू—जो कर्तव्य है, उसका पालन करना ही होगा। किन्तु इस तरह गोलमाल मे कर्तव्य का ठीक-ठीक निर्णय न होगा। मुझे अभी माफ़ कीजिए। इस सम्बन्ध मे अभी मुझसे कुछ न पूछो। मैं एकान्त मे कुछ देर इन बातों को सोच-कर अपना मत प्रकट करूँगा।

[४८]

सुशीला सोचने लगी कि ललिता यह क्या कर बैठी है! ज़रा चुप रह वह ललिता के गले से लिपटकर बोली—बहन, मुझे डर लगता है!

ललिता—कैसा डर!

सुशीला ने कहा—ब्राह्म-समाज मे तो चारो ओर धूम मच गई है किन्तु अन्त मे यदि विनय बाबू राज़ी न हो तो?

ललिता ने सिर नीचा करके दृढ़ता से कहा—वे राज़ी होंगे ही।

सुशीला ने कहा—तुम तो जानती ही हो। हरि बाबू माँ को यही आश्वासन दे गया है कि विनय कभी अपना समाज छोड़कर यह व्याह करने को राज़ी न होगा। तुमने आगे-पीछे की बात को बिना सोचे-समझे हरि बाबू से इस तरह क्यों कह डाला?

ललिता ने कहा—कह डालने का खेद अब भी मेरे मन मे नहीं है। हरि बाबू ने समझा था कि वह और उसका

समाज दोनों मुझे शिकार के जन्तु की भाँति रगेदते हुए एकदम अगाध समुद्र के किनारे तक ले आये है। अब यहीं मैं पकड़ी जाऊँगी—किन्तु वे यह नही जानते कि इस समुद्र मे धँस पड़ने को मैं नही डरती। उनके शिकारी कुत्तों के रगेदने की अपेक्षा उनके जाल मे फँस जाने को ही डरती हूँ।

सुशीला—एक बार पिताजी से सलाह ले लो।

ललिता—पिताजी कभी शिकारी के दल मे शामिल न होंगे, यह मैं तुमसे सच कहती हूँ। उन्होने तो कभी हम लोगो को ज़ञ्जीर मे बाँधकर रखना नही चाहा। उनके मत के साथ जब किसी दिन हमारे मत का मिलान नही होता था तब भी वे मुझ पर कुछ क्रोध नही करते थे। ब्राह्म-समाज के नाम का भय दिखाकर कभी उन्होने हमारा मुँह बन्द करने की चेष्टा नही की। इसलिए मेरी माँ कई बार उन पर बहुत ही रुष्ट हुई है। तो भी वे कभी अपने सिद्धान्त से कुछ विचलित नहीं हुए। इस तरह जिन्होने हमे पाल पोसकर सज्ञान किया है वे क्या अन्त मे हरि बाबू के सदृश समाज के जेल-दारोग़ा के हाथ मुझे सौंप देगे?

सुशीला—अच्छा, मान लो, पिताजी कुछ रोक-टोक न करे, तब क्या करोगी?

ललिता—तुम सब यदि कुछ न करोगी तो मैं स्वयं—

सुशीला ने घबराकर कहा—नही, नहीं, तुमको कुछ करना न होगा। मैं एक उपाय करती हूँ।

सुशीला परेश बाबू के पास जाने को तैयार हो रही थी। ऐसे समय परेश बाबू स्वयं साँझ को उसके पास आ पहुँचे।

इस समय परेश बाबू नित्य अपने घर के सटे बाग़ में अकेले सिर झुकाये, मन मे कुछ सोचते-विचारते धीरे-धीरे टहला करते थे। दिन भर के समस्त मानसिक विकारों को वे सन्ध्याकाल के पवित्र अन्धकार मे सत्य विचार के द्वारा धो डालते थे और हृदय मे निर्मल शान्ति का सञ्चय करके रात के विश्राम के लिए प्रस्तुत होते थे। आज परेश बाबू अपने उस सायङ्कालिक ध्यान का शान्तिसुख छोड़कर चिन्तित भाव से सुशीला के घर आये। जिस शिशु को खेलना उचित है वही यदि पीड़ित होकर चुपचाप पड़ा रहे तो उसे देखने से माता को जैसी व्यथा होती है उसी तरह की व्यथा सुशीला के स्नेह-पूर्ण चित्त मे हुई।

परेश ने कोमल स्वर मे कहा—राधा! तुम तो सब सुन चुकी हो?

सुशीला—हाँ, सब सुन चुकी हूँ। किन्तु आप इतने चिन्तित क्यों हैं?

परेश बाबू ने कहा—मैं और तो कुछ नही सोचता, सिर्फ़ यही सोचता हूँ कि ललिता ने बात को बहुत बढ़ा दिया है। सब आघातो को क्या वह सह लेगी? क्या ललिता ने समस्त फलाफल की बात भली भाँति सोचकर अपने लिए योग्य भविष्य स्थिर किया है?

सुशीला—समाज की ओर से किसी तरह का दबाव दिलाकर या भय दिखाकर ललिता को कभी कोई परास्त नही कर सकेगा, यह मै आपसे ज़ोर देकर कह सकती हूँ।

परेश ने कहा—मै इस बात को सच-सच जानना चाहता हूँ कि ललिता केवल क्रोधवश होकर तो विद्रोह के साथ साथ उद्दण्डता प्रकट नही कर रही है ?

सुशीला ने सिर नीचा करके कहा—नही पिताजी ! यह बात होती तो मैं उसकी बात पर एकदम कान न देती। उसके मन मे जो बात गम्भीर भाव से छिपी थी वह एकाएक चोट खाकर बाहर निकल आई है। अब इसको किसी तरह दबा देने से ललिता सी तीव्र स्वभाववाली लड़की के लिए अच्छा न होगा। न मालूम आख़िर वह क्या कर बैठे। विनय बाबू हैं तो बड़े सुशील।

परेश बाबू—अच्छा यह तो कहो कि क्या विनय ब्राह्म-समाज मे आने को राज़ी होगा ?

सुशीला—यह मै ठीक नही कह सकती। आपकी आज्ञा हो तो मैं एक बार गौर बाबू की माँ के पास जाऊँ ?

परेश—मैं भी यही सोचता था। तुम्हारे जाने से अच्छा होगा।

[४९]

आनन्दी के घर से रोज़ एक बार सवेरे विनय अपने घर पर आता था। आज सवेरे जब वह घर आया तब उसे एक चिट्ठी

मिली। चिट्ठी मे किसी का नाम-धाम नही था। ललिता से विवाह करने पर तुमको कुछ सुख न मिलेगा और यह विवाह ललिता के अमङ्गल का कारण होगा, इन्हीं सब उपदेशो की लम्बी बातो से चिट्ठी भरी हुई थी। अन्त मे यह लिखा था कि इतने पर भी यदि तुम ललिता से व्याह करने का इरादा न छोड़ो तो तुम्हे इस बात पर अवश्य विचार करना चाहिए कि ललिता का दिल-दिमाग़ कमज़ोर है, डाक्टर लोग उसे यक्ष्मा की बीमारी होने की आशङ्का करते है।

ऐसी चिट्ठी पाकर विनय विस्मित हो गया। बात इस ढङ्ग से लिखी थी जिस पर विनय अविश्वास न कर सका। इस बात की मिथ्या सृष्टि हुई है इसे भी उसकी बुद्धि ने न माना। कारण, सामाजिक बाधा से ललिता के साथ विनय का व्याह किसी तरह नही हो सकता, यह सभी लोग जानते थे। इसी लिए वह ललिता के प्रति अपने हृदय के अनुराग को इतने दिनों से अपराध ही मानता आया है। किन्तु जब ऐसी चिट्ठी उसके हाथ मे आ पड़ी है तब इसमे सन्देह नहीं कि समाज मे इस विषय की सविस्तर आलोचना हो गई है। इससे समाज के लोगो की दृष्टि में ललिता कैसी अपमानित हो रही है, यह सोचकर विनय का मन बड़ा ही क्षुब्ध हुआ। उसके नाम के साथ ललिता का नाम लेकर प्रकाश्य रूप से लोग जो बातचीत करते है, इसे सोचने से उसको बड़ी लज्जा और सङ्कोच मालूम होने लगा। विनय सोचने लगा—ललिता मेरी दृष्टि को अब

किसी भी दिन सहन नहीं कर सकेगी और मेरे परिचय को बार-बार धिक्कार देगी।

हाय रे मनुष्य-हृदय! इस अत्यन्त धिक्कार के भीतर भी विनय के मन मे एक सूक्ष्म और तीव्र आनन्द की घटा एक ओर से दूसरी ओर को जा रही थी। उसे वह किसी तरह रोक नहीं सकता था। सारी लज्जा और अपमान को वह अस्वीकार करता था किन्तु उस आनन्द-घटा को किसी तरह अपने हृदयाकाश मे रोक रखने के लिए वह अपने बरामदे मे बड़ी तेजी के साथ घूम रहा था। उस प्रातःकालिक प्रकाश के भीतर एक विलक्षण भाव उसके मन मे उदित हुआ। रास्ते से फेरीवाला आवाज़ देता जा रहा था। उसकी पुकार का मधुर स्वर भी उसके हृदय मे चञ्चलता की आग जगा गया। बाहर के लोगों की निन्दा ही मानो बाढ़ की तरह ललिता को बहाकर विनय के हृदयरूपी उच्च स्थान पर फेक गई। इस समाजरूपी स्रोत से बहकर आई हुई ललिता की मूर्ति को अब वह दूर न कर सका। उसका मन बार-बार यही कहने लगा—"ललिता मेरी है, वह केवल मेरी है।" और दिन उसका मन दुर्दम्य होकर इतनी दृढ़ता से यह बोलने का साहस नहीं करता था। आज जब बाहर के ये सब शब्द सुनाई दिये तब विनय किसी तरह अपने मन को मौन धारण की शिक्षा से रोककर नहीं रख सका।

विनय इस प्रकार चञ्चल-चित्त होकर बरामदे मे घूम रहा था कि इसी समय उसने रास्ते से हरि बाबू को आते देखा।

वह उसी घड़ी समझ गया कि हरि बाबू मेरे पास आ रहा है। और बेनाम की चिट्ठी के पीछे एक भारी तूफ़ान लगा है, यह भी वह निश्चय-पूर्वक जान गया।

विनय ने और दिन की तरह अपनी स्वाभाविक प्रगल्भता प्रकट न की। वह हरि बाबू को कुरसी पर बिठाकर चुपचाप उसके वचन की प्रतीक्षा करने लगा।

हरि बाबू ने कहा—विनय बाबू, आप तो हिन्दू है ?

विनय—बेशक।

हरि—आप मेरे इस प्रश्न पर क्रोध न करे। हम लोग कितनी ही दफ़े आगे-पीछे की बात सोचे-समझे बिना अन्धे की तरह चलते है, इसी से संसार मे पग-पग पर ठोकर खाया करते हैं। ऐसे अवसर पर—हम कौन है, हमारा कर्त्तव्य क्या है, हमारे आचरण का फल अन्त मे क्या होगा ? इन सब प्रश्नों का यदि कोई उत्थान करे तो उस उत्थान-कर्त्ता को अप्रिय होने पर भी आप मित्र समझें।

विनय ने कुछ हँसने की सी चेष्टा करके कहा—आप व्यर्थ क्यों इतनी बड़ी भूमिका बाँध रहे हैं। अप्रिय प्रश्न से रुष्ट होकर मैं किसी प्रकार का अयुक्त आचरण करूँ, ऐसा मेरा स्वभाव नही है। आप मुझसे जो कहना चाहते हो निःशङ्क होकर कहे।

हरि बाबू ने कहा—मैं आपके ऊपर किसी दोष का आरोपण करना नही चाहता। किन्तु विचार की त्रुटि से

कभी-कभी विषमय फल फलता है, यह आपसे कहने की आवश्यकता नहीं।

विनय मन ही मन अप्रसन्न होकर बोला—जिस बात के कहने की आवश्यकता नहीं, वह न कहकर असल बात कहिए।

हरि बाबू ने कहा—आप जब हिन्दू-समाज मे हैं और उक्त समाज को छोड़ना जब आपके लिए असम्भव है तब क्या आपको परेश बाबू के घर इस तरह का भाव जोड़ना उचित था जिससे समाज मे उनकी लड़कियो के सम्बन्ध मे कोई शिकायत की बात चले ?

विनय ने कुछ देर गम्भीर भाव धारण करके कहा—देखिए, समाज के लोग कब किस विषय मे किस बात की रचना करेंगे यह विशेष कर उनके स्वभाव पर निर्भर है। कितने ही लोग साधु को वञ्चक और छली को साधु समझने लगते हैं तो यह उनकी समझ का दोष है। इसका उत्तरदायी मैं नही। परेश बाबू की लड़कियो के सम्बन्ध मे भी यदि आपके समाज मे किसी तरह की आलोचना होना सम्भव हो तो उससे उनको उतनी लज्जा नही जितनी आपके समाज को।

हरि बाबू—यदि किसी सयानी कुमारी लड़की को उसकी माँ अपने साथ कहीं ले जाय और लड़की बाहरी पुरुष के साथ किसी जहाज़ पर अकेली घूमने का साहस करे तो इस सम्बन्ध मे किस समाज को आलोचना करने का अधिकार नही है, यह आप बताइए।

विनय—बाहरी घटना को यदि आप भीतरी अपराध के साथ एक आसन पर बिठाना चाहते है तो हिन्दू-समाज छोड़कर आपको ब्राह्म-समाज में आने की क्या ज़रूरत थी? जो हो, इन बातों को लेकर तर्क करने की मैं कोई आवश्यकता नहीं देखता। मुझे क्या करना चाहिए, यह सोचकर मैं अपना कर्तव्य स्थिर करूँगा। इस विषय मे आपसे कोई सहायता लेना नहीं चाहता।

हरि बाबू ने कहा—मैं आपसे अधिक बातें नहीं करना चाहता, मुझे तो यही कहना है कि आप को अब अलग रहना चाहिए। ऐसा न करने से अन्याय होगा। परेश बाबू के परिवार मे मिलकर आप अशान्ति ही पैदा करते हैं। आप नहीं जानते कि आपके कारण उनका क्या अनिष्ट हो रहा है।

हरि बाबू के चले जाने पर कुछ बातें सोचकर विनय के मन मे बर्छी छिदने की सी वेदना होने लगी। सहृदय उदार-चेता परेश बाबू ने कितने आदर प्यार के साथ उन दोनों को अपने घर में बुला लिया था—विनय शायद बिना सोचे-समझे इस ब्राह्म-परिवार के भीतर अपने अधिकार की सीमा से धीरे-धीरे पैर आगे बढ़ा रहा था तब भी वह परेश बाबू की श्रद्धा और स्नेह से एक दिन भी वञ्चित नहीं हुआ। उनके घर मे विनय की प्रकृति ने एक ऐसा गम्भीरतर आश्रय प्राप्त किया है जैसा उसने और कही नही पाया था। उन सबों के साथ परिचय के अनन्तर विनय ने मानों अपनी एक

विशेष सत्ता प्राप्त की है। जहाँ इतना आदर, इतना आनन्द और ऐसा आश्रय उसने पाया है वहाँ उसका स्मरण लोगो के हृदय मे काँटे की तरह कसकेगा, यह कौन जानता था! परेश बाबू की लड़कियो पर उसने एक अपमान का धब्बा लगा दिया है, ललिता के सारे भविष्य जीवन के ऊपर उसने एक ऐसा भारी कलङ्क डाल दिया है जिसका प्रतिकार होना कठिन है। हाय! समाज भी एक चीज़ है! सत्य के भीतर कितना बड़ा अनर्थ खड़ा कर दिया है। ललिता के साथ विनय के मिलने मे कोई सच्ची रोक-टोक नही। ललिता के सुख-सौभाग्य के लिए विनय अपना समस्त जीवन दे डालने को किस प्रकार प्रस्तुत है, यह वही देवता जानते हैं जो दोनों के अन्तर्यामी है। उन्होंने विनय को प्रेम-रज्जु के द्वारा खींच-कर ललिता के इतने समीप ला दिया है। उनके शाश्वत धर्म-विधान मे तो कहीं कोई खटका नही है। ब्राह्म-समाज के जिस देवता को हरि बाबू के सदृश मनुष्य पूजते हैं वह क्या उन अन्तर्यामी से कोई भिन्न देवता है? वह क्या मनुष्य का हृदय देखनेवाला विधाता नहीं है? यदि ललिता के साथ विनय के शुद्ध मिलन के बीच कोई निषेध-रूपी बाघ मुँह फाड़कर खड़ा हो, यदि वह केवल समाज को ही माने और सब मनुष्यों के प्रभु की दुहाई को न सुने तो वह निषेध क्या पाप नहीं है? किन्तु हाय! यह निषेध प्रायः ललिता के लिए भी बलवान् है। कौन कह सकता है, इस निषेध की मीमांसा कहाँ होगी।

जिस समय विनय बाबू के घर हरिश्चन्द्र गया था उसी समय अविनाश ने आनन्दी के पास जाकर ख़बर दी कि विनय के साथ ललिता के ब्याह की बात पक्की हो गई है।

आनन्दी—यह बात कभी सत्य नहीं।

अविनाश—सत्य क्यों नहीं? विनय के लिए यह क्या असम्भव है?

आनन्दी—यह मैं नहीं जानती, किन्तु विनय इतनी बड़ी बात को कभी मुझसे छिपा नहीं सकता।

अविनाश ने बारम्बार कहा कि ब्राह्म-समाज के लोगों के ही मुँह से मैंने यह ख़बर सुनी है और यह सर्वथा विश्वास-योग्य है। विनय का एक दिन ऐसा शोचनीय परिणाम होगा, यह अविनाश बहुत दिन पहले ही से जानता था। यहाँ तक कि गौरमोहन को भी उसने इस विषय में सावधान कर दिया था। वह आनन्दी को यह ख़बर देकर बड़ी ख़ुशी के साथ नीचे के महल में महिम को यही ख़बर सुनाने गया।

विनय जब आज आया, तब उसका मुँह देखकर ही आनन्दी समझ गई कि इसके मन में एक विशेष क्षोभ उत्पन्न हुआ है। वह विनय को भोजन कराकर अपने कमरे में ले आई और पूछा—विनय, कहो क्या है?

विनय—माँ, यह चिट्ठी पढ़ो।

आनन्दी के चिट्ठी पढ़ जाने पर विनय ने कहा—हरि बाबू आज सबेरे मेरे घर आया था। 'वह मुझको बड़ी फटकार बता गया है।

आनन्दी ने पूछा—क्यो ?

विनय—वह कहता है, तुम्हारे आचरण से हमारे समाज मे परेश बाबू की लड़कियों की निन्दा हो रही है।

आनन्दी—लोग कहते है, ललिता के साथ तुम्हारे व्याह की बात पक्की हो गई है, इसमे तो मै निन्दा की कोई बात नही देखती।

विनय—विवाह होने की सन्धि रहने से निन्दा का कोई डर न था। किन्तु जहाँ उसकी कोई सम्भावना नहीं वहाँ ऐसे अपवाद का प्रचार होना बहुत बड़ा अन्याय है। विशेषकर ललिता के सम्बन्ध मे ऐसा कहना बड़ी नीचता है।

आनन्दी—यदि तुममे कुछ भी पुरुषार्थ हो तो तुम समाज के हाथ से अनायास ही ललिता की रक्षा कर सकते हो।

विनय ने विस्मित होकर कहा—कैसे ?

आनन्दी ने कहा—कैसे क्या! ललिता से व्याह करके।

विनय—माँ, यह क्या कहती हो! तुम अपने विनय को क्या समझती हो, यह मै नही जानता। तुम सोचती हो, यदि विनय एक दफ़े कह दे कि मैं व्याह करूँगा तो इस पर फिर दूसरी बात होने की नही। केवल मेरे कहने भर की देरी है। सब मेरा इशारा पाने की अपेक्षा मे बैठे है ?

आनन्दी—तुमको इन बातों के सोचने की आवश्यकता नहीं। तुम अपनी ओर से जो कुछ कर सकते हो, वह करने ही से बात निबट जायगी। तुम इतना कह सकते हो कि मैं ब्याह करने को प्रस्तुत हूँ।

विनय—मेरे इस असङ्गत भाषण से क्या ललिता की मान-हानि न होगी?

आनन्दी—मान-हानि क्यों होगी! तुम दोनों के ब्याह की बात जब सर्वत्र प्रकट हो गई है, तब यह उचित जानकर ही प्रकट हुई है। मैं तुमसे ऐसा करने को कहती हूँ, तुम कुछ भी सङ्कोच मत करो।

विनय—किन्तु गौर बाबू की बात भी तो एक बार सोच लेनी चाहिए।

आनन्दी ने दृढ़ता-भरे स्वर में कहा—बेटा, इसमे गोरा की बात सोचने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं जानती हूँ, वह क्रोध करेगा—परन्तु मैं यह नहीं चाहती कि वह तुम पर क्रोध करे। ललिता के प्रति यदि तुम्हारी श्रद्धा है तो उसके सम्बन्ध मे तुम ऐसी घटना को रोक सकते हो जिससे समाज में उसका अपमान हो या लोग उसकी निन्दा करे।

किन्तु यह बात बड़ी कठिन है! जेल में पड़े हुए गौर-मोहन के प्रति विनय का प्रेम और भी दुगुने वेग से बढ़ रहा है, उसके लिए क्या वह इतना बडा आघात तैयार करके रख सकता है! इसके सिवा संस्कार भी अग्रसर होने नही देता—

समाज को बुद्धि से लङ्घन करना सहज है किन्तु व्यवहार मे लङ्घन करते समय कितनी ही जगहों मे छोटी-बड़ी अनेक अड़चनें आ जाती है। एक तो जो काम कभी नही किया उसे करने मे भय लगता है, दूसरे समाज मे जो व्यवहार प्रचलित नही है वह उसे आगे बढने से रोकता है।

विनय ने कहा—माँ, तुम्हे देखने से बड़ा आश्चर्य होता है। तुम्हारा हृदय एकदम ऐसा साफ़ कैसे हुआ। तुम दूर तक इतना शीघ्र कैसे पहुँच जाती हो। क्या तुम पैरों से नही चलती? ईश्वर ने तुमको पङ्ख तो नही दिये है? तुमको कही कुछ भी रोक नही है।

आनन्दी ने हँसकर कहा—ईश्वर ने मेरी गति रोकने योग्य कुछ रक्खा ही नही। मेरे लिए सब मार्ग एकबारगी साफ़ कर दिये हैं।

विनय—किन्तु माँ, मैं चाहे मुँह से जो बोलूँ पर मन मे रुकावट हो ही जाती है। मन की गाँठ सहसा नही खुलती। मै इतना समझता-बूझता हूँ, पढ़ता-सुनता हूँ, तर्क करता हूँ तो भी देखता हूँ कि मन मूर्ख का मूर्ख ही बना है।

इसी समय महिम ने घर मे पैर रखने के साथ
से ललिता के सम्बन्ध मे ऐसे बुरे तौर पर
हृदय सङ्कोच से दब गया। वह अपने
कर [illegible] सिर नीचा करके बैठा
[illegible] लिए जो

चला गया। वह कह गया, विनय को इस प्रकार फन्दे में फँसाकर सर्वनाश करने ही के लिए परेश बाबू के घर मे कब से एक मर्यादा-रहित कार्य का आयोजन हो रहा था। विनय निर्बोध होने ही के कारण ऐसे फन्दे मे फँस गया है। कोई गोरा को फँसावे तो मै समझूँ! उसका फँसाना सहज नही। वह विनय की तरह भोदू नही है, इत्यादि।

विनय चारों ओर ऐसी लाञ्छना की भयानक मूर्ति देखकर क्षुब्ध हो रहा। आनन्दी ने कहा—विनय, ऐसे अवसर पर तुम्हें क्या करना चाहिए?

विनय ने सिर उठाकर उसके मुँह की ओर देखा।

आनन्दी ने कहा—तुम एक बार परेश बाबू के पास जाओ। उनके साथ वार्तालाप होने ही से सब बातें ठीक हो जायँगी।

[५१]

आनन्दी को देख सुशीला चकित होकर बोली—मैं अभी आपके पास जाने के लिए तैयार हो रही थी।

आनन्दी ने हँसकर कहा—तुम तैयार हो रही थी, यह मैं न जानती थी, किन्तु जिस कारण तुम मेरे पास जाना चाहती थी वह जानकर मैं स्थिर न रह सकी, तुम्हारे पास एकाएक चली आई हूँ।

यह सुनकर कि आनन्दी को ख़बर मिल गई है, सुशीला को बड़ा आश्चर्य हुआ। आनन्दी ने कहा—बेटी, विनय को मैं अपने बेटे की तरह समझती हूँ। विनय के साथ तुम्हारा सम्पर्क होने से जब से तुम लोगो का नाम जाना है तब से बराबर मैं मन ही मन तुम सबको बहुत-बहुत आशीर्वाद देती हूँ। तुम लोगो के ऊपर किसी प्रकार का अन्याय होने की बात सुनकर क्या मै निश्चिन्त रह सकती हूँ? मुझसे तुम्हारा कोई उपकार हो सकेगा या नहीं, यह मैं नहीं जानती! किन्तु मन चञ्चल हो उठा, इसी से तुम्हारे पास दौडी आई हूँ। कहो बेटी! क्या विनय की ओर से कोई अन्याय हुआ है?

सुशीला ने कहा—कुछ भी नहीं। जिस बात पर खूब आन्दोलन हो रहा है, उसकी उत्तरदात्री ललिता ही है। ललिता किसी से कुछ न कहकर एकाएक स्टीमर पर आ बैठेगी, इस बात की विनय बाबू ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। लोग ऐसे भाव से बातें कर रहे हैं मानों उन दोनो मे पहले ही चुपचाप एक साथ जाने की सलाह हो गई थी। फिर ललिता ऐसे तीव्र स्वभाव की लड़की है कि इसका प्रतिवाद करना या सच्ची घटना बताना उसके द्वारा कभी सम्भव नहीं।

आनन्दी ने कहा—इसका कोई उपाय किया जा रहा है या नहीं? जब से विनय ने यह सब सुना है तब से उसके मन मे शान्ति नहीं। वह तो अपने को ही दोषी समझ बैठा है।

सुशीला अपने लाल मुँह को कुछ नीचा करके बोली—अच्छा, आप क्या समझती हैं, विनय बाबू—

आनन्दी ने सकुचित सुशीला की बात को पूरी होने न देकर कहा—देखो बेटी, मैं तुमसे कहती हूँ कि ललिता के लिए विनय से जो करने को कहोगी, वही करेगा। विनय को मैं बचपन से ही देखती आती हूँ, वह एक बार आत्मसमर्पण कर दे तो फिर वह कुछ अपने हाथ नहीं रख सकता। इसलिए मुझे इस बात का बराबर डर लगा रहता है कि उसका मन कहीं ऐसी जगह न जा पड़े जहाँ से उसके लौटने की कोई आशा न रहे।

सुशीला के हृदय से एक भारी बोझ उतर गया। उसने कहा—ललिता की सम्मति के लिए आपको कुछ भी चिन्ता करनी न होगी। मैं उसके हृदय को जानती हूँ। किन्तु विनय बाबू क्या अपना समाज छोड़ने को राज़ी होंगे?

आनन्दी—समाज चाहे तो उसे छोड़ सकता है किन्तु वह समाज को कैसे छोड़ सकेगा? और उसे समाज छोड़ने का प्रयोजन ही क्या है?

सुशीला ने कहा—माँ, आप यह क्या कहती हैं? विनय बाबू हिन्दू-समाज में रहकर ब्राह्म-घर की लड़की से ब्याह करेंगे?

आनन्दी—यदि वह करने को राज़ी हो तो इसमें तुम्हें क्या उज्र है?

सुशीला बड़ी घबराहट मे पड़ी। उसने कहा—यह कैसे होगा, सो मेरी समझ मे नहीं आता।

आनन्दी—मुझे तो यह कुछ भी कठिन प्रतीत नही होता। देखो, मेरे घर मे जो नियम चल रहा है उस पर मैं नही चलती। इसलिए कितने ही लोग मुझे किरिस्तान कहते हैं। किसी क्रिया-कर्म्म के समय मैं अपने आप वहाँ से अलग हो जाती हूँ। तुम यह सुनकर हँसोगी—गोरा मेरे घर का पानी नही पीता। तो क्या मैं इससे कहूँगी कि यह घर मेरा नही है, यह समाज मेरा नहीं है? यह मै कभी नहीं कह सकती। सब भले-बुरे को सिर चढ़ाकर ही मैं इस घर और समाज को लिये हूँ। इससे मेरा तो कुछ नही बिगड़ता। अगर ऐसी बाधा पहुँचेगी जिससे मेरा काम न चल सकेगा तो ईश्वर जो रास्ता दिखावेगा, मैं उसी रास्ते पर चलूँगी। किन्तु जो मेरा है उसे मैं सदा अपना ही कहूँगी। समाज मुझे स्वीकार करे चाहे न करे, यह वह जाने।

सुशीला का सन्देह अब भी न गया। उसने कहा—ब्राह्म-समाज का जो मत है वह यदि विनय बाबू को—

आनन्दी—उसका मत भी तो क़रीब-क़रीब वैसा ही है। ब्राह्म-समाज का मत संसार के बाहर का नही है। तुम्हारी पत्रिकाओं मे जो उपदेश प्रकाशित होते हैं, वे प्रायः सभी पढ़कर मुझे सुनाये जाते हैं। उसमे कहीं कुछ भेद देखने मे नही आता।

इसी समय 'सुशीला बहन,' पुकारती हुई ललिता घर मे आई और आनन्दी को देखकर लज्जित हो गई। वह सुशीला का मुँह देखकर ही समझ गई कि अभी मेरी ही चर्चा हो रही थी। वह घर से बाहर चली जाने पर ही चैन पाती, परन्तु अब वहाँ से चले जाने का कोई उपाय न रहा।

"आओ, ललिता, आओ मेरी बेटी," यह कहकर आनन्दी ने बड़े प्यार से उसका हाथ पकड़कर अपने पास बिठाया मानों ललिता उसकी एक विशेष आत्मीय हो गई है।

अपनी पहली बात का तार फिर से जोड़कर आनन्दी ने सुशीला से कहा—देखो भले के साथ बुरे का मिलना बड़ा ही कठिन है। किन्तु तो भी वह मिल जाता है और किसी तरह सुख-दुःख से उसका भी समय बीत जाता है। इससे यह नही कहा जा सकता कि सदा बुराई ही होती है, कभी भलाई नही होती। यदि यह सम्भव है, तो फिर केवल मन का मिलान न होने से दो मनुष्य क्यों परस्पर मिल सकें यह मेरी समझ में नही आता। मनुष्यों का असली मिलन मन से होता है।

सुशीला मुँह नीचा किये बैठी रही। आनन्दी ने कहा—तुम्हारा ब्राह्म-समाज क्या मनुष्य को मनुष्य के साथ मिलने नही देगा? ईश्वर ने जिन दो व्यक्तियों का हृदय एक कर दिया है, उनको तुम्हारा समाज बाहर से क्यों नही मिलने देता? क्या ऐसा कोई समाज नही जो साधारण बात के ऊपर

ध्यान न देकर ऊँचे लक्ष्य की ओर दृष्टि रक्खे। छोटे बड़े सबको मिला ले, ईश्वर के साथ मनुष्य क्या ऐसे झगड़े करके ही चलेंगे ? समाज का सङ्गठन क्या इसी लिए है ?

आनन्दी इस विषय पर इतने आन्तरिक उत्साह के साथ आलोचना करने मे प्रवृत्त हुई है, तो क्या ललिता के साथ विनय के व्याह की बाधा दूर करने ही के लिए ? इस सम्बन्ध मे कुछ द्विधा-भाव अनुभव करके उसको दूर कर देने के लिए सुशीला का मन सम्पूर्ण रूप से उद्यत हो उठा तो क्या इसके भीतर और कोई उद्देश्य न था ? यदि सुशीला ऐसे संस्कार मे लिप्त है तो आनन्दी का वह अभिप्राय किसी तरह सिद्ध न होगा। विनय के ब्राह्म न होने से यह विवाह कदापि न हो सकेगा, यदि यही सिद्धान्त हो तो बड़े दुःख के समय मे भी आनन्दी ने कई दिनों से जिस आशा की सृष्टि की थी वह मिट्टी मे मिल जायगी। आज ही विनय ने उससे यह पूछा था—माँ, क्या ब्राह्म-समाज मे नाम लिखाना होगा ? क्या यह भी स्वीकार करना होगा ?

इस पर आनन्दी ने कहा था—नही, नही, इसकी कोई आवश्यकता नही दीखती।

विनय—यदि वे लोग न माने, हठ करे तो ?

आनन्दी बड़ी देर तक चुप रहकर बोली—नहीं, यहाँ उनका हठ नही चलेगा।

सुशीला ने आनन्दी की आलोचना में योग न दिया। वह एकदम चुप साधे बैठी रही। आनन्दी समझ गई कि सुशीला का मन अब भी उसका साथ नहीं देता।

आनन्दी मन ही मन सोचने लगी, मेरा मन जो समाज के समस्त बन्धनों से बाहर निकल पड़ा था वह केवल गोरा के स्नेह से। तो क्या गोरा के साथ सुशीला के मन का कोई सम्बन्ध नहीं है? यदि वह गोरा को हृदय से चाहती होती तो यह इतनी छोटी बात ऐसा बृहत् आकार धारण न करती।

आनन्दी का मन कुछ उदास हो गया। कारागार से गोरा के छूटने में अब सिर्फ़ दो एक दिन बाक़ी रह गये हैं। वह मन में सोच रही थी कि मेरे लिए सुख का एक आवास तैयार हो रहा है। इस दफ़े, जैसे होगा, गोरा को घेर रक्खूँगी। कहीं उसे जाने न दूँगी। नहीं तो फिर आश्चर्य नहीं कि वह कहीं किसी भारी विपदा में फँस जाय। किन्तु गोरा को घेर रखना स्त्री के साध्य से बाहर की बात है। हिन्दू-समाज की किसी लड़की के साथ गोरा का व्याह कर देना ठीक न होगा। इसलिए जब-जब हिन्दू घर की लड़की के साथ उसके व्याह की बात हुई है तब-तब आनन्दी ने उसे नामञ्जूर कर दिया है। गोरा कहा करता है, मैं व्याह न करूँगा। वह माँ होकर भी कभी इसका प्रतिवाद नहीं करती, इससे लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था। इस दफ़े गोरा के दो-एक लक्षण देख वह मन ही मन प्रसन्न हुई थी। इसी लिए सुशीला की

ख़ामोशी ने उसके हृदय पर कड़ी चोट पहुँचाई। किन्तु वह सहज ही सङ्कल्प छोड़नेवाली न थी। उसने मन ही मन कहा—अच्छा देखा जायगा।

[५२]

परेश बाबू ने कहा—विनय, तुम एक सङ्कट से ललिता का उद्धार करने के लिए ऐसा दुःसाहसिक काम करो, यह मैं नहीं चाहता। समाज की आलोचना का विशेष मूल्य नहीं है। आज जिस विषय पर तरह-तरह की गप्पें उड़ रही हैं दो दिन के बाद वह किसी को याद भी न रहेगा।

ललिता के प्रति कर्तव्यपालन ही के लिए विनय कटिबद्ध होकर आया था और इस विषय में उसे कुछ भी सन्देह न था। वह जानता था कि इस विवाह से समाज में विरोध उपस्थित होगा। और इससे भी बढ़कर उसे यह भय था कि गौरमोहन बहुत क्रोध करेगा। किन्तु केवल कर्तव्यबुद्धि की दुहाई देकर इन सब अप्रिय कल्पनाओं को उसने मन से हटा दिया था। ऐसी अवस्था में परेश ने जब एकाएक उसकी कर्तव्य-बुद्धि पर असम्मति प्रकट की तब विनय ने उसे किसी तरह काटना न चाहा।

उसने कहा—मैं आपके स्नेह-ऋण को कभी चुका न सकूँगा। मेरे कारण यदि आपके घर में दो दिन के लिए भी कोई तनिक सी अशान्ति हो तो वह मैं कभी नहीं सह सकता।

परेश बाबू—विनय, तुम मेरे कहने का आशय ठीक-ठीक नहीं समझते। मेरे ऊपर जो तुम्हारी श्रद्धा है उससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। किन्तु उस श्रद्धा को शिरोधार्य करके कर्तव्य-पालन के अभिप्राय से जो तुम मेरी कन्या से व्याह करने को प्रस्तुत हुए हो यह मेरी कन्या के लिए गौरव की वात नहीं। इसी लिए मैंने तुमसे कहा था कि कोई ऐसा भारी सङ्कट नहीं, जिसके लिए तुम्हे कुछ त्याग स्वीकार करने की आवश्यकता हो।

जो हो, विनय को कर्तव्य के हाथ से छुटकारा मिला। किन्तु पिंजरे का द्वार खुला पाने से पक्षी जैसे झटपट उड़ जाता है वैसे विनय का मन निष्कृति के खुले मार्ग पर दौड़ न सका। कर्तव्य-बुद्धि को उपलक्ष्य करके वह वहुत दिनों से संयम के वन्धन को अनावश्यक समझ उसे तोड़ बैठा है। जहाँ उसका मन डरकर एक पग आगे वढ़ता और फिर अपराधी की भाँति पीछे हट आता था, वहाँ अव वह निर्भय हो डेरा डाल बैठा है। अव उसको वहाँ से लौटाना कठिन है। जो कर्तव्यबुद्धि उसे घसीटकर यहाँ तक ले आई है वह कह रही है कि अव ज़रूरत नहीं, चलो, यहाँ से लौट चलो। मन कहता है, नहीं तुमको ज़रूरत नहीं है तो तुम लौट जाओ; मैं यहीं रहूँगा।

परेश ने जव कोई भाव छिपा रखने का अवसर न दिया तव विनय ने कहा—आप ऐसा न समझें कि मैं किसी कर्तव्य के

अनुरोध से यह कष्ट स्वीकार करना चाहता हूँ। यदि आप सम्मति दें तो मेरे लिए इससे बढ़कर और सौभाग्य क्या हो सकता है। केवल मुझे भय है, पीछे—

सत्यप्रिय परेश बाबू ने सङ्कोचरहित होकर कहा—तुम जिस बात का भय करते हो उसकी कोई बुनियाद नहीं। मैंने सुशीला से सुना है, ललिता का मन तुमसे विमुख नहीं है।

विनय के मन में एक आनन्द की विद्युत् चमक गई। ललिता के मन की एक गूढ़ बात सुशीला से प्रकट हुई है। कब, कैसे प्रकट हुई ? दोनों सखियों में इस तरह के गुप्त भाषण होने का रहस्यमय सुख, विनय के हृदय में, तीव्र आघात पहुँचाने लगा।

विनय ने कहा—यदि आप मुझे योग्य समझते हैं तो इससे बढ़कर मेरे लिए आनन्द की बात और क्या हो सकती है।

परेश बाबू—तुम ज़रा ठहरो, मैं ऊपर से हो आऊँ।

वे शिवसुन्दरी से सलाह लेने गये। शिवसुन्दरी ने कहा—विनय को ब्राह्म-धर्म की दीक्षा लेनी होगी।

परेश बाबू—हाँ, वह तो लेनी ही होगी।

शिवसुन्दरी—यह पहले ही ठीक हो जाना चाहिए। विनय को यहीं बुलाओ न।

ऊपर आने पर विनय से शिवसुन्दरी ने कहा—तो दीक्षा का दिन निश्चित हो जाय।

विनय ने कहा—दीक्षा की क्या आवश्यकता है ?

शिवसुन्दरी—आवश्यकता नही है ? यह क्या कहते हो ? दीक्षा ग्रहण किये बिना ब्राह्म-समाज मे तुम्हारा व्याह कैसे होगा ?

विनय कुछ न बोला, सिर नीचा करके बैठा रहा। विनय हमारे घर मे विवाह करने को राज़ी हुआ है, यह सुनकर परेश बाबू ने समझ लिया था कि वह दीक्षा ग्रहण करके ही ब्राह्म-समाज मे प्रवेश करेगा।

विनय ने कहा—ब्राह्म-समाज के धार्मिक मत पर तो मेरी श्रद्धा है और अब तक मेरा व्यवहार भी उसके विरुद्ध नही हुआ है। तो फिर विशेष भाव से दीक्षा लेने की ज़रूरत क्या ?

शिवसुन्दरी ने कहा—यदि मत मिलता है तो दीक्षा लेने ही मे क्या क्षति है ?

विनय ने कहा—मै एकदम हिन्दू-समाज को छोड़ दूॅ, यह मुझसे न हो सकेगा।

शिवसुन्दरी ने कहा—तो इस बात की आलोचना करना ही आपके लिए अनुचित हुआ है। क्या आप हम लोगो का उपकार करने ही के लिए, दया करके, मेरी कन्या के साथ व्याह करने को राज़ी हुए हैं ?

विनय को इस बात की बड़ी चोट लगी। उसने देखा, उसका प्रस्ताव सचमुच इन लोगों के लिए अपमानजनक हो उठा है।

शिष्ट विवाह का आईन पास हुए प्रायः एक वर्ष हुआ था। उस समय गौरमोहन और विनय ने समाचार-पत्रों मे इस क़ानून के विरुद्ध तीव्र समालोचना की थी। आज उस शिष्ट (सिविल) विवाह को स्वीकार कर विनय अपने को हिन्दू न माने, यह बड़ी मुश्किल बात है।

विनय हिन्दू-समाज मे रहकर ललिता से व्याह करे, यह बात परेश बाबू की आत्मा ने स्वीकार न की। लम्बी साँस लेकर विनय उठ खड़ा हुआ और परेश बाबू तथा शिवसुन्दरी को प्रणाम करके कहा—मुझे माफ़ कीजिए। मै अब इस बात को बढाकर अपराधी बनना नही चाहता। यह कहकर वह घर से चला गया।

सीढी के पास आकर उसने देखा, सामने बरामदे के एक कोने मे छोटा डेस्क लेकर ललिता अकेली बैठी चिट्ठी लिख रही है। पैरो की आहट सुनते ही ललिता ने आँख उठाकर विनय के मुँह की ओर देखा। उसकी उस क्षणिक दृष्टि ने विनय के चित्त को चञ्चल कर दिया। विनय के साथ ललिता का कुछ नया परिचय नही है। कई बार उसने उसके मुँह की ओर देखा है। किन्तु आज उसकी दृष्टि मे कुछ और ही रहस्य भरा था। ललिता के मन की जो बात सुशीला जान गई है वह आज ललिता के करुणा-भरे नेत्रो मे उमडकर सजल मेघ की भाँति विनय को दिखाई दी। विनय की भी उस ओर टकटकी बँध गई। वह बड़े कष्ट से अपने मन

की गति को रोककर ललिता से कुछ सम्भाषण किये विना सीढ़ी से उतरकर चला गया।

[५३]

गौरमोहन ने जेल से छूटकर देखा कि परेश वावू और विनय फाटक के वाहर उसकी प्रतीक्षा मे खड़े हैं।

एक महीना कुछ अधिक समय नही होता। एक महीने से कुछ अधिक दिन गौर ने अपने वन्धुवर्ग से वियुक्त होकर भ्रमण किया है, किन्तु जेल का एक महीना पूरा करके कारागार से मुक्त होकर जव उसने परेश वावू और विनय को देखा तव उसे जान पड़ा मानो उसने फिर पुराने वन्धुओ के परिचित संसार मे नवीन जन्म पाया है। उस राजमार्ग मे, खुले आकाश के नीचे, प्रभातकालिक प्रकाश मे परेश का शान्ति और स्नेह से भरा स्वाभाविक शान्त मुँह देखकर उसने जैसी प्रसन्नता और भक्ति से उनके चरणो की धूल सिर मे लगाई वैसी भक्ति या प्रसन्नता इसके पूर्व उसने कभी नही दिखाई थी। परेश ने गौर को वड़े प्यार से गले लगाया।

गौर ने हँसकर विनय का हाथ पकड़कर कहा—विनय, स्कूल से आरम्भकर कालेज तक हम तुम दोनों ने एक साथ शिक्षा प्राप्त की, सदा एक साथ रहे। किन्तु इस विद्यालय मे मै तुम्हे छोड़ अकेला चला आया।

विनय न तो इस पर हँस ही सका और न कोई बात ही बोल सका।

गौर ने पूछा—माँ कैसी हैं?

विनय—अच्छी तरह हैं।

परेश ने कहा—आओ बाबू! तुम्हारे लिए देर से गाड़ी खड़ी है।

जब तीनों गाड़ी में सवार होने को जा रहे थे उस समय अविनाश हाँफता-हाँफता वहाँ आया। उसके पीछे लड़कों का झुण्ड था।

अविनाश को देखते ही गौर ने झटपट गाड़ी पर सवार होना चाहा। किन्तु उसने उसके पूर्व ही वहाँ पहुँच रास्ता रोककर कहा—गौरमोहन बाबू, ज़रा ठहरिए।

लड़के उच्च स्वर से गीत गाने लगे—

> बीती दुख की रात भयङ्कर हुआ मनोज्ञ प्रभात।
> पराधीनता-बन्धन टूटा मिटा हृदय आघात॥

गौरमोहन का मुँह क्रोध से लाल हो गया। उसने मेघ की तरह गरजकर कहा—चुप रहो।

लड़के डरकर चुप हो गये।

गौरमोहन ने कहा—अविनाश, यह क्या माजरा है?

अविनाश ने अपनी चादर के भीतर से केले के पत्ते में लपेटी हुई एक फूल-माला निकाली। उसके अनुवर्ती एक बालक ने सुनहरे अक्षरों में छपा हुआ अभिनन्दनपत्र हाथ में लेकर कोमल स्वर में पढ़ना आरम्भ किया।

गोरा ने अविनाश की माला को वलपूर्वक लौटाकर और क्रोध को दबाकर कहा—मालूम होता है, अव तुम लोगो का अभिनय शुरू हुआ। शायद तुम लोग एक महीने से इस अभिनय की तैयारी कर रहे थे ?

अविनाश बहुत दिनों से इस बात को सोचे हुए था कि जब गौरमोहन जेल से छूटेगा तव मैं अभिनन्दन-पत्र और पुष्प-माला द्वारा अपनी गुरुभक्ति दिखलाऊँगा। हम जिस समय की बात कह रहे है उस समय ऐसा उपद्रव जारी न था। अविनाश ने इस विषय मे विनय से न तो कोई सलाह पूछी और न उसे इस मन्त्रणा के भीतर ही लिया। इस अपूर्व कार्य की सारी बहादुरी वह आप ही लेने को ललच रहा था। यहाँ तक कि समाचार-पत्रो मे इसका विवरण देने के लिए उसने आप ही लेख लिखकर तैयार कर रक्खा था। वहाँ से लौटकर उसमे दो-एक बातें और बढ़ा करके उसे भेज देने का निश्चय किया था।

गौरमोहन के अपमान से क्षुब्ध होकर अविनाश ने कहा—आपका यह कहना न्यायसङ्गत नहीं है। आपने जेल मे जितने कष्ट भोगे है, उनसे कुछ कम कष्ट हम लोगों को भोगना नहीं पडा है। एक महीने से हम लोगों का हृदय चिन्ता की आग से जल रहा था।

गौर ने कहा—अविनाश, तुम भूलते हो—हृदय का जलना तुम्हारी अज्ञता का परिचय दे रहा है। यदि तुम धीरता को हृदय मे स्थान देते तो हृदय जलने की भ्रान्ति तुम्हें न होती।

अविनाश तो भी न दबकर बोला—राजपुरुष ने आपका अपमान किया है ; किन्तु आज सारी भारतभूमि की ओर से हम यह सम्मान की माला—

गौरमोहन बोल उठा—अब सहन नहीं होता। माफ़ करो।

अविनाश और उसके साथी बालकों को एक ओर हटाकर गौर ने कहा—परेश बाबू, आप गाड़ी मे सवार हो।

परेश बाबू गाड़ी मे सवार होकर स्वस्थ हुए। गौरमोहन और विनय भी सामने की सीट पर बैठ गये।

स्टीमर के द्वारा चल करके दूसरे दिन सबेरे सबके सब कलकत्ते पहुँचे। गौरमोहन के कई महीनों मे घर आने की बात सुन पहले ही से उसके घर के फाटक पर दर्शकों की खासी भीड़ जम गई थी। किसी तरह उन लोगों के हाथ से छुटकारा पाकर गौरमोहन भीतर आनन्दी के पास जा पहुँचा। आनन्दी आज खूब सबेरे स्नानादिक कर्म करके उससे मिलने के लिए प्रस्तुत हो बैठी थी। गौर ने उसके पैरो मे गिरकर प्रणाम किया। आनन्दी की आँखों से आँसू बहने लगे। इतने दिन जिन आँसुओ को वह रोके हुए थी उन्हे आज किसी तरह न रोक सकी।

कृष्णदयाल गङ्गास्नान करके ज्योंही घर पर आये त्योंही गौर उनसे मिलने गया। दूर ही से उनको प्रणाम किया। उनके पैर नहीं छुए। कृष्णदयाल संकुचित हो कुछ दूर एक

आसन पर बैठे। गोर ने कहा—पिताजी, मै प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ।

कृष्णदयाल—इसका तो मैं कोई प्रयोजन नहीं देखता।

गोर—मै जेल मे और किसी कष्ट को कुछ मन मे न लाता था। केवल अपने को अत्यन्त अपवित्र मानकर दुःख पाता था; अपवित्रता की ग्लानि अब भी मेरे मन से दूर नहीं होती। प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा।

कृष्णदयाल ने व्यस्त होकर कहा—नहीं, नहीं, तुमको यह सब करना न होगा। मैं इसमे अपनी सम्मति नहीं दे सकता।

गोर—अच्छा, न होगा तो मैं इस सम्बन्ध मे पण्डितों से पूछ लूँगा।

कृष्णदयाल—किसी पण्डित से पूछने की आवश्यकता नहीं। मै तुम्हे स्वस्ति देता हूँ, तुमको प्रायश्चित्त का प्रयोजन नहीं।

कृष्णदयाल के सदृश नैष्ठिक आचारवान् लोग गोर के लिए किसी प्रकार का नियम-संयम क्यों स्वीकार करना नही चाहते—स्वीकार न करने की कौन बात, एकबारगी उसके विरुद्ध ज़िद पकड़ बैठते है। आज तक इसका कोई अर्थ गोरमोहन की समझ मे न आया।

आनन्दी ने आज चौके मे गोर के पास ही विनय का आसन रखवाया था। गोर ने कहा—माँ, विनय का आसन यहाँ से ज़रा हटाकर बिछाओ।

आनन्दी ने आश्चर्य के साथ पूछा—क्यो, विनय ने क्या अपराध किया है ?

गौर—विनय का कोई अपराध नही। मै ही अशुद्ध हूँ।

आनन्दी ने कहा—अशुद्ध होने से क्या हुआ। विनय इतना आचार-विचार नहीं मानता।

गौर—विनय नही मानता तो न माने। मैं तो मानता हूँ।

भोजन करके जब दोनो मित्र छत के ऊपरवाली निर्जन कोठरी मे जा बैठे तब उन दोनो मे पहले कौन क्या बात बोले, इसी का कुछ देर मन ही मन विचार होता रहा। इस एक महीने के भीतर विनय के सम्बन्ध मे जो एक नई बात उठ खड़ी हुई है, वह आज गौरमोहन से कैसे कहे यह उसकी समझ मे न आया। गोरा परेश बाबू के घर के लोगो का कुशल-समाचार पूछना चाहता था, परन्तु कुछ न पूछ सका। विनय स्वयं उसकी चर्चा करेगा, यह सोच वह उसकी अपेक्षा कर रहा था। हॉ, उसने परेश बाबू से उनकी लड़कियो का कुशल अवश्य पूछा था। किन्तु वह केवल शिष्टता का प्रश्न था। "वे सब अच्छी तरह है", इस समाचार से भी कुछ अधिक ब्योरेवार हाल जानने के लिए उसका मन विशेष उत्सुक था।

इसी समय महिम घर मे आकर एक कुरसी पर बैठा। सीढ़ी पर चढ़ने के श्रम से कुछ देर वह हॉफता रहा। इसके बाद उसने कहा—विनय, इतने दिन तो गोरा की प्रतीक्षा की

गई। अब तो वह बाधा भी नहीं रही। अब दिन मुहूर्त ठीक हो जाना चाहिए। क्यों गौर भैया, जो बात हो रही है सो तुम समझ रहे हो न ?

गोरा कुछ न कहकर ज़रा हँसा।

महिम ने कहा—हँसते हो, तुम सोचते हो,—भैया अब भी उस बात को नहीं भूले है। किन्तु कन्या सपना तो है नहीं। स्पष्ट ही देख रहा हूँ, वह एक सत्य पदार्थ है। वह भूलने की वस्तु नहीं है। हँसो मत, इस दफ़े जो हो, कुछ ठीक कर दो।

गौर ने कहा—जिनके द्वारा ठीक होगा, वे तो स्वयं उपस्थित है।

महिम—फिर तुम टाल-मटोल करने लगे। जिसका अपना ठीक नहीं, वह ठीक क्या करेगा। तुम आये हो, अब तुम्हारे ही ऊपर सब भार है।

आज विनय गम्भीर भाव धारण कर चुपचाप बैठा रहा। उसने हँसी मे भी कोई बात कहने की चेष्टा न की।

गौर ने समझा, मामला कुछ टेढ़ा है। उसने कहा—लोगो को निमन्त्रण देने का भार मै ले सकता हूँ। मिठाई बनाने की फरमायश भी दे सकता हूँ। परोसने के लिए भी मै तैयार हूँ किन्तु विनय आपकी लड़की से ब्याह करे या न करे, इसका भार मै अपने ऊपर नहीं ले सकता। जिनके द्वारा संसार मे ये काम होते है उनसे मेरा विशेष परिचय नहीं। मै वैसे लोगो को दूर ही से नमस्कार करता हूँ।

महिम ने कहा—तुम उनसे दूर रहना चाहते हो, किन्तु वे तुमसे दूर रहना नहीं चाहते। सब भार तुम दूसरे ही के ऊपर देकर यदि अपने ऊपर कुछ न लोगे तो कदाचित किसी दिन तुम्हे अनुताप करना होगा। यह मै अभी से कह रखता हूँ।

गौरमोहन—जो भार मेरे लेने का नहीं उसको न लेने से यदि अनुताप करना होगा तो मै वह करने को राज़ी हूँ। किन्तु भार लेकर अनुताप करना बडा कठिन है। मैं उसी से बचना चाहता हूँ।

महिम ने कहा—ब्राह्मण का लड़का अपनी जाति, धर्म, कुल, मान मर्यादा गँवावेगा और तुम चुपचाप बैठे-बैठे सब देखोगे? देशी लोगो के हिन्दूधर्म की रक्षा के लिए तुम बेचैन रहा करते हो, खाना-पीना तुम्हे अच्छा नही लगता, रात को नींद नहीं आती; इधर तुम्हारा परम मित्र ही यदि जाति-धर्म को जलाञ्जलि देकर ब्राह्म के घर ब्याह कर बैठे तो तुम किसी के सामने मुँह दिखलाने योग्य न रहोगे। विनय, तुम मन ही मन क्रोध करते होगे, किन्तु ऐसे कई लोग है जो तुम्हारे परोक्ष मे गोरा से ये सब बाते कहे बिना न रहेगे, बल्कि वे यह कहने के लिए छटपटा भी रहे होगे। मैने तुम्हारे सामने ही कह डाला। इससे सबके पक्ष मे अच्छा ही होगा। यदि यह बात झूठी ही है तो इसे कह देने ही से इसकी यहीं समाप्ति हो जायगी। अगर सच है तो इसे आपस मे समझ-बूझ लो।

महिम उठकर चला गया। विनय तब भी कुछ न बोला। गौरमोहन ने पूछा—विनय, बात क्या है?

विनय ने कहा—दो-एक बातें कह देने ही से सारी घटना समझ मे आ जाय, यह कठिन है। इसी से मैंने सोचा था कि धीरे-धीरे तुमसे सब बाते समझाकर कहूँगा। किन्तु संसार मे मेरी सुविधा के अनुसार कोई काम आराम से होने-वाला नहीं दीखता। सारी घटनाएँ शिकारी बाघ की तरह पहले सिकुड़कर धीरे-धीरे चुपचाप चलती है, फिर एकदम उछलकर गर्दन पर सवार हो जाती है। इसके सिवा उसकी ख़बर भी कोयले मे छिपी आग की तरह पहले दबी रहती है, इसके बाद एक ही बार ख़ूब ज़ोर से भभक उठती है। तब वह सँभाली नहीं जाती। इसी लिए कभी-कभी मन मे आता है, कर्म मात्र को त्यागकर एकदम पहाड़ की भाँति अटल हो बैठ रहना ही मनुष्य के लिए मुक्ति है।

गौर ने हँसकर कहा—तुम अकेले पहाड़ बनकर बैठे रहोगे तो इससे मुक्ति कहाँ? यदि साथ ही सारे संसारी जीव पहाड़ न हो जायँ तो तुम्हे वे क्यों स्थिर रहने देंगे? उससे और भी विपद की सम्भावना है। संसार जब कर्मक्षेत्र है, सभी लोग जब अपने-अपने कामो मे लगे है, तब तुम्हे सिर पर हाथ रखकर बैठने से क्या मिलेगा? इस हेतु तुम्हे सदा सतर्क रहना होगा, जिसमे कोई घटना तुम्हारी सावधानी को

नष्ट न कर दे। ऐसा न हो कि सब लोग आगे बढ़ जायँ और तुम पीछे रह जाओ।

विनय—यही बात ठीक है। मैं प्रस्तुत नही रहता, इस दफ़े भी मैं प्रस्तुत न था। किस ओर क्या हो रहा है, इसकी मैं कुछ भी ख़बर नही रखता था। किन्तु कोई घटना जब आ पड़ती है तब उसका दायित्व तो लेना ही होता है। जिस बात का आरम्भ से ही न होना अच्छा था, आज वह अप्रिय होने पर भी तो अस्वीकार करने की नही है।

गौर—घटना कैसी है, यह न जानने से उसके सम्बन्ध मे कुछ भला-बुरा सोचना मेरे लिए कठिन है।

विनय सावधान होकर बैठा और बोला—एक अनिवार्य घटना से ललिता के साथ मेरा सम्बन्ध बेतरह उलझ गया है। यदि मैं उससे ब्याह न करूँगा तो बहुत दिनों तक उसे समाज मे अन्याय और अमूलक अपमान सहना पड़ेगा।

गौर—कैसे क्या उलझ गया है, यह सुना चाहता हूँ।

विनय—इसके भीतर बहुत बातें है, जो क्रमशः तुमसे कहूँगा। किन्तु इस बात को तुम अभी मान लो।

गौर—अच्छा, मैं मान लेता हूँ। किन्तु इस सम्बन्ध मे मेरा कहना यही है कि यदि घटना अनिवार्य है तो उसका दुःख भी अनिवार्य समझो। यदि समाज मे ललिता को अपमान का दुःख भोगना ही बदा है तो उसका कोई उपाय नहीं।

विनय—किन्तु उस दुःख का निवारण करना तो मेरे हाथ मे है।

गौर—है तो अच्छा ही है। किन्तु यह हठ करने से तो न होगा। कोई अन्य उपाय न रहने से चोरी करना या ख़ून करना भी तो मनुष्य के हाथ मे है किन्तु यह क्या कोई कर्त्तव्य है? ललिता के साथ विवाह करके तुम उसके प्रति कर्त्तव्य करना चाहते हो, क्या यही तुम्हारे कर्तव्य की इतिश्री है? अपने समाज के प्रति तुम्हारा कोई कर्तव्य नही?

समाज के प्रति कर्तव्य का स्मरण करके विनय ब्राह्म-विवाह मे सम्मत नहीं हुआ है—इस बात को उसने छिपा लिया। अब उसे तर्क की सूझी। वह बोला—मालूम होता है, इस जगह तुम्हारे साथ मेरा मत न मिलेगा। मैं व्यक्ति की ओर आकृष्ट होकर समाज के विरुद्ध कोई बात नही बोलता। मैं कहता हूँ, व्यक्ति और समाज दोनों के ऊपर एक धर्म है। उसी के ऊपर दृष्टि रखकर चलना होगा। जैसे व्यक्ति का बचाना मेरा परम कर्तव्य नही, वैसे समाज का मन रखना भी मेरा परम कर्तव्य नहीं। एक मात्र धर्म की रक्षा करना ही मेरा परम कर्तव्य है।

गौर—जो धर्म व्यक्तिगत नही, समाजगत नही, उसको मैं धर्म नही मानता। विनय की आँखे रँग गईं। उसने कहा—मैं मानता हूँ। व्यक्ति और समाज की भित्ति पर धर्म नही है, धर्म की दीवार पर ही व्यक्ति और समाज स्थित

है। समाज जिसे चाहे उसी को यदि धर्म मान लिया जाय तो यह समाज का मानो एक तरह से नाश करना हुआ। यदि समाज मेरी किसी धर्म-सङ्गत स्वाधीनता मे बाधा डाले तो इस अनुचित बाधा को न मानकर चलने ही मे समाज के प्रति कर्तव्य पालन कहा जायगा। यदि ललिता से मेरा ब्याह करना अन्याय नही है, वरंच उचित है, तो ऐसी अवस्था मे समाज प्रतिकूल होने के कारण उससे निरस्त हो जाना ही मेरे लिए अधर्म होगा।

गोर—न्याय-अन्याय क्या अकेले तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है? इस विवाह के द्वारा तुम अपनी भावी सन्तानों को कहाँ ले जाओगे, इस बात को भी तो एक बार सोचो।

विनय—इसी तरह के सोच-विचार से मनुष्य सामाजिक अन्याय को चिरस्थायी कर डालता है। साहब की लात खाकर जो किरानी कई दिनों तक अपमान सहन करता है उसे तुम दोष क्यों देते हो? वह भी तो अपनी सन्तान की बात सोचकर ही वैसा करता है।

गोर के साथ तर्क करके विनय अब जिस जगह आ पहुँचा है, वहाँ पहले न था। इसके पूर्व समाज के साथ विच्छेद की सम्भावना से उसका हृदय संकुचित हो रहा था। इस सम्बन्ध मे वह कभी मन मे कोई बात न सोचता था और गोरमोहन के साथ यदि तर्क न चलता तो विनय का मन अपने पुराने संस्कार के अनुसार इस प्रवृत्ति की विपरीत

दिशा मे ही जाता। किन्तु वादानुवाद करते-करते उसकी प्रवृत्ति, कर्तव्य-बुद्धि को अपनी सहायक बनाकर, प्रबल हो उठी।

गौरमोहन के साथ खूब तर्क छिड़ गया। ऐसी आलोचना मे गौरमोहन प्रायः युक्ति से काम नहीं लेता। वह ज़बर्दस्ती के साथ अपने मत को पुष्ट करना चाहता है। ऐसा ज़ोर बहुत कम लोगों मे ही देखा जाता है। इसी ज़ोर से आज उसने विनय की सब बातों को दूर ढकेलकर आगे बढ़ने की चेष्टा की, किन्तु आज वह बाधा पाने लगा। जब तक एक ओर गौर की राय और दूसरी ओर विनय की राय रहती थी तब तक विनय हार मानता रहा—किन्तु आज दोनों ही ओर वास्तविक मनुष्य है। गोरा वायु-बाण से वायु-बाण को हटा न सका। आज मनुष्य के वेदना-पूर्ण हृदय मे बाण न चुभा सका।

आख़िर गोरा ने कहा—मैं तुम्हारे साथ वितण्डावाद करना नही चाहता। इसमे तर्क की बात कुछ नहीं है। इसमे केवल हृदय के द्वारा एक समझने की बात है। ब्राह्म-बालिका के साथ ब्याह करके तुम देश के सर्वसाधारण लोगो से अपने को अलग करना चाहते हो, यही मेरे लिए अत्यन्त खेद का विषय है। तुम यह काम कर सकते हो, पर मुझसे तो ऐसा काम कभी नही हो सकता। इसी जगह मुझमे और तुममे प्रभेद है। समझ-बूझ मे अन्तर नही है। मेरा प्रेम जहाँ है, वहाँ तुम्हारा नही। तुम जहाँ छूरी चलाकर अपने को मुक्त

करना चाहते हो वहाँ तुम्हारा कुछ भी मोह नही, परन्तु मेरे तो वहाँ होठो प्राण आते हैं। मैं अपने भारतवर्ष को चाहता हूँ। तुम चाहे उसे जितना दोष दो, जितनी गालियाँ दो, मैं उसी को चाहता हूँ। उससे बढ़कर मैं अपने को या और किसी मनुष्य को नहीं चाहता। मैं ऐसा कोई काम करना नही चाहता हूँ जिससे भारतवर्ष के साथ मेरा रत्ती भर भी विच्छेद हो।

विनय कुछ उत्तर देना ही चाहता था, इतने मे गौरमोहन ने कहा—नहीं, तुम वृथा मेरे साथ विवाद करते हो। सारी दुनिया जिस भारत को त्याग रही है, जिसका अपमान कर रही है, उसी के साथ मैं अपमान के आसन पर बैठना चाहता हूँ। यह जातिभेद का भारतवर्ष, यह कुसंस्कार-भरा भारतवर्ष, यह मूर्ति-पूजक भारतवर्ष मेरा है और मै इसका हूँ। तुम यदि इससे अलग होना चाहते हो तो मुझसे भी अलग होगे।

यह कहकर गौरमोहन घर से निकलकर छत के ऊपर घूमने लगा। विनय चुपचाप बैठा रहा। दरवान ने आकर गौरमोहन को ख़बर दी कि बहुतेरे बाबू लोग आपसे भेट करने के लिए बाहर खड़े हैं। भागने के लिए एक अच्छा बहाना पाकर गौरमोहन को ख़ुशी मालूम हुई। वह वहाँ से चला गया।

बाहर आकर देखा, अन्यान्य लोगो के साथ अविनाश भी आया है। गौरमोहन ने समझा था कि अविनाश रुष्ट हो गया

होगा। परन्तु उसके रुष्ट होने का कोई लक्षण नही देख पड़ा। उलटा वह पूर्ण प्रशंसा के वाक्यों मे गौरमोहन के द्वारा कल का अभिनन्दन लौटाये जाने का वृत्तान्त सबके सामने कह रहा था। उसने कहा—गौरमोहन के ऊपर मेरी भक्ति और भी बढ़ गई है। अब तक मैं उनको असामान्य मनुष्य जानता था, परन्तु कल की घटना से जाना कि वे महापुरुष हैं। हम कल उनका सम्मान करने गये थे। उन्होंने जिस सादगी के साथ उस सम्मान की उपेक्षा की, उस तरह उपेक्षा करनेवाले आज-कल कै मनुष्य मिलेगे? यह क्या सबसे हो सकता है?

एक तो गौर का मन यों ही व्याकुल था, इस पर अविनाश के मुँह से इस प्रकार अपनी प्रशंसा की बात सुनकर उसका सर्वाङ्ग जल उठा। उसने उकताकर कहा—देखो अविनाश, तुम भक्ति करके ही मनुष्य का अपमान करते हो। सड़क पर तुम मुझे अभिनन्दनपत्र और माला देकर तमाशा करना चाहते थे। मुझको आधार बनाकर तुम लोग एक अभिनय करना चाहते थे, उसे मैं कैसे क़बूल करता। ऐसी निर्लज्जता की मुझसे कभी आशा न रक्खो। मै तुम्हारे कौतुक का भाग न ले सका, इसी को तुम महापुरुष का लक्षण कहते हो? क्या तुम हमारे इस देश को केवल एक तमाशे का सामान समझ बैठे हो? क्या तमाशा दिखलाने ही के लिए तुम घूम रहे हो? तुम्हे छोड़ शायद कोई ऐसी बहादुरी का काम करनेवाला नही है। मेरा साथ दो या मेरे साथ झगड़ा करो, मुझे दोनों

मंजूर हैं, परन्तु मैं तुमसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि इस तरह की वाहवाही मुझे कभी मत देना।

अविनाश की भक्ति और भी बढ गई। उसने विकसित मुँह से उपस्थित लोगो की ओर देखकर गौरमोहन के वाक्यों की चमत्कारिता के प्रति सबका मन खींचने का भाव दिखलाया। उसने गौर बाबू से कहा—आशीर्वाद दीजिए, आपकी भाँति इस प्रकार निष्काम भाव से भारतवर्ष के प्राचीन गौरव की रक्षा के लिए हम लोग जीवन समर्पण कर सके।—यह कहकर अविनाश ने ज्योंही गौरमोहन के पैर की धूर लेनी चाही त्योंही उसने अपना पैर हटा लिया।

अविनाश ने कहा—गौर बाबू! आप तो हम लोगो से कोई सत्कार न लेगे। किन्तु हम लोगो को आनन्द देने से विमुख होना भी ठीक नहीं। हम लोगो ने विचार किया है कि एक दिन आपके साथ बैठकर भोजन करे। इसमे आपको सम्मति देनी ही होगी। हम लोगों के उत्साह को आप एकदम भङ्ग न कीजिए।

गौर—प्रायश्चित्त किये बिना मैं तुम लोगो के साथ बैठकर कैसे भोजन करूँगा?

प्रायश्चित्त का नाम सुनते ही अविनाश की त्योरी चढ़ गई। वह बोला—आप यह क्या कहते हैं! हम लोगो के मन मे इस बात का ज़रा भी ख़याल नहीं है। परन्तु आप हिन्दू-धर्म का कोई विधान नहीं छोड़ सकेंगे।

सभी ने कहा—यह अच्छी बात है। प्रायश्चित्त के उपलक्ष्य मे ही सब लोग एक साथ बैठकर भोजन करेंगे। उस दिन देश के बड़े-बड़े पण्डित, पुरोहित और अध्यापकों को नेवता देकर बुलाना होगा। आज भी हिन्दूधर्म कैसा सजीव है, यह गौरमोहन बाबू के इस प्रायश्चित्त से सर्वत्र विख्यात होगा। प्रायश्चित्त की व्यवस्था-सभा कब कहाँ होगी? यह प्रश्न भी उठा।

गौरमोहन ने कहा—इस घर मे ठीक न होगा। एक भक्त ने अपने गङ्गातटस्थ बाग़ मे यह कार्य सम्पन्न करने का प्रस्ताव किया। इसमे जो कुछ खर्च होगा वह भी वे लोग देंगे, यह स्थिर हुआ।

बिदा होते समय अविनाश ने खड़े होकर वक्तृता देने के ढङ्ग पर हाथ हिलाकर सबको सम्बोधन करके कहा—गौरमोहन बाबू को कदाचित् मेरी बात अच्छी न लगे, किन्तु आज मेरा हृदय जब आनन्द से भर गया है तब मैं यह बात बिना कहे रह नही सकता। ईश्वर ने वेदों का उद्धार करने के लिए इस पुण्यभूमि में अवतार लिया था—वैसे ही हिन्दूधर्म का उद्धार करने के लिए हम लोगों को यह अवतार प्राप्त हुआ है। दुनिया भर मे सिर्फ़ हमारा ही देश ऐसा है जहाँ छः ऋतुएँ होती है—हमारे इसी देश मे समय-समय पर अवतार हुए हैं तथा और भी होंगे। हम लोग धन्य है जो यह सत्य हम लोगों के समक्ष प्रमाणित हो गया है। एक बार सब मिलकर बोलो, गौरमोहन की जय!

अविनाश की व्याख्या से उत्साहित होकर सब लोग गौरमोहन की जय मनाने लगे। गौरमोहन लज्जित और खिन्न होकर वहाँ से चला गया।

आज जेलखाने से छूटने के दिन एक प्रबल चिन्ता ने गौरमोहन के मन को आ घेरा। जब वह क़ैद मे था तब नित्य यही सोचता था कि मुक्त होने पर मैं नये उत्साह से देशोद्धार के लिए काम करूँगा। आज वह बार-बार अपने मन से यही पूछने लगा, हाय! मेरा देश कहाँ है? क्या वह मुझ एकाकी के ही पास विद्यमान है? क्या मैं ही एक उसका उद्धारकर्ता हूँ? मेरे साथी भी तो मेरा साथ छोड़ना चाहते हैं। मैंने अपने जीवन के सारे सङ्कल्पों की आलोचना जिसके साथ की वह मेरा बाल्यसखा, आज इतने दिन बाद, एक ब्राह्म-लड़की के साथ ब्याह करने की धुन मे पड़कर अपने देश की समस्त भूत और भविष्य दशा को भूल कर्तव्य-पथ से अलग हो जाने को तैयार हो गया है। और जो लोग मेरे साथ हैं, जो मेरा हाथ बँटाने को सदा सन्नद्ध रहा करते हैं, जो मेरे दल मे प्रधान गिने जाते है, वे मेरे हज़ार समझाने पर भी नहीं समझते। वे यही समझ बैठे हैं कि गौरमोहन ने केवल हिन्दूधर्म का उद्धार करने के लिए अवतार लिया है। वे लोग केवल मेरा अभिनन्दन करेंगे। अभिनन्दन से देश का क्या उपकार होगा? उन लोगों के लिए मैं केवल शास्त्र का मूर्तिमान् वचन हूँ, शास्त्र की आज्ञा पालन करने ही के लिए मेरा जन्म हुआ

है। भारतवर्ष ज्यों का त्यों पड़ा रहा, उसकी दुर्दशा पर ध्यान देनेवाला कोई नहीं। भारतवर्ष मे ही छः ऋतुएँ होती हैं, इसी देश मे बार-बार अवतार होता है, अविनाश की बुद्धि यदि इन्ही बातों मे उलझी रही तो इस देश मे छः ऋतुओ मे से दो-एक का न होना ही अच्छा था।

इतने मे नौकर ने आकर ख़बर दी, आपको माँ बुलाती हैं। गौरमोहन एकाएक चौक उठा। उसके मन मे बार-बार प्रतिध्वनि होने लगी, माँ मुझको बुलाती है। यह वाक्य आज उसे नवीन अर्थ मे प्रतिभासित हुआ। उसने कहा—जो हो, मेरी माँ तो मौजूद है और वही मुझे बुला रही है। यह क्या मेरे लिए कम सौभाग्य की बात है। वही मुझे सबसे मिला देगी। किसी के साथ वह कुछ विभेद न रहने देगी। जो लोग मेरे आत्मीय हैं उन्हे मै उसके घर मे बैठा देखूँगा। कारागार मे भी तो माँ ने मुझे एक बार पुकारा था, वहाँ उनके दर्शन मिले थे। जेल के बाहर फिर भी माँ मुझको पुकार रही है, वहाँ अब उसे देखने जाता हूँ।—यह कहकर गौरमोहन ने उस जड़काले के मध्याह्न समय मे आकाश की ओर देखा। विनय और अविनाश की ओर से जो विरोध का तार उसके हृदय मे बज रहा था, वह एकदम धीमा पड़ गया। इस मध्याह्नकालिक सूर्य के प्रकाश मे मानों भारतवर्ष ने अपना हृदय-कपाट खोल दिया; मानों उसने नाट्य-स्थली की यवनिका को

ऊपर उठा लिया। साथ ही उसके समुद्र-पर्यन्त विस्तृत नदी, पहाड़ और लोकालय गौरमोहन की आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो पड़े। सब दिशाओं से एक बेरोक निर्मल प्रकाश ने आकर इस भारतवर्ष को मानों उज्ज्वल कर दिखाया। गौरमोहन का हृदय भर गया। उसकी आँखों मे एक प्रकार का तेज छा गया। उसके मन का नैराश्य एकदम दूर हो गया। भारतवर्ष का जो कार्य अनन्त है, जिस कार्य का फल बहुत दूर है, उसके लिए गौर की प्रकृति बड़े हर्ष के साथ प्रस्तुत हो उठी। भारतवर्ष की जिस महिमा को उसने ध्यान मे देखा है उसे वह प्रत्यक्ष न देख सकेगा, इसका कुछ भी क्षोभ उसके मन मे न रहा। वह मन ही मन बार-बार यही कहने लगा--माँ मुझको पुकार रही है, मै वहाँ जा रहा हूँ, जहाँ साक्षात् अन्नपूर्णा हैं, जगद्धात्री है। वह दूरवर्ती हैं और इस समय भी। वह मृत्यु के अनन्तर भी है और इस जीवन मे भी। वह महा प्रभावशाली भविष्य आज मेरे इस दीन-हीन वर्त्तमान को सम्पूर्ण रूप से सार्थक कर रहा है—मैं वहीं चला। वह स्थान बहुत दूर था सही, पर अब निकट है। जब माँ मुझे बुला रही है तब मैं उसे दूर नहीं कह सकता। इस आनन्द की तरङ्ग मे मानो गौरमोहन ने विनय और अविनाश का भी साथ पा लिया। वे भी उससे विभिन्न होकर न रह सके। आज के सब छोटे-मोटे विरोध एक प्रकाण्ड चरितार्थता के भीतर न मालूम कहाँ छिप गये।

गौरमोहन जब आनन्दी के घर में गया, तब उसके मुँह पर प्रसन्नता झलक रही थी। मालूम होता था जैसे उसकी आँखें सम्मुख-स्थित सब पदार्थों के पीछे कोई अपूर्व मूर्ति देख रही हैं। गौरमोहन का चित्त आनन्द से उद्भ्रान्त था इस कारण वह पहले की भाँति न पहचान सका कि घर मे माँ के पास कौन बैठा है।

सुशीला ने खड़ी होकर गौरमोहन को अभिवादन किया। गौरमोहन ने कहा—अच्छा ! आप आई है, बैठिए।

"आप आई हैं," गौरमोहन ने ऐसे भाव से कहा, जैसे सुशीला का आना असाधारण रूप से हुआ है। मानो इसका आगमन एक विशेष आविर्भाव है।

एक दिन इसी सुशीला को देखकर, उसके साथ बातचीत करके, गौरमोहन घर छोड़कर भाग गया था। जितने दिन वह अपने ऊपर भाँति-भाँति के कष्ट और देश का काम लेकर घूम रहा था, उतने दिन सुशीला की बात को वह मन से बहुत कुछ अलग रखता था। मानों सुशीला उसके स्मृति-पथ से हट गई थी। परन्तु क़ैदख़ाने के भीतर वह सुशीला के स्मरण को किसी तरह मन से दूर न कर सका। एक दिन वह था, जब गौरमोहन के मन मे कभी इस बात का उदय तक न होता था कि भारतवर्ष मे स्त्रियाँ हैं। इतने दिन बाद सुशीला को देखकर ही स्त्रियों का अस्तित्व उसके मन मे उदित हुआ। जिस विषय का ज्ञान उसे स्वप्न मे भी न था, वह एकाएक

हृदय-पट पर प्रतिबिम्बित होने से उसका बलिष्ठ स्वभाव कॉप उठा। जेल के भीतर जब बाहरी धूप और खुली हवा का संसार उसके मन मे वेदना पहुँचाता था, तब उस जगत् को वह केवल अपना कर्मक्षेत्र और पुरुष-समाज के रूप मे न देखता था। ध्यान करने पर उसे बाहर के इस प्रकृतिरमणीय विश्व मे केवल दो अधिष्ठातृ देवियो के मुँह दिखाई देते थे। सूर्य, चन्द्र और तारा आदि के प्रकाश मे वही दोनों चेहरे सूझ पड़ते थे। निर्मल नीले आकाश मे उन्हीं दोनों देवियों के मुँह की छवि देख पड़ती थी। एक मुँह उसकी आजन्म-परिचित माता का है और एक नम्र सुन्दर मुँह के साथ उसका नया परिचय है।

कारागार की अनेक सङ्कीर्णताओ मे रहकर भी गौरमोहन इस मुखस्मरण के साथ विरोध नही कर सकता था। इस ध्यान की पुलकावली ही जेलख़ाने के भीतर छुटकारे का आनन्द ला देती थी। जेलख़ाने का कठिन बन्धन उसको छायामय मिथ्या स्वप्न की तरह प्रतीत होता था। उसकी अन्तरिन्द्रियों की तरङ्गे जेल की मज़बूत दीवार को तोड़कर बाहर निकल पड़ती और आकाश मे मिलकर वहाँ के पुष्प-पल्लवो मे हिलती-डुलती तथा संसार के कर्मक्षेत्र मे प्रवाहित होती थी।

गौरमोहन ने सोचा था, काल्पनिक मूर्ति से डरने का कोई कारण नही। इसी लिए वह एक महीने तक उस कल्पनामूर्ति से तनिक भी न डरा। वह जानता था कि भय करने का विषय केवल एक सच्चा पदार्थ है।

जेल से बाहर होते ही गौरमोहन ने जब परेश बाबू को देखा, तब उसका मन आनन्द से उल्लसित हो उठा। वह केवल परेश बाबू से भेंट होने का ही आनन्द न था बल्कि उस आनन्द के साथ गौरमोहन की इन कई दिनों की सङ्गिनी कल्पना ने भी बहुत कुछ अपनी माया मिला दी थी, पहले यह उसकी समझ मे न आया किन्तु कुछ ही देर मे वह समझ गया। स्टीमर पर आते-आते उसने भली भाँति अनुभव किया कि परेश बाबू जो उसे खींच रहे हैं, वह केवल अपने ही गुण से नहीं।

इतने दिन बाद फिर गौरमोहन ने कमर बाँधी। कहा—मैं हार न मानूँगा, स्टीमर पर बैठे ही बैठे फिर दूर निकल जाऊँगा—किसी प्रकार के सूक्ष्म बन्धन से भी मैं अपने मन को बँधने न दूँगा। यही सङ्कल्प उसने मन मे किया।

ऐसे ही समय मे विनय के साथ उसका तर्क बँध गया। वियोग के बाद मित्र के साथ पहली ही मुलाक़ात में तर्क ऐसा प्रबल न होता किन्तु आज इस तर्क के भीतर उसका अपने साथ भी तर्क चल रहा था। इस तर्क के साथ-साथ गौरमोहन अपनी प्रतिष्ठा भूमि को भी अपने पास दृढ़ किये जा रहा था। इसी लिए [illegible] आज इतना ज़ोर देकर बातें कर रहा था। उस ज़ोर से [illegible] अपना ही विशेष प्रयोजन था। जब आज के इस ज़ोर ने विनय के मन को विरुद्ध भाव में उत्तेजित कर दिया था, जब वह मन ही मन गौरमोहन की बात का खण्डन कर रहा था और गौरमोहन की स्वतन्त्रता को अन्याय कहकर जब

उसका चित्त विद्रोही हो रहा था, तब विनय इस बात की कल्पना भी न कर सका था कि गौरमोहन यदि अपने को इस प्रकार न सताता तो उसका दबाव भी प्राय: इतना प्रबल न होता।

विनय के साथ विवाद होने के अनन्तर गौरमोहन ने निश्चय किया कि युद्धक्षेत्र से बाहर हो जाने पर काम न चलेगा। यदि मैं अपने प्राणों के भय से विनय को छोड़े देता हूँ तो उसकी रक्षा होना कठिन है।

[५४]

गौरमोहन का मन तब एक अपूर्व भाव मे आविष्ट था। सुशीला को तब वह एक व्यक्तिविशेष की तरह नही देखता था। वह उसे एक भाव के रूप मे देखता था। धीरे-धीरे सुशीला की मूर्ति मे भारत की स्त्रियो की प्रकृति उसके सामने लक्षित हुई। भारत के घर-घर को पुण्य, शोभा और प्रेम से पवित्र करने ही के लिए इसका आविर्भाव हुआ है। जो लक्ष्मी भारत के बच्चो को पोसकर आदमी बनाती है, रोगी की सेवा करती है, शोकाकुल को सान्त्वना देती है, तुच्छ को भी प्रेम के गौरव से प्रतिष्ठा दान करती है; जो दु:ख मे, विपत्ति मे भी हम निर्धनो का साथ नही छोड़ती, अपमान नही करती; जो हम लोगो से पूजित होने योग्य होकर भी हमारे सदृश अयोग्यो की एक चित्त से पूजा करती है; जिसके कार्य-कुशल सुन्दर हाथ सदा हम लोगो के

काम के लिए खुले रहते हैं और जिसका चिरसहिष्णु क्षमा-पूर्ण प्रेम अक्षय दान रूप मे हम लोगों को ईश्वर ने दिया है उसी लक्ष्मी का एक प्रकाश गौरमोहन अपनी माता के पार्श्व मे प्रत्यक्ष विराजमान देखकर आनन्द से उमँग उठा। वह मन मे कहने लगा, अहा! हम लोग इस लक्ष्मी की ओर कभी देखते न थे, हमने इसे सबके पीछे ठेल रक्खा था। हम लोगो के लिए इससे बढ़कर दुर्गति का लक्षण और क्या होगा? गौरमोहन ने तब निश्चय किया कि लक्ष्मी ही इस देश का आधार है। समस्त भारत के मर्मस्थान मे शतदल कमल के ऊपर यहा लक्ष्मी विराजमान है। हमी लोग इसके सेवक है। देश की दुर्गति से इसकी अवज्ञा होती है। वह इस अवज्ञा से दुखी है, इसी से आज हमारी शक्ति निस्तेज है और हमारा पौरुष लज्जा का घर बना हुआ है।

गौरमोहन आप ही आप आश्चर्य मे डूब गया। जितने दिन भारतवर्ष की स्त्रियाँ उसके अनुभव मे न आई थी उतने दिन वह भारतवर्ष को अपूर्ण रूप मे देखता था। गौरमोहन की दृष्टि मे जब स्त्रियाँ केवल छायामय दीखती थी तब देश के सम्बन्ध मे जो उसका कर्तव्य-ज्ञान था, उसकी त्रुटि उसे स्पष्ट दिखाई नहीं देती थी। मानों शक्ति थी किन्तु उसमे प्राण न थे, पेशी थी किन्तु उसमे स्नायु न थे। गौर ने पल भर में समझ लिया कि स्त्री को दूर हटा करके हम जितना क्षुद्र समझते हैं उतना ही हमारा पौरुष भी शीर्ण हो गया है।

इसी से जब गौर ने सुशीला से कहा—"आप आई हैं," तब यह वाक्य केवल एक प्रचलित शिष्ट सम्भाषण रूप मे उसके मुँह से नही निकला। इस अनुनय-भाषण के भीतर एक नये पाये हुए हर्ष और विस्मय का भाव भरा था।

कारागार मे रहने का कुछ-कुछ चिह्न गौरमोहन के शरीर मे अब भी विद्यमान था। पहले की अपेक्षा वह अधिक दुर्बल और कान्तिहीन हो गया था। जेल मे मिलनेवाली ख़ूराक मे उसकी अश्रद्धा और अरुचि रहने से वह प्रायः एक महीने तक भूखा ही रहा। वहाँ कभी उसने भरपेट भोजन नहीं किया। उसका वह गोरा रङ्ग कुछ फीका पड़ गया था। उसके सिर के बाल मुँड़ जाने के कारण उसका मुँह और भी अधिक उदास मालूम होता था।

गौरमोहन के शरीर की इस दुर्बलता ने सुशीला के मन को मसोस डाला। उसका सारा हृदय वेदना से भर गया। उसका जी चाहता था कि मैं गौरमोहन को प्रणाम कर उसके पैर की धूल माथे मे लगा लूँ। धधकती हुई आग के भीतर जैसे लकड़ी और कोयला कुछ दिखाई नही देता उसी विशुद्ध अग्नि-शिखा की भाँति गौरमोहन उसके सामने दीखने लगा। करुणा-पूर्ण भक्ति के आवेग से सुशीला का हृदय काँपने लगा। उसके मुँह से कोई बात नही निकली।

आनन्दी ने कहा—गोरा, मेरे लड़की होने से मुझे कितना सुख होता, यह मैंने इस दफ़े जाना है। जितने दिन तुम मेरे

पास न थे, उस बीच मे सुशीला ने जो मुझे सान्त्वना दी है, वह मै तुमसे क्या कहूँ। मेरे साथ तो इसका पहले कोई परिचय न था। किन्तु विपत्ति के दिन मे भले लोगो का परिचय मिलता है, दुःख के इस गौरव को मैंने इस बार समझा है। दुःख की सान्त्वना को ईश्वर ने कहाँ किस जगह छिपा रक्खा है, यह सदा हम लोग नही जानती, इसी से कष्ट पाती हैं। सुशीला की ओर देखकर वह बोली—बेटी, तुम लजाती हो किन्तु तुमने मेरे बुरे दिनो मे मुझे कितना सुख दिया है, यह मैं तुम्हारे मुँह पर भी बिना कहे नही रह सकती।

गौरमोहन ने कृतज्ञता-भरी गम्भीर दृष्टि से सुशीला के लज्जित मुँह की ओर एक बार देखकर आनन्दी से कहा—माँ, तुम्हारे दुःख के दिनों मे ये तुम्हारा दुःख बँटाने आई थी, आज फिर तुम्हारे सुख के दिन मे भी तुम्हारा सुख बढ़ाने के लिए आई हैं। जिनका हृदय बड़ा है, उनकी ऐसी ही अकारण मैत्री होती है।

विनय ने सुशीला का सङ्कोच देखकर कहा—बहन, चोर पकड़ा जाने पर चारों ओर से दण्ड भोगता है। आज तुम इन सबो के आगे पकड़ी गई हो, सो उसी का फल भोग रही हो। अब कहाँ भागने पाओगी? मै तुमको बहुत दिनों से जानता हूँ, किन्तु किसी से कुछ कहता नही, मौन साधे बैठा हूँ। मै मन ही मन समझ रहा हूँ, बहुत दिन तक कोई बात छिपी नहीं रहती।

आनन्दी ने हँसकर कहा—तुम चुप न रहोगे। तुम चुप रहनेवाले नहीं हो। (सुशीला से) जिस दिन से उसने तुमको जाना है, उसी दिन से तुम लोगों के गुण गाते-गाते उसके होंठ सूख रहे हैं पर तो भी उसे तृप्ति नहीं होती।

विनय—सुन रक्खो बहन, मैं गुणग्राही हूँ और अकृतज्ञ नहीं हूँ, इसके साक्षी और प्रमाण मेरे पास मौजूद हैं।

सुशीला ने कहा—ये तो केवल आपके गुणों का ही परिचय देती हैं।

विनय—मेरे गुणों का ही परिचय सही, किन्तु मुझसे आप कुछ पा नहीं सकेगी। आप कुछ पाना चाहती हो तो माँ के पास आवें। आपको कुछ बोलना न पड़ेगा। इनके मुँह से जब कोई अनूठी बात सुनता हूँ तब स्वयं विस्मित होना पड़ता है। माँ अगर मेरा जीवनचरित कहना शुरू करे तो अभी मैं मारे लज्जा के मरने को तैयार हो जाऊँ।

आनन्दी ने कहा—सुना तो इस लडके की बात।

गौर—विनय, तुम्हारे माँ-बाप ने तुम्हारा नाम सार्थक रक्खा था।

विनय—मुझे तो यही जान पडता है कि उन्होंने मुझसे किसी विशेष गुण की प्रत्याशा नही की इसी लिए एक विनय गुण की दुहाई देकर यह नाम रख दिया। नहीं तो संसार मे हास्यास्पद होना पड़ता।

इस प्रकार परस्पर कुछ देर तक वार्तालाप होने के अनन्तर प्रथम सङ्कोच का भाव दूर हो गया।

विदा होते समय सुशीला ने कहा—विनय बाबू, एक बार हमारे यहाँ न आओगे?

सुशीला ने विनय से आने को कहा, परन्तु गौरमोहन से वह कुछ न कह सकी। गौर ने इसका ठीक अर्थ नहीं समझा। उसके मन में कुछ चोट लगी। विनय सहज ही सब के मन में घर बना लेता है, और गौरमोहन से यह नहीं हो सकता। इसके पूर्व उसने इस दोष के लिए कभी कुछ खेद नहीं किया था। उसके स्वभाव में इतनी त्रुटि है, यह समझकर आज वह दुःखी हुआ।

[५५]

सुशीला ने ललिता के विवाह के विषय में बातचीत करने ही के लिए मुझको अपने घर बुलाया है, विनय ने यही समझा। इस प्रस्ताव को उसने समाप्त कर दिया है, इसी से तो यह मामला ख़तम न होगा। जब तक उसकी आयु है तब तक दोनों तरफ़ इसकी चर्चा चलेगी ही।

इतने दिन तक विनय को सबसे बढ़कर यही चिन्ता थी कि गौरमोहन के मन में चोट कैसे पहुँचाऊँ। सिर्फ़ गौरमोहन साधारण मनुष्य नहीं है; गौरमोहन से मतलब गौरमोहन नामक मनुष्य से नहीं है बल्कि उसने जिस भाव, जिस विश्वास

और जिस जीवन को आश्रय दिया है वह भी इसी मे आ गया। इन्ही गुणो के कारण गोरा के साथ मिलकर चलना ही विनय के आनन्द का विषय था। इसके साथ किसी तरह का विरोध करना वह अपने ही साथ विरोध करना समझता था।

किन्तु उस आघात का प्रथम सङ्कोच मिट गया है। ललिता का प्रसङ्ग उठाकर गौरमोहन के साथ ख़ुलासा बात-चीत हो जाने से विनय ने ज़ोर पाया। फोड़ा चिराने के पहले रोगी के भय और चिन्ता का अन्त नही रहता। किन्तु जब नश्तर लगता है तब रोगी को जान पड़ता है कि पीड़ा तो है पर आराम भी है। वह मर्ज़ को कल्पना के द्वारा पहले जितना बड़ा साङ्घातिक समझे हुए था, अब मालूम हुआ कि वह उतना बडा नही है।

अब तक विनय अपने मन के साथ तर्क भी नहीं कर सकता था, अब उसके तर्क का द्वार खुल गया। अब मन ही मन गौरमोहन के साथ उसका उत्तर-प्रत्युत्तर चलने लगा। गौर की ओर से जिन युक्तियो का प्रयोग सम्भव था उन सबों को मन मे ला-लाकर वह अनेक प्रकार से उनका खण्डन करने लगा। यदि गौरमोहन के साथ मौखिक तर्क चलता तो जैसे उत्तेजना बढ़ती वैसे ही निवृत्त भी हो जाती किन्तु विनय ने देखा कि इस विषय मे गौरमोहन अन्त तक तर्क न करेगा। इससे भी विनय के मन मे कुछ उत्ताप हुआ।

उसने सोचा, गौरमोहन न तो समझेगा और न समझावेगा, सिर्फ़ ज़ोर करेगा। ज़ोर करेगा तो करे, मैं उस ज़ोर से डर-कर सिर नहीं झुकाऊँगा। चाहे जो हो, मैं सत्य का ही पक्ष लूँगा। यह कहकर उसने इस "सत्य" शब्द को हृदय मे पकड़ रक्खा। गौर के विरुद्ध एक प्रबल पक्ष को लाकर बीच मे खड़ा करने की आवश्यकता है इसलिए वह बार-बार मन मे कहने लगा कि सत्य ही सबसे बड़ा अवलम्ब है, सत्य को ही उसने अपना आश्रय किया है, इससे उसको अपने ऊपर विशेष श्रद्धा उपजी। यही कारण है कि विनय जब दिन के तीसरे पहर सुशीला के घर गया, तब कुछ विशेष रूप से सिर उठाये और सीना ताने हुए गया। सत्य की ओर झुका है, उसी का इतना ज़ोर है।

हरिमोहिनी उस समय रसोई बनाने का उद्योग कर रही थी। विनय वहाँ रसोई-घर के द्वार पर जाकर बोला कि आज मुझे यहीं भोजन कराना। उसकी स्वीकृति लेकर वह ऊपर चला गया।

सुशीला कुछ सिलाई का सामान लिये बैठी थी और कुछ सी रही थी। विनय को सामने देख उसने पहले से रक्खी हुई एक कुरसी पर बैठने का उसे इशारा किया और सिलाई की ओर नज़र किये-किये ही कहा—देखिए विनय बाबू, जहाँ भीतर कोई बाधा नही है वहाँ क्या बाहरी रुकावट मानकर चलना उचित है?

गौरमोहन के साथ जब विवाद हुआ था तब विनय ने इसके विरुद्ध युक्ति का प्रयोग किया था। जब इस समय सुशीला के साथ आलोचना होने लगी, तब उसने अपनी पूर्व-कथित युक्ति के विरुद्ध पक्ष का अवलम्बन किया। इस आलोचना के समय कौन कह सकता है कि गौरमोहन के साथ उसका कुछ भी मतभेद है।

विनय ने कहा—बहन, बाहर की बाधा को तो तुम लोग भी तुच्छ दृष्टि से नहीं देखतीं।

सुशीला—विनय बाबू, उसका कारण है। हमारी वह बाधा ठीक आपकी बाहरी बाधा के बराबर नहीं है। हम लोगों का समाज हम लोगों के धर्म-विश्वास के ऊपर प्रतिष्ठित है। किन्तु आप जिस समाज में हैं वहाँ आपका बन्धन केवल सामाजिक बन्धन है। इसलिए ब्राह्म-समाज को छोड़ने से ललिता की जितनी बड़ी क्षति होगी, उतनी बड़ी क्षति आपको अपना समाज छोड़ने से न होगी।

धर्म मनुष्य के व्यक्ति-गत साधन का पदार्थ है, उसे किसी समाज के साथ मिलाना उचित नहीं, इसी विषय पर विनय तर्क करने लगा।

इसी समय सतीश ने एक चिट्ठी और एक अँगरेज़ी समाचारपत्र लेकर घर में प्रवेश किया। विनय को देखकर वह उत्तेजित हो उठा। शुक्रवार को किसी उपाय से रविवार बनाने के लिए उसका मन व्याकुल होने लगा। विनय और सतीश

से घुल-घुलकर बातें होने लगी। सुशीला इधर ललिता की चिट्ठी और उसके साथ आये हुए समाचार-पत्र को पढ़ने लगी।

इस ब्राह्म समाचार-पत्र मे एक ख़बर थी कि किसी सम्भ्रान्त ब्राह्म-परिवार मे एक हिन्दू के ब्याह होने की बात सुनी गई थी, किन्तु हिन्दू युवक की असम्मति से यह ब्याह रुक गया। इस उपलक्ष्य मे उक्त हिन्दू युवक की स्वधर्मनिष्ठा के साथ तुलना करके ब्राह्म-परिवार की शोचनीय दुर्बलता पर आक्षेप किया गया था।

सुशीला ने मन ही मन कहा—जैसे हो, विनय के साथ ललिता का ब्याह कराना ही होगा। किन्तु वह तो इस युवक के साथ तर्क करने से न होगा। सुशीला ने ललिता को अपने यहाँ आने के लिए चिट्ठी लिख दी। चिट्ठी मे यह नही लिखा कि विनय यहाँ उपस्थित है।

किसी पञ्चाङ्ग मे किसी ग्रह-नक्षत्र योग से शुक्रवार के रविवार होने की व्यवस्था न रहने के कारण सतीश को स्कूल जाने के लिए तैयार होना पड़ा। सुशीला भी स्नान करने के विचार से कुछ देर के लिए छुट्टी माँगकर चली गई।

तर्क की उत्तेजना जब मन्द हो गई तब विनय के भीतर का देवता सुशीला के उस सूने घर मे जाग उठा। तब दिन के नौ साढ़े नौ बजे होगे। गली के भीतर सन्नाटा छाया था। कही किसी तरह का शोर-गुल सुनने मे न आता था। सुशीला के लिखने की टेबल पर एक छोटी घड़ी टिक-टिक

कर रही थी। घर की एक-एक वस्तु मानों विनय को पकड़ने लगी। घर की छोटी-बड़ी सजावट की चीज़े चारों ओर से मानों विनय के साथ बाते करने लगी। इस सजे हुए सुन्दर कमरे मे क्या ही एक रमणीय रहस्य की बात हो गई है। इस सूने घर मे कल दो-पहर को जो सखी-सखी मे मन की बातों की आलोचना हुई थी उसकी सुन्दर सलज्ज छवि मानो अब भी इधर-उधर छिपी हुई जान पडती है। मन का भाव प्रकट करते समय कौन किस जगह बैठी थी, किस तरह बैठी थी, यह विनय कल्पना मे देखने लगा। विनय ने उस दिन परेश बाबू से सुना था, "मैंने सुशीला से सुना है कि ललिता का मन तुमसे विमुख नहीं है।" इस बात को वह नाना भावो मे, नाना रूपों मे, अनेक प्रकार की सुन्दर तसवीरों की तरह देखने लगा। एक अनिर्वचनीय आवेग विनय के मन मे अत्यन्त करुणोत्पादक रागिनी की भाँति गूँजने लगा। इन मानसिक भाव के चित्रो को प्रत्यक्ष देखने या दिखलाने की योग्यता विनय मे न थी, अर्थात् न वह कवि था, न चित्रकार। इससे उसका अन्तःकरण चञ्चल हो गया। मानों वह कुछ कर सकने पर बच सकता, परन्तु कुछ करने का कोई उपाय उसे नहीं सूझता था। जो एक पर्दा उसके सामने झूल रहा है, जो बहुत समीप होने पर भी उसे अत्यन्त दूर का फल दे रहा है, उस पर्दे को एक ही झटके मे फाड़कर फेंक देने की शक्ति उसमे नहीं है।

हरिमोहिनी ने वहाँ आकर विनय से पूछा—अभी कुछ जलपान करोगे? विनय ने कहा—नहीं। यह सुनकर हरिमोहिनी उस घर मे एक ओर जा बैठी।

हरिमोहिनी जितने दिन तक परेश बाबू के घर मे थी, उतने दिन तक विनय के प्रति उसके मन का बड़ा झुकाव था, किन्तु जब से वह सुशीला के घर आकर स्वतन्त्र रूप से रहने लगी है तब से इन लोगों का आना-जाना उसे एकदम नापसन्द हो गया था। आजकल आचार-विचार की बातो मे सुशीला उससे पूछकर नही चलती थी इसका कारण वह इन्ही लोगों की सङ्गति को मान बैठी है। यद्यपि वह जानती थी कि विनय ब्राह्म नहीं है तथापि वह इतना समझती थी कि विनय के मन मे हिन्दूधर्म पर पूरा विश्वास नहीं है। इसी से वह पहले की भाँति उत्साहपूर्वक इस ब्राह्मण-कुमार को देकर ठाकुरजी के प्रसाद को वृथा नष्ट नहीं करती थी।

आज प्रसङ्गवश हरिमोहिनी ने विनय से पूछा—बेटा, तुम तो ब्राह्मण के बालक हो, किन्तु सन्ध्या-तर्पण आदि क्यों नहीं करते?

विनय—क्या कहूँ मौसी, दिन-रात पाठ याद करते-करते मैं सन्ध्या-गायत्री सब कुछ भूल गया।

हरिमोहिनी—परेश बाबू भी तो पढ़े-लिखे हैं, किन्तु वे तो अपने धर्म को मानकर सबेरे और साँझ कुछ कर ही लेते हैं।

विनय—वे जो करते हैं, वह केवल मन्त्र कण्ठस्थ कर लेने से नहीं किया जाता। उनके सदृश जब कभी मैं हो सकूँगा तब उनकी भाँति चलूँगा।

हरिमोहिनी ने कुछ रुखाई के साथ कहा—तब तक अधिक नहीं तो बाप-दादे की ही तरह चलो न। न इधर न उधर, किसी तरफ़ न होकर रहना क्या अच्छा होता है? मनुष्य को किसी एक धर्म पर स्थिर रहना चाहिए। न राम को भजो न कृष्ण को, यह कैसी बात है?

इसी समय ललिता घर में आकर विनय को देखते ही चौंक उठी। हरिमोहिनी से पूछा—बहन कहाँ है?

हरिमोहिनी—नहाने गई है।

ललिता आप ही आप बोल उठी—बहन ने मुझको बुला भेजा था।

हरिमोहिनी ने कहा—तब तक बैठो न, वह अभी आती होगी।

ललिता के ऊपर भी हरिमोहिनी का मन प्रसन्न न था। अब वह सुशीला को उसके पहले के सब बन्धनों से छुड़ाकर धीरे-धीरे अपनी मुट्ठी में कर लेना चाहती है। परेश बाबू की और लड़कियाँ यहाँ वैसे जल्दी-जल्दी नहीं आती। सिर्फ़ ललिता ही जब-तब आकर सुशीला के साथ बातचीत और आलोचना करती है। यह हरिमोहिनी को अच्छा नहीं लगता था। जब वह दोनो को एक जगह बैठी देखती तब उन दोनो

की बातचीत मे बाधा देकर सुशीला को किसी काम के बहाने वहाँ से हटा ले जाने की चेष्टा करती थी, या कुछ और ही कहकर उसे ललिता के पास से उठ जाने को बाध्य करती थी। और कुछ नही, तो वह यह कहकर सन्तोप करती थी कि आजकल पहले की तरह सुशीला का पढ़ना-लिखना ठीक-ठीक नही होता। किन्तु जब सुशीला पढ़ने-लिखने मे मन लगाती तब वह यह बात भी बिना कहे नही रहती थी कि अधिक पढ़ना-लिखना स्त्रियो के लिए अनावश्यक और अनिष्ट-कारी है। असल बात यह है कि वह सुशीला को अपने क़ब्ज़े मे सब ओर से घेरकर जिस तरह रखना चाहती थी उस तरह रख नही सकती थी। इसलिए वह कभी सुशीला के साथियों पर और कभी उसकी शिक्षा पर दोषारोपण करती थी।

ललिता और विनय के साथ बैठना हरिमोहिनी पसन्द नही करती थी, तथापि वह उन दोनो पर मन ही मन कुढ़ती हुई मुँह लटकाये बैठी रही। वह जान गई थी कि विनय और ललिता के बीच एक रहस्यमय सम्बन्ध है। इसी से उसने मन ही मन कहा—तुम्हारे समाज मे चाहे जैसा व्यवहार हो किन्तु मैं अपने इस मकान के भीतर ये निर्लज्जता की बातें,—इस तरह सङ्कोच-रहित भेंट-मुलाक़ात—ये सब किरिस्तानी व्यवहार न होने दूँगी।

इधर ललिता के मन मे भी एक विरोध का भाव जाग उठा था। कल सुशीला के साथ आनन्दी के घर जाने का

सङ्कल्प उसने भी किया था, किन्तु जा न सकी। गौरमोहन पर ललिता को पूर्ण श्रद्धा है, पर साथ ही इसके विरुद्धता भी बड़ी तीव्र है। गौरमोहन सब प्रकार मेरे प्रतिकूल है, इस बात को वह मन से किसी तरह नहीं भूल सकती है। यहाँ तक कि जिस दिन गौरमोहन जेल से छूटकर आया उस दिन से विनय के ऊपर भी उसके मन का भाव कुछ बदल गया। कुछ दिन पहले विनय के प्रति जो उसका एक प्रबल दबाव था, और जिसका उसके मन मे पूरा गर्व था, वह गौरमोहन के आने से न रहा। गौरमोहन के प्रभाव को दबाकर विनय किसी तरह अपने विचार के अनुसार न चल सकेगा, यह सोचकर ललिता विनय के विरुद्ध भी कमर कसकर खड़ी हुई।

ललिता को घर मे प्रवेश करते देख विनय का मन कॉप उठा। उसको देखकर विनय किसी तरह अपने मन के भाव को स्थिर नहीं रख सकता था। जब से उन दोनों के व्याह की बात समाज मे ज़ाहिर हो गई है तब से ललिता को देखते ही विनय का मन बिजली की तरह चमक उठता है।

घर मे विनय को बैठा देख ललिता को सुशीला के ऊपर क्रोध हुआ। उसने समझा, अनिच्छुक विनय के मन को अनुकूल करने ही के लिए सुशीला उसके पीछे पड़ी है। इस गाँठ को सुलझाने ही के लिए आज उसकी बुलाहट हुई है। उसने हरिमोहिनी की ओर देखकर कहा—बहन से कह देना अभी मैं ठहर नहीं सकती, फिर किसी समय आऊँगी।

यह कहकर विनय के प्रति कटाक्षपात भी न कर वह बड़े वेग से चली गई। तब विनय के पास हरिमोहिनी का बैठा रहना अनावश्यक होने से वह भी कोई काम करने के बहाने चली गई।

ललिता का यह, राख के भीतर छिपी हुई आग की तरह, मौखिक भाव विनय से छिपा न रहा। किन्तु आज उसका चेहरा जैसा देखने में आया, उसके पूर्व कभी दिखाई न दिया था। क्रोध सह लेना सहज है, परन्तु घृणा को सह लेना विनय के सदृश लोगों के लिए बड़ा ही कठिन है। ललिता ने एक दिन उसे गौरमोहन रूपी ग्रह का उपग्रह मान उसकी कितनी बड़ी अवज्ञा की थी, यह उसे स्मरण हो आया। आज भी वह दुविधा में पड़े रहने के कारण ललिता के निकट कायर समझा जाता है, इस कल्पना ने उसे अत्यन्त चञ्चल कर दिया। विनय की कर्तव्यता को ललिता भीरुता समझे, यह वह कैसे सह सकेगा। विनय को तर्क न करने देना मानों उसके लिए भारी से भारी सजा देना है। क्योंकि वह तर्क करके अपने पक्ष को पुष्ट कर सकता था। बात को ख़ूब सजकर बोलने और किसी एक पक्ष का समर्थन करने में उसकी असाधारण योग्यता थी। किन्तु ललिता ने जब-जब उसके साथ कलह किया है, किसी दिन उसको युक्ति बताने का अवसर नहीं दिया। आज भी उसने ऐसा अवकाश नहीं दिया।

वह समाचार-पत्र वहीं पड़ा था। चित्त की चञ्चलता के कारण विनय उसे हाथ में लेकर देखने लगा। एक जगह

ान्सिल से चिह्न किया हुआ था। उसने वहाँ पढ़ा और समझा
के वह आलोचना और नीति-उपदेश उन्हीं दोनों—ललिता
और विनय—को लक्ष्य करके लिखा गया था। ललिता
अपने सामाजिक लोगों के आगे प्रति दिन कैसी अपमानित हो
रही है, यह विनय को अच्छी तरह मालूम हो गया। विनय
इस अपमान से उसकी रक्षा करने का कोई यत्न नहीं करता,
केवल समाज-तत्त्व पर सूक्ष्म तर्क करने को उद्यत हुआ है,
इससे ललिता की सी तेजस्विनी लड़की के निकट वह
अपमान-भाजन हुआ और यह विनय को भी उचित ही जान
पड़ा। समाज को एकदम छोड़ देने मे ललिता का साहस
याद कर और इस मानिनी लडकी के साथ अपनी तुलना
करके वह सकुच गया।

नहा-धोकर और सतीश को खिला-पिलाकर स्कूल भेज
सुशीला जब विनय के पास आई तब वह किसी सोच मे डूबा
हुआ चुपचाप बैठा था। सुशीला ने पूर्व-प्रसङ्ग की बात न
चलाकर विनय को भोजन करने के लिए कहा। विनय भोजन
करने तो बैठ गया, किन्तु उसके पूर्व न कुल्ला किया और न
हाथ-पैर ही धोये।

हरिमोहिनी ने कहा—बेटा, जब तुम हिन्दुओ का कर्म-
धर्म कुछ मानते ही नही तब तुम्हे ब्राह्म होने ही मे क्या दोप ?

विनय ने मन ही मन कुछ चोट खाकर कहा—जिस
दिन हिन्दुओ मे छूआछूत के नियम को मैं निरर्थक समझूँगा

उस दिन ब्राह्म, किरिस्तान और मुसलमान, इनमे से एक कुछ भी हो जाऊँगा। अभी हिन्दू-धर्म पर उतनी अश्रद्धा नहीं हुई है।

विनय जब सुशीला के घर से निकला, तब उसका मन बड़ा ही व्याकुल था। मानों वह चारो ओर से धक्के खाकर एक आश्रय-हीन सूनी जगह मे आ गिरा था।

मैं क्यों एक ऐसी अस्वाभाविक जगह आ पहुँचा हूँ, इसी को सोचता हुआ, सिर नीचा किये, विनय धीरे-धीरे सड़क पकड़कर जाने लगा। हेदुआ-पोखर के पास आकर एक पेड़ के नीचे वह बैठ गया। बैठकर वह मन ही मन कुछ सोचने लगा। सोचते-सोचते एक गम्भीर चिन्ता मे डूब गया। सूर्य जब पश्चिम की ओर बहुत नीचे उतर पड़े तब जहाँ छाया थी वहाँ धूप आ गई। तब विनय उठ खड़ा हुआ और फिर रास्ता पकड़ धीरे-धीरे जाने लगा। कुछ दूर जाते ही उसने सुना "विनय बाबू, विनय बाबू"। वह चकित हो देखने लगा। इतने मे सतीश ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया। शुक्रवार था, पाठशाला से पढ़कर सतीश घर को लौटा जा रहा था।

सतीश ने कहा—विनय बाबू, चलिए, मेरे साथ मेरे घर चलिए।

विनय—यह कैसे होगा, सतीश बाबू!

सतीश—क्यों न होगा?

विनय—इस तरह बारम्बार जाने से तुम्हारे घर के लोगो को मेरा जाना अच्छा न लगेगा।

सतीश ने विनय की इस युक्ति को एकबारगी प्रतिवाद के अयोग्य जानकर केवल इतना ही कहा—नहीं, चलिए।

उसके परिवार के साथ विनय का जो सम्बन्ध है, उस सम्बन्ध मे कितना बड़ा विघ्न आ पहुँचा है, यह वह बालक कुछ नही जानता था। वह केवल विनय को चाहता है, यह बात सोचकर विनय का हृदय अत्यन्त द्रवित हुआ। परेश बाबू के परिवार ने उसके लिए एक नवीन स्वर्ग की रचना की थी, उसमे अब केवल यही एक बालक है जो अभी तक आनन्द को पूर्ण रूप मे रक्खे हुए है। इस प्रलय के समय उसके मन मे किसी संशय का बादल नहीं छाया था। किसी समाज का कोई बुरा प्रभाव उसके हृदय मे स्थान न पा सका था। विनय ने सतीश के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—चलो भाई, मैं तुमको तुम्हारे घर के दर्वाज़े तक पहुँचा आता हूँ। सतीश के ऊपर बाल्यकाल से सुशीला और ललिता का जो स्नेह और आदर संचित है, सतीश को आलिङ्गन कर विनय ने मानो उस प्रेम-माधुर्य का अनुभव किया।

रास्ते भर सतीश जो कितनी ही अप्रासङ्गिक अनर्गल बातें बक गया, वे विनय के कानों मे मधु-वर्षा की भाँति मीठी मालूम होने लगी। बालक के चित्त की सरलता ने कुछ देर के लिए विनय के जीवन की जटिल समस्या को एकदम भुला दिया।

परेश बाबू के घर के सामने से होकर सुशीला के घर जाना पड़ता था। परेश बाबू की नीचे की बैठक सड़क से ही

देख पड़ती थी। उस घर के सामने आते ही विनय एक वार उस ओर बिना देखे न रह सका। उसने देखा, अपनी टेवल के पास परेश बाबू बैठे हैं; किसी से कुछ बात कर रहे हैं या नहीं, यह उसे मालूम न हो सका। ललिता सड़क की ओर पीठ किये परेश बाबू की कुरसी के पास, एक छोटे से बेंत के मूढ़े पर, विद्यार्थिनी की भाँति चुपचाप बैठी है।

सुशीला के घर से लौट आने पर जिस क्षोभ ने ललिता के हृदय को अशान्त और उद्विग्न कर दिया था उसे निवृत्त करने के लिए वह और कोई उपाय न देख धीरे-धीरे परेश बाबू के पास आकर बैठी। परेश बाबू मे शान्ति का एक ऐसा अपूर्व रूप था कि असहिष्णु ललिता भी अपना उद्वेग दबाने के लिए कभी-कभी उनके पास आकर चुपचाप बैठती थी। परेश बाबू पूछते थे, क्या है ललिता? ललिता कहती थी, कुछ नहीं बाबूजी, आपका यह घर बहुत ठंडा है इसी से यहाँ बैठने आई हूँ।

ललिता आज अपना भग्न हृदय लेकर हमारे कोठे मे आई है, यह परेश बाबू जान गये। उनके हृदय मे भी एक वेदना छिपी थी। इसी से उन्होने धीरे-धीरे एक ऐसी बात निकाली जिससे व्यक्तिगत जीवन के तुच्छ सुख-दु:खों का भार एकदम हल्का हो सके।

बाप और बेटी मे इस प्रकार आलोचना का एक अपूर्व दृश्य देखकर विनय की गति कुछ देर के लिए रुक गई।

सतीश उससे क्या कह रहा था, यह उसके कान मे न गया। सतीश ने तब उससे युद्ध-विद्या-सम्बन्धी एक कठिन प्रश्न पूछा था कि बाघो के एक दल को बहुत दिनो तक शिक्षा देकर अपनी सेना के आगे खड़ा करके युद्ध करने से जीत हो सकती है या नही ? यही उसका प्रश्न था। इतनी देर तक उन दोनों का प्रश्न और उत्तर बराबर साथ-साथ चल रहा था। सहसा इस दफ़े बाधा पाकर सतीश ने विनय के मुँह की ओर देखा। इसके बाद विनय की दृष्टि का अनुसरण कर परेश बाबू के घर की ओर देखते ही वह खूब ज़ोर से बोला—ललिता बहन, ललिता बहन, यह देखो, मैं विनय बाबू को रास्ते से पकड़ लाया हूँ।

विनय लज्जा से काठ हो गया। ललिता झट उठकर खड़ी हो गई। परेश बाबू ने रास्ते की ओर मुँह टेढ़ा करके देखा—एक विशेष घटना हो गई।

तब विनय सतीश को विदा करके परेश बाबू से मिलने गया। उनके कमरे मे आकर देखा, ललिता उसके आने के पूर्व ही वहाँ से चली गई है। उसको सब कोई शान्ति भङ्ग करनेवाले डाकू की तरह देख रहे है। यह समझ, वह सकुचकर कुरसी पर बैठ गया।

कुशल-प्रश्न होने के अनन्तर विनय ने यों कहना आरम्भ किया—मै हिन्दू-समाज के आचार-विचार को जब श्रद्धा-पूर्वक नही मानता और न उसके अनुसार चलता ही हूँ तब

ब्राह्म-समाज मे आश्रय लेना ही मैंने उचित समझा है। आप ही से ब्राह्म-धर्म की दीक्षा लूँ, यही मेरी वासना है।

यह वासना और यह सङ्कल्प इसके एक दण्ड पहले विनय के मन मे ऐसे स्पष्ट रूप से न था। परेश बाबू ने कुछ देर चुप रहकर कहा—सब बातों को अच्छी तरह सोच-विचार-कर देख लिया है न ?

विनय—इसमे तो और कोई बात सोचने की नही है, केवल न्याय और अन्याय यही दोनों सोचकर देखने के विषय हैं। यह बड़ी सीधी सी बात है। हमने जो शिक्षा पाई है, उससे केवल आचार-विचार को ही हम विशुद्ध हृदय से अलङ्घनीय धर्म नहीं मान सकते। इसी कारण मेरे व्यवहार मे पग-पग पर भाँति-भाँति की असङ्गत बातें दिखाई देती हैं। जो लोग श्रद्धा से हिन्दू-धर्म को गहे हुए है, उन लोगों पर मैं बराबर चोटे चलाया करता हूँ, यह मेरे लिए बड़ा ही अन्याय होता है, इसमे तनिक भी सन्देह नही। इस जगह और कोई बात न सोचकर पहले इस अन्याय को दूर करने ही के लिए मुझे प्रस्तुत होना चाहिए। नहीं तो मैं अपने सम्मान की रक्षा न कर सकूँगा।

परेश बाबू को समझाने के लिए यह सब बातें कहने की कोई आवश्यकता न थी, केवल वह अपने वक्तव्य को पुष्ट करने ही के लिए इतना बोल गया। वह जो एक न्याय और अन्याय के युद्ध के बीच पड़ गया है और इस युद्ध मे वह

न्याय का पक्ष लेकर ही विजयी होगा, इसके लिए वह सब कुछ छोड़ने को तैयार है। विनय अपनी न्यायपरायणता पर फूल उठा। उसने सीना तानकर कहा—मनुष्यत्व की मर्यादा किसी तरह रखनी ही होगी।

परेश बाबू ने पूछा—धार्मिक विश्वास के सम्बन्ध मे ब्राह्म-समाज के साथ तुम्हारे मत का मिलान है न ?

विनय कुछ देर चुप रहकर बोला—आपसे सच कहता हूँ, मैं पहले समझता था कि मुझमे अवश्य कुछ धर्म-विश्वास है, इस विषय पर मैंने कई बार कितने ही लोगों के साथ झगड़ा भी किया है। किन्तु आज मैंने ठीक-ठीक जाना है कि धर्म-विश्वास ने अभी तक मेरे हृदय मे वास्तविक रूप से स्थान नही पाया है। सच्चे धर्म से मेरा जीवन अभी तक कोरा ही समझिए। इतना भी जो मैंने जाना है सो केवल आपको देखकर। धर्म मे मेरे जीवन की सच्ची प्रवृत्ति आज तक हुई ही नहीं और न उस पर मेरा सच्चा विश्वास ही उत्पन्न हुआ, तब मैंने केवल कल्पना और युक्ति द्वारा इतने दिन तक अपने समाज के प्रचलित धर्म को नाना प्रकार के सूक्ष्म व्याख्यानों से तर्क की निपुणता के भीतर ला रक्खा है। कौन धर्म सत्य है, यह सोचने की कभी आवश्यकता नही हुई। जिस धर्म को सत्य कहने से मेरी जीत होगी, मैं उसी को सत्य प्रमाणित करके घूम रहा हूँ। उसको प्रमाणित करना जितना ही कठिन हो पड़ा था उतना ही उसे प्रमाणों से सिद्ध

करके मैंने अपना गर्व दिखाया है। किसी दिन मेरे मन मे धर्म-विश्वास पूर्ण रूप से सत्य और स्वाभाविक हो उठेगा या नहीं, यह मैं अभी नहीं कह सकता किन्तु अनुकूल अवस्था और दृष्टान्त के बीच पड़ने से उस ओर मेरे अग्रसर होने की सम्भावना है इसमे संदेह नहीं। ऐसा होने से जो विषय भीतर ही भीतर मेरी बुद्धि को व्याकुल कर रहा है, यावज्जीवन उसी की विजयपताका लिये फिरने के कलङ्क से तो उद्धार पाऊँगा।

परेश बाबू के साथ बातें करते-करते विनय अपनी वर्त्तमान अवस्था के अनुकूल युक्तियों का स्वरूप खड़ा करने लगा। ऐसे उत्साह और कौशल से युक्ति का प्रतिपादन करने लगा जैसे अनेक दिन तर्क-वितर्क करने के अनन्तर मानों आज उसने इस स्थिर सिद्धान्त मे आकर दृढ़ प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

तो भी परेश बाबू ने उससे कुछ और समय लेने का अनुरोध किया। इससे विनय ने समझा कि मेरी दृढ़ता के ऊपर परेश बाबू को सन्देह है। इसलिए वह बारम्बार दीक्षा देने के लिए हठ करने लगा। इस हठ से उसने यही सूचित किया कि मेरा मन अब अपने सिद्धान्त से विचलित होनेवाला नहीं। बात इतनी ही होकर रह गई। ललिता के विवाह की चर्चा उन दोनों मे किसी ने न चलाई।

इसी समय किसी काम से शिवसुन्दरी वहाँ आई। मानों विनय घर मे हई नहीं, इस भाव से वह काम निकालकर जाने को उद्यत हुई। विनय ने समझा था कि परेश बाबू अभी शिव-

सुन्दरी को बुलाकर मेरा वह निवेदन उसको सूचित करेगे किन्तु परेश बाबू कुछ न बोले। यह सोचकर उन्होंने नहीं कहा कि वास्तव मे अभी कहने का समय नहीं आया है। इस बात को वे अभी सबसे छिपा रखने ही के इच्छुक थे। किन्तु जब शिवसुन्दरी विनय पर स्पष्ट रूप से क्रोध और अवज्ञा का भाव प्रकट करके जाने को उद्यत हुई तब विनय किसी प्रकार चुप न रह सका। उसने जाती हुई शिवसुन्दरी के पैरो पर सिर रखकर प्रणाम किया और कहा—मै आज ब्राह्म-समाज की दीक्षा लेने का प्रस्ताव करने आपके पास आया हूँ। मैं अयोग्य हूँ, मुझे आप लोग योग्य बना ले, मुझे इसकी आशा है।

यह सुनकर शिवसुन्दरी आश्चर्य के साथ ठिठक गई और आगे न बढ़ सकी। धीरे-धीरे आकर वह कोठे मे बैठी। उसने जिज्ञासा-भरी दृष्टि से परेश बाबू के मुँह की ओर देखा।

परेश ने कहा—विनय दीक्षा लेने के लिए अनुरोध करते हैं।

यह सुनकर शिवसुन्दरी के मन मे जय-लाभ का गर्व उपज आया, किन्तु पूरा आनन्द उसे क्यों न हुआ? उसके मन मे बड़ी इच्छा थी कि इस दफ़े परेश बाबू को कुछ उचित शिक्षा मिले। उसके स्वामी को पूरे तौर से पछताना पड़ेगा, यह बार-बार उसने भविष्यद्वाणी कर रक्खी थी। और इसी लिए सामाजिक आन्दोलन मे परेश बाबू यथेष्ट विचलित न होते थे। ऐसी अवस्था मे सब सङ्कटों की ऐसे सुचारु रूप से मीमांसा

हो जाना शिवसुन्दरी को यथार्थ मे प्रीतिकारक न हुआ। उसने मुँह भारी करके कहा—इस दीक्षा का प्रस्ताव यदि कुछ ही दिन और पहले होता तो हम लोगों को इतना अपमान और दुःख न सहना पड़ता।

परेश—हम लोगो के दुःख और अपमान की कोई बात नहीं हो रही है। विनय दीक्षा लेना चाहते हैं।

शिवसुन्दरी—केवल दीक्षा ?

विनय ने कहा—अन्तर्यामी भगवान् जानते हैं कि आप लोगों के दुःख और अपमान को मैं अपना ही जानता हूँ।

परेश—देखो विनय, तुम जो दीक्षा लेना चाहते हो, उसे किसी असमञ्जस मे पड़कर लेने की इच्छा न करो। मैंने एक दिन पहले भी तुमसे कहा है, हम लोग एक सामाजिक सङ्कट मे पड़े हैं, यह जानकर तुम किसी कठिन काम मे सहसा प्रवृत्त मत हो।

शिवसुन्दरी ने कहा—यह तो सही है, तो भी मै कहती हूँ कि (म सबको जाल मे फँसे छोड़ इन्हे चुप बैठ रहना भी तो नही चाहिए।

परेश बाबू—चुप न बैठने और हड़बड़ाने से जाल की गाँठ और भी सख्त हो जाती है। कुछ कर लेने ही को कर्तव्य नही कहते, कितने ही समयों मे कुछ न करना ही सबसे बढ़कर कर्तव्य होता है।

शिवसुन्दरी—यही हो, मैं स्त्री-जाति मूर्ख हूँ। सब बात ठीक-ठीक नही समझ सकती। अब स्थिर क्या हुआ, यह जान लूँ तो जाऊँ। मुझे बहुत से काम हैं।

विनय—मैं परसो रविवार को ही दीक्षा ग्रहण करूँगा। यदि परेश बाबू मेरी इच्छा—

परेश बाबू ने कहा—मेरा परिवार जिस दीक्षा का फल पाने की कुछ भी आशा रखता हो उस दीक्षा का दान मुझसे न हो सकेगा। उसके लिए तुमको ब्राह्म-समाज मे निवेदन करना होगा।

विनय का चित्त उसी दम संकुचित हो गया। ब्राह्म-समाज मे यथाविधि दीक्षा लेने योग्य उसके मन की स्थिति न थी—विशेष कर इसका कारण यह था कि ब्राह्म-समाज मे ललिता और उसके सम्बन्ध मे आलोचना हो चुकी है। उन दोनो के विवाह होने की बात अब छिपी नहीं रही। जब यह दीक्षा के लिए चिट्ठी लिखेगा तब उसकी वह चिट्ठी समाचार-पत्र मे बिना प्रकाशित हुए न रहेगी। वह चिट्ठी जब ब्राह्मपत्रिका मे छप जायगी तब वह लोगो के सामने कैसे सिर उठावेगा? उस चिट्ठी को गोरमोहन पढ़ेगा, आनन्दी पढ़ेगी। उसकी चिट्ठी के साथ कोई इतिहास तो रहेगा नहीं। उससे केवल इतनी ही बात ज़ाहिर होगी कि विनय का मन ब्राह्मधर्म की दीक्षा के लिए अकस्मात् लालायित हो उठा है। लेकिन यह बात असल मे सत्य नहीं है। उस

बात को और किसी मे लिप्त किये बिना विनय की लज्जा-रक्षा नहीं हो सकती।

विनय को चुप होते देख शिवसुन्दरी डर गई। वह बोली, ये तो ब्राह्म-समाज मे किसी को जानते-पहचानते नहीं। हमी लोग सब प्रबन्ध कर देगी। मैं अभी हरि बाबू को बुला भेजती हूँ, अब समय नहीं है। परसो रविवार को ही दीक्षा लेने की बात है।

इसी समय सुधीर सामने से होकर छत पर जाता दिखाई दिया। शिवसुन्दरी ने उसे बुलाकर कहा—सुधीर, विनय बाबू परसों हमारे समाज मे दीक्षा लेगे।

सुधीर मारे ख़ुशी के उछल उठा। वह विनय का हृदय से भक्त था। वही विनय ब्राह्म-समाज मे सम्मिलित होगा, यह सुनकर उसे बड़ा उत्साह हुआ। विनय अँगरेज़ी मे जैसा सुललित लेख लिख सकता है, उसकी जैसी प्रखर विद्या-बुद्धि है, इससे ब्राह्म-समाज मे योग न देना ही उसके लिए असङ्गत है। सुधीर को विनय का ब्राह्म-समाज से अलग रहना बिलकुल ही नापसन्द था। विनय के सदृश विज्ञ पुरुष ब्राह्म-समाज से विलग होकर रह नहीं सकता, इसका प्रमाण पाकर आज सुधीर का हृदय आनन्द से फूल उठा। उसने कहा—रविवार तो समीप आ गया, इतने दिनों मे क्या होगा? कितने ही लोग सुनेंगे भी नहीं।

सुधीर की इच्छा थी कि विनय की यह दीक्षा उदाहरण की भाँति सर्वसाधारण मे प्रचारित की जाय।

शिवसुन्दरी—नहीं, नहीं, इस रविवार को ही हो जायगा। सुधीर, तुम दौड़कर जाओ, हरि बाबू को जल्दी बुला लाओ।

जिस हतभाग्य के दृष्टान्त से सुधीर ब्राह्म-समाज को अजेय और शक्तिशाली कहकर सर्वत्र प्रचारित करने की कल्पना से उत्तेजित हो रहा था वह आप ही इस समय मारे लज्जा के दबा जा रहा था। जिस बात को वह मन ही मन डर रहा था उसका बाहरी स्वरूप देखकर वह व्याकुल हो पड़ा।

हरि बाबू की बुलाहट का नाम सुनते ही विनय उठ खड़ा हुआ। शिवसुन्दरी ने कहा—ज़रा बैठ जाइए, हरि बाबू अभी आते है, देर न होगी।

विनय—नहीं, माफ़ कीजिए।

वह इस घेरे से बाहर होकर एकान्त मे सब बातो को भली भाँति सोच-विचार कर देखने का अवसर पाने से ही स्थिर होगा।

विनय को उठते देख परेश बाबू भी उठे और उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोले—विनय, कोई काम जल्दी मत कर बैठो। स्थिर होकर शान्त चित्त से सब बातो को सोच-विचार कर देख लो। भली भाँति सिद्धान्त किये बिना सहसा जीवन के इतने बड़े कठिन काम मे मत धँस पड़ो।

शिवसुन्दरी ने मन ही मन अपने स्वामी पर बहुत नाराज़ होकर कहा—शुरू मे तो कोई सोचकर काम करता नहीं,

भिदीप्त दृष्टि के सामने भीरुता ठहर नहीं सकती। कपट-भाव जलकर ख़ाक हो जाता है। हमारी यह तेजोमय आध्यात्मिक दृष्टि ब्राह्म-समाज की एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ललिता कुछ न बोली, चुप हो रही।

हरि बाबू ने कहा—शायद तुम सुन चुकी हो, तुम्हारी अवस्था पर दृष्टि करके या किसी दूसरे ही कारण से विनय बाबू आख़िर हमारे समाज मे दीक्षा लेने को राज़ी हुए हैं।

ललिता ने पहले यह बात न सुनी थी। सुनने से उसके मन मे क्या भाव उत्पन्न हुआ, इसे भी उसने प्रकाशित न किया। उसकी आँखे मानो निर्निमेष हो गई। वह पत्थर की प्रतिमा की भाँति स्थिर हो बैठी रही।

हरि बाबू ने कहा—विनय की इस बाध्यता से परेश बाबू वास्तव मे बड़े प्रसन्न हैं। किन्तु इसमे वास्तविक आनन्द होने की कोई बात है या नहीं, यह तुम्हीं को निश्चय करना होगा। इसलिए मैं आज तुमसे ब्राह्म-समाज के नाम पर अनुरोध करता हूँ कि अपनी उन्माद-भरी प्रवृत्ति को तब तक एक ओर हटा रक्खो, और केवल धर्म की ओर दृष्टि करके अपने मन से पूछो—इसमे प्रसन्न होने का यथार्थ कारण क्या है?

ललिता अब भी कुछ न बोली। हरि बाबू ने समझा, ललिता मेरे मत मे आ गई है। मेरी दृष्टि का प्रभाव अवश्य कुछ काम करेगा। अतएव वह दूने उत्साह के साथ बोला—दीक्षा।

दीक्षा जीवन की एक पावनी शक्ति है, क्या वही बात आज एक अनधिकारी से मुझको कहनी पड़ेगी ! उस दीक्षा को कलुषित करना होगा ! सुख, सुविधा या प्रेमासक्ति के खिचाव से हम ब्राह्म-समाज मे असत्य को घुसने दें, कपट को सादर आह्वान करे ! क्यो, ललिता ! तुम्हारे जीवन के साथ ब्राह्म-समाज की इस दुर्गति का इतिहास क्या सदा के लिए मिश्रित न हो रहेगा ?

ललिता इस पर भी कुछ न बोली, कुरसी की बॉह को हाथ से ख़ूब पकड़कर बैठी रही। हरि बाबू ने कहा—आसक्ति का छिद्र पाकर उसके द्वारा दुर्बलता मनुष्य पर किस निर्दयता और प्रखर गति से आक्रमण करती है, यह कई बार देख चुका हूँ और मनुष्य दुर्बलता के आक्रमण से कैसे बच सकता है यह भी मैं जानता हूँ। किन्तु जो दुर्बलता केवल अपने जीवन को ही नही, सैकड़ो हज़ारो लाखों लोगों के जीवन की जड़ को हिला सकती है, कहो, वह दुर्बलता क्या सहने योग्य है ? क्या वह क्षमा करने योग्य है ? उसको सहने का अधिकार क्या ईश्वर ने हम लोगों को दिया है ?

ललिता ने कुरसी से उठकर कहा—नहीं, नहीं, हरि बाबू, आप क्षमा क्यों करेगे ? आपके आक्रमण को सहने का सबको अभ्यास हो गया है—मालूम होता है, आपकी क्षमा सबके लिए अलभ्य है।

यह कहकर ललिता वहॉ से चली गई।

शिवसुन्दरी को भी हरि बाबू की बात अच्छी न लगी। अब वह किसी तरह विनय को छोड़ना न चाहती थी। उसने हरि बाबू से अनेक व्यर्थ अनुनय-विनय करके, आख़िर रुष्ट होकर, उसे बिदा कर दिया। वह इस कारण बड़ी कठिनाई मे पड़ी कि उसने न तो परेश बाबू को अपने पक्ष मे कर पाया और न हरि बाबू को ही। हरि बाबू से इस तरह की आशा उसे न थी। हरि बाबू के सम्बन्ध मे फिर शिवसुन्दरी को मत-परिवर्तन करने का समय आया।

जब तक दीक्षा लेने की बात को विनय मामूली तौर से देख रहा था तब तक बड़ी दृढ़ता के साथ अपने सङ्कल्प को प्रकाशित कर रहा था। किन्तु जब उसने देखा कि इसके लिए उसे ब्राह्म-समाज मे निवेदन करना होगा और इस विषय पर हरि बाबू के साथ परामर्श करना पड़ेगा तब वह एकाएक घबरा गया। मैं कहाँ जाकर किससे सलाह लूँ, यह उसकी समझ मे न आया। यहाँ तक कि आनन्दी के पास जाना भी उसके लिए कठिन हो गया। सड़क पर जाकर टहलने की शक्ति भी उसमे न रही। इसी से वह अपने ऊपर वाले सूने कमरे मे जाकर तख़्त पर लेट रहा।

साँझ होने मे अब विलम्ब नही है। अँधेरे घर मे चिराग़बत्ती करने के लिए नौकर को आते देख विनय मना करना ही चाहता था कि इतने मे किसी ने विनय को नीचे से पुकारा।

विनय की जान मे जान आई। मानों उसे मरु-भूमि में जल मिला। इस समय एकमात्र सतीश को छोड़ और कोई उसे आराम न दे सकता था। विनय होश मे आया। "क्या है सतीश बाबू," यह कहकर वह झट बिछौने से उठा और ख़ाली पैर धड़धड़ाता हुआ ज़ीने से नीचे उतर पड़ा।

उसने देखा, आँगन मे ज़ीने के सामने ही सतीश के साथ शिवसुन्दरी खड़ी है। फिर वही बात, वही विचार! विनय बड़ी घबराहट के साथ सतीश और शिवसुन्दरी को ऊपर के कमरे मे ले गया।

शिवसुन्दरी ने सतीश से कहा—बेटा सतीश, तू कुछ देर के लिए बरामदे मे जाकर बैठ।

सतीश के इस निर्वासन-दण्ड से व्यथित होकर विनय ने उसे कितनी ही चित्राङ्कित पुस्तकें देकर पासवाले एक कमरे मे, चिराग़ जलाकर, बिठाया।

शिवसुन्दरी ने कहा—विनय, तुम तो ब्राह्म-समाज मे किसी को जानते नहीं हो। तुम एक चिट्ठी लिखकर मुझे दे दो, मैं कल सबेरे स्वयं जाकर सम्पादक महाशय को देकर सब बन्दोबस्त कर दूँगी जिससे परसों रविवार को ही तुम्हारी दीक्षा हो जाय। तुमको अब कुछ भी तरद्दुद करना न पड़ेगा।

विनय इस पर कोई उज़्र न कर सका। उसने शिव-सुन्दरी की आज्ञा के अनुसार एक चिट्ठी लिखकर उसको दे

दी। जो हो, उसे अब एक मार्ग की आवश्यकता थी जिससे कि लौटने या दुबिधा मे पड़ने का उपाय न रह जाय।

ललिता के साथ विवाह की चर्चा भी शिवसुन्दरी ने छेड़ दी।

शिवसुन्दरी के चले जाने पर विनय के मन मे कुछ और ही भाव का उदय होने लगा, यहाँ तक कि ललिता का स्मरण भी अब उसके हृदय मे असह्य हो गया।

शिवसुन्दरी घर लौटकर आशा करने लगी कि ललिता को आज मै प्रसन्न कर सकूँगी। ललिता विनय को हृदय से चाहती थी, यह शिवसुन्दरी भली भाँति जानती थी। इसी लिए उन दोनों के विवाह की बात पर समाज मे पहले ख़ूब आन्दोलन मचा था। पीछे वह अपने को छोड़ सभी को इसके लिए अपराधी समझने लगी। कई दिनो तक उसने एक तरह से ललिता के साथ बातचीत करना छोड़ दिया था। किन्तु आज जब उस बात का फ़ैसला हो गया तब वह अपनी इस सफलता को ललिता के निकट प्रकाशित करके उसके साथ सन्धि स्थापन करने के लिए व्यग्र हो उठी। ललिता के पिता ने तो सब मिट्टी कर दिया था। ललिता स्वयं भी तो विनय को रास्ते पर न ला सकी, हरि बाबू से भी कोई साहाय्य न मिला। अकेली शिव-सुन्दरी ही ने सब उलझनो को सुलझाया है। जो एक स्त्री कर सकती है वह पाँच पुरुष मिलकर भी नहीं कर सकते।

यो सोचते-सोचते जब वह घर आई, तब उसने सुना कि ललिता आज सबेरे ही सोने को चली गई है; उसका जी

अच्छा नहीं है। शिवसुन्दरी ने मन ही मन हँसकर कहा—मैं उसका जी अच्छा कर दूँगी।

एक चिराग़ बाल, हाथ मे ले, ललिता के शयनगृह मे जाकर देखा, वह अब भी बिछौने पर न सोकर एक आराम-कुरसी पर पड़ी है।

ललिता तुरन्त उठ बैठी और बोली—माँ, तुम कहाँ गई थीं?

उसके स्वर मे कुछ तीव्रता थी। वह पहले ही सुन चुकी थी, कि माँ सतीश को लेकर विनय के घर गई है।

शिवसुन्दरी ने कहा—मैं विनय के घर गई थी।

ललिता—क्यो?

इस क्यों से शिवसुन्दरी के मन मे कुछ क्रोध हुआ। ललिता समझती है, मैं केवल इसका अनिष्ट ही करती फिरती हूँ। जा, तू बड़ी अकृतज्ञ है।

शिवसुन्दरी ने कहा—क्यो गई थी, यह मै बताती हूँ। यह कहकर विनय की वह चिट्ठी उसने ललिता की आँखो के सामने रख दी। वह चिट्ठी पढकर ललिता का मुँह लाल हो गया। शिवसुन्दरी अपनी कार्य-सफलता प्रकट करने की इच्छा से कुछ बढ़ा-चढाकर बोली—यह चिट्ठी क्या विनय के हाथ से सहज ही निकल सकती थी। मैंने बड़ी-बड़ी युक्तियों से यह चिट्ठी उससे लिखवाई है, यह काम दूसरे से कदापि न हो सकता।

ललिता दोनों हाथो से अपना मुँह ढाँककर आराम-कुरसी पर पड़ रही। शिवसुन्दरी ने समझा, मेरे सामने ललिता अपने हृदय के प्रबल वेग को प्रकाशित करने मे लजाती है। वह कोठे से बाहर हो गई।

दूसरे दिन सबेरे चिट्ठी लेकर ब्राह्म-समाज मे जाने के समय शिवसुन्दरी ने देखा, ललिता ने उस चिट्ठी को टुकड़े-टुकड़े कर फाड़ डाला है।

[५७]

दिन को तीसरे पहर जब सुशीला परेश बाबू के पास जाने का विचार कर रही थी तब नौकर ने आकर ख़बर दी, एक बाबू आये है। कौन बाबू? विनय बाबू? नौकर ने कहा—नही, अत्यन्त गोरे रंग का एक लम्बा सा बाबू है। सुशीला चौंक उठी, और बोली—बाबू को ऊपर के कमरे मे ले जाकर बिठाओ।

आज सुशीला कौन कपड़ा पहने हुए है और कैसे पहने हुए है, इसका कुछ भी ख़याल उसके मन मे न था। इस समय बड़े आईने के पास खड़ी होकर उसने देखा तो उसे वह कपड़ा किसी तरह पसन्द न आया। एक तो कपड़ा उसके पसन्द लायक़ नहीं, दूसरे वह भी मामूली तरह से पहने हुए थी, जिसे देखकर वह और भी लज्जित हुई। पर उस समय कपड़ा बदलने का समय न था। काँपते हुए हाथ से आँचल और

बालों को सँवारकर, सुशीला धड़कते हुए हृदय को लेकर ऊपर के कमरे मे गई। उसकी टेबल पर गौरमोहन की रचनावली पडी थी, यह उसे स्मरण न था। ठीक उसी टेबल के सामने कुरसी पर गौरमोहन बैठा है। वह लेखसंग्रह-पुस्तक गौरमोहन की आँखो के सामने खुली पड़ी थी—उसको ढाँक देने या वहाँ से हटा देने का कोई उपाय न था।

"मौसी आपको देखने के लिए बहुत दिनों से व्याकुल हो रही है, मैं उनको ख़बर दे आती हूँ" यह कहकर वह चौकठ के भीतर पैर रख तुरन्त लौट गई। वह सूने घर मे गौरमोहन के साथ अकेली बैठकर बात करने की प्रौढ़ता न कर सकी।

कुछ देर मे सुशीला हरिमोहिनी को साथ लेकर आई। हरिमोहिनी कुछ दिन से विनय के मुँह से गौरमोहन का मत, विश्वास, निष्ठा और उसका जीवन-वृत्तान्त सुनती आई है। कभी-कभी उसके अनुरोध से सुशीला दो-पहर को उसे गौरमोहन के लेख भी पढ़कर सुना दिया करती थी। यद्यपि उसकी समझ मे वे लेख ठीक-ठीक न आते थे, तो भी इतना समझ जाती थी कि शास्त्र और लोकाचार का पक्ष लेकर गौरमोहन वर्तमान-कालिक आचार-हीनता के विरुद्ध लड़ रहा है। इस समय के अँगरेज़ी पढे नवयुवक के लिए इससे बढ़कर आश्चर्य एवं गुण का विषय और हो ही क्या सकता है। ब्राह्म-परिवार मे जब उसने पहले-पहल विनय को देखा

था तब विनय से ही उसको विशेष सन्तोप मिला था। किन्तु क्रमशः वह सन्तोप अभ्यस्त हो जाने पर जब वह विनय के आचार-विचार को ध्यानपूर्वक देखने लगी तब उसको विनय के आचार मे अधिकतर दोष ही दोप सूझने लगे। विनय के ऊपर उसकी बड़ी श्रद्धा थी, किन्तु अब उसके ऊपर वह श्रद्धा न रही, बल्कि वह विनय को मन ही मन धिक्कार देती और उससे घृणा करती थी। विनय पर असन्तोष होने ही के कारण वह बड़ी उत्सुकता के साथ गौरमोहन के आने की बाट जोह रही थी।

गौरमोहन की ओर देखते ही हरिमोहिनी एकदम आश्चर्य मे डूब गई। ऐं! यह तो सच्चा ब्राह्मण है। मानो होम की प्रज्वलित अग्नि है। मानों यह कर्पूरकाय महादेव है। उसके मन मे एक ऐसी भक्ति का सञ्चार हुआ कि गौरमोहन ने जब उसको प्रणाम किया तब वह संकुचित हो गई और अपने को प्रणाम लेने के अयोग्य जान कुण्ठित हो उठी।

हरिमोहिनी ने कहा—बेटा! तुम्हारे विषय मे मैने बहुत बातें सुनी है, तुम्ही गौर हो? तुम यथार्थ मे गौर हो। यह जो कीर्तन का गान सुना करती थी—

चन्दन कपूर सानि चन्द की सुधा मे हाय!
उबटि बिगारयो आज तूने गोरे गात को॥

इसे आज अपनी आँखों देखा। किस बुद्धि से हाकिम ने तुमको जेल दिया था मै यही सोच रही हूँ।

गौरमोहन ने हँसकर कहा--अगर आप मजिस्ट्रेट होती तो जेलख़ाने मे चूहे-छछून्दरो का डेरा होता।

हरिमोहनी ने कहा--नहीं बाबू, संसार मे चोर-डाकुओ की क्या कमी है जो उनके बदले साधुओं को जेल का कष्ट भोगना पड़े। क्या मजिस्ट्रेट के आँखें न थी? न तुम चोर न डाकू, फिर उसने तुम्हे क़ैद की सज़ा क्यो दी? तुम तो भगवान् के पूरे भक्त हो; सच्चे देशहितैषी हो; यह तुम्हारा चेहरा देखने ही से मालूम होता है। जेलख़ाना मौजूद है इसलिए क्या जिसे पाओगे उसी को जेल मे बाँध दोगे? अरे दादा! यह कैसा न्याय है।

गौरमोहन ने कहा—मनुष्य के मुँह की ओर देखने से पीछे भगवान् के रूप का स्मरण न हो आवे, इसी से मजिस्ट्रेट केवल क़ानून की किताब की ओर देखकर काम करता है; किसी मनुष्य का मुँह देखकर काम नहीं करता। अगर वह ऐसा करता तो मनुष्य को बेंत, क़ैद, द्वीपान्तर-वास और फाँसी की सज़ा देकर क्या उसकी आँखों मे नींद आती या उसे खाना अच्छा लगता?

हरिमोहिनी--जब छुट्टी मिलती है तब मैं राधारानी से तुम्हारी रचनावली पढ़वाकर सुनती हूँ। कब तुम्हारे मुँह से अच्छी-अच्छी बाते सुनूँ, मैं इसी प्रत्याशा मे इतने दिन से थी। मैं मूर्ख स्त्री और जन्म की दु:खिनी हूँ। न हित की सब बाते मेरी समझ मे आती हैं और न समझकर उन पर ध्यान

ही देती हूँ। किन्तु अब तुमसे कुछ ज्ञान की शिक्षा पाऊँगी, यह मुझे दृढ़ विश्वास है।

गौरमोहन ने नम्रता से सिर झुका लिया। उसने इस बात का कुछ उत्तर नहीं दिया।

हरिमोहिनी ने कहा—आज तुमको कुछ खाकर जाना होगा। तुम्हारे सदृश विशुद्ध ब्राह्मण-कुमार को मैंने बहुत दिनों से नहीं खिलाया है। आज जो कुछ मौजूद है उसी से मुँह मीठा कर लो। किसी दिन तुमको मेरे घर अच्छी तरह भोजन करना होगा। मैं आज ही नेवता दे रखती हूँ।

यह कहकर जब हरिमोहिनी गौरमोहन के लिए जल-पान की व्यवस्था करने गई तब सुशीला की छाती धड़कने लगी।

गौरमोहन झट पूछ बैठा—आज विनय आपके यहाँ आया था?

सुशीला दबी ज़बान से बोली—जी हाँ।

गौरमोहन—उसके बाद से विनय के साथ मेरी भेंट नहीं हुई है, किन्तु वह क्यों आया था, यह मैं जानता हूँ।

गौरमोहन यह कहकर चुप हो रहा। सुशीला भी चुप हो रही।

कुछ देर के बाद गौर ने कहा—आप लोग जो ब्राह्म-मत के अनुसार विनय का ब्याह कर देना चाहती हैं, यह क्या उचित है?

इस बात की ठेस लगने से सुशीला के मन से सङ्कोच का भाव एकदम दूर हो गया। उसने गौरमोहन के मुँह की ओर देखकर कहा—क्या आप मुझसे यही कहलाना चाहते हैं कि ब्राह्म-मत से विवाह होना अच्छा नही है?

गौरमोहन—मैं आपसे केवल यही नहीं कहलाना चाहता, मै तो आप से बहुत कुछ कहलाने की आशा रखता हूँ, यह आप निश्चय जानो। किसी सम्प्रदाय के आदमी से मनुष्य जितना कुछ पाने की आशा कर सकता है, उसकी अपेक्षा मैं आपसे अधिक पाने की आशा रखता हूँ। आप अपने दल की संख्या को बढ़ाने की इच्छा से ऐसा करती हो, यह बात नहीं है। आप किसी एक दल की व्यक्ति नहीं हैं, यह आपको अपने मन मे विचारना चाहिए और पॉच आदमियों की बात मे पड़कर आप अपने तईं हीन न समझें।

सुशीला सावधान होकर बैठी और बोली—क्या आप किसी दल मे नहीं हैं?

गौरमोहन—नहीं, मैं तो हिन्दू हूँ। हिन्दू कोई दल नहीं, कोई सम्प्रदाय नहीं। हिन्दू एक जाति है। यह जाति इतनी बड़ी है कि कोई इस जाति के जातित्व को किसी संज्ञा के द्वारा सीमा-बद्ध करे, यह नहीं हो सकता। समुद्र जैसे तरङ्ग नहीं है किन्तु तरङ्ग समुद्र का ही एक अङ्ग है, वैसे हिन्दू कोई सम्प्रदाय नहीं, सम्प्रदाय उसी का एक अंश मात्र है।

सुशीला—यदि हिन्दू कोई सम्प्रदाय नहीं तो वह साम्प्रदायिक झमेले में क्यों पड़ता है ?

गौर—मनुष्य को कोई मारने जाता है तो वह अपने को क्यों बचाना चाहता है ? वह सजीव है, उसके प्राण है, इसी लिए न ? पत्थर ही एक ऐसा निर्जीव पदार्थ है जो सब प्रकार के आघातों को चुपचाप सह लिया करता है।

सुशीला ने कहा—जिसे मैं धर्म समझती हूँ उसे यदि हिन्दू आघात समझें तो ऐसी दशा में आप मुझे क्या करने की सलाह देंगे ?

गौर—तब मैं आपको यही सलाह दूँगा कि जिसको आपने कर्तव्य समझ लिया है वह यदि हिन्दू-जाति की इतनी बड़ी सत्ता के लिए हानिकारक आघात गिना जाय तो आपको खूब सोच-विचार कर देखना होगा कि आपकी समझ में कोई भूल या धर्मान्धता तो नहीं है। आपने सब ओर भली भाँति सोचकर देखा है कि नहीं ? अपने दल के लोगों के संस्कार को केवल अभ्यास या आलस्य-वश सत्य कहकर एक इतना बड़ा उत्पात करने को प्रवृत्त होना ठीक नहीं। चूहा जब जहाज की पेंदी काटने में प्रवृत्त होता है तब वह अपने सुभीते और प्रवृत्ति को समझकर ही ऐसा करता है। परन्तु वह यह नहीं देखता कि इतने बड़े आश्रय में छेद करने से उसको जितना सुभीता होगा उसकी अपेक्षा सबकी कितनी बड़ी हानि होगी। चूहा यदि यह जानता कि जहाज़ उसका भी आश्रय है और

उस पर किसी तरह का आघात पहुँचने से उसकी भी अन्त मे दुर्दशा होगी तो वह कदापि जहाज़ की पेंदी मे छिद्र करना अपना कर्तव्य न समझता। हिन्दू-जाति को भी आप एक जहाज़ समझे। जिन सम्प्रदायो से इस जाति को आघात पहुँचे उन्ही को आप चूहे समझ ले। आपको केवल अपने दल की ही बात न सोचनी चाहिए किन्तु समस्त मनुष्य-जाति की बात सोचनी चाहिए। समस्त मानव-जाति की बात सोचकर आपने कभी देखी है? उसके कितने प्रकार के स्वभाव, कितने प्रकार की प्रवृत्ति और कितने प्रकार के प्रयोजन है? क्या यह आप नही जानती? सब मनुष्य एक जगह एक मार्ग पर खड़े नही हैं। किसी के सामने पहाड़ है, किसी के सामने समुद्र है, किसी के सामने मैदान है। परन्तु किसी को बैठे रहने का सुयोग नही, सभी को राह पकड़कर चलना पड़ेगा। क्या आप केवल अपने दल के शासन को ही सबके ऊपर जारी करना चाहती हैं? आँख मूँदकर क्या यही सोच रही हैं कि मनुष्यो मे कोई विचित्रता नही है? केवल ब्राह्म-समाज के रजिस्टर मे नाम दर्ज कराने ही के लिए संसार मे सभी ने जन्म लिया है? जो लुटेरे पृथ्वी की समस्त जातियो को युद्ध मे जीतकर अपने एकछत्र राज्य करने ही मे संसार का एकमात्र कल्याण समझते हैं, जो अपने बल के गर्व से यह स्वीकार नही करते कि अन्यान्य जातियों की विशेषता संसार-हित के लिए एक बहुमूल्य विधान है, और जो संसार

मे केवल दासत्व का विस्तार करते हैं, उनमे और आपमें क्या अन्तर है ?

सुशीला कुछ काल के लिए तर्क और युक्ति सब भूल गई। गौरमोहन के गम्भीर कण्ठस्वर ने एक अद्भुत प्रबलता द्वारा उसके हृदय को आन्दोलित कर दिया। सुशीला भूल गई कि गौरमोहन एक विषय पर बहस कर रहा है; उसे तो यही स्मरण रहा कि गोरा कुछ बोल रहा है।

गौरमोहन—आपके समाज ने भारत के पचीस करोड़ लोगों की सृष्टि नहीं की है। इन पचीस करोड़ मनुष्यों के लिए कौन मार्ग उपयोगी है; कौन धर्म, कौन आचार इन सबों को आहार देगा, शक्ति देगा, इसका भार बलपूर्वक अपने ऊपर लेकर आप इतने बड़े भारतवर्ष को एकबारगी एकाकार समतल कर देना चाहे तो क्या यह कभी हो सकता है ? इस असाध्य-साधन मे आप जितनी ही बाधा पा रही हैं उतना ही देश के ऊपर आपका क्रोध बढ़ रहा है, अश्रद्धा बढ रही है। आप जिनका हित करना चाहती हैं उन पर घृणा करने लगती हैं। पर जिस ईश्वर ने मनुष्य को विचित्र करके सिरजा है और जो उसे विचित्र ही रखना चाहता है उसी को आप पूजती हैं, उसी का ध्यान करती हैं। यदि आप सचमुच उस ईश्वर को मानती है तो उसके विधान को आप स्पष्ट रूप से क्यो नहीं देखती ? अपनी बुद्धि और समाज के गर्व से क्यों उसके अभिप्राय पर ध्यान नही देती ?

सुशीला कुछ उत्तर देने की चेष्टा न कर चुप चाप गौरमोहन की बात सुनती जा रही थी। यह देखकर गौरमोहन के मन मे दया का सञ्चार हो आया। वह ज़रा रुककर कोमल स्वर मे बोला—मेरी बाते शायद आपको सुनने मे कठोर मालूम हुई हो, पर इससे आप मुझे विरुद्ध पक्ष का मनुष्य समझ मन मे विद्रोह का भाव न रक्खें। अगर मैं आपको विरुद्ध पक्ष की समझता तो आपसे ये सब बाते न कहता। आपके हृदय मे जो एक स्वाभाविक उदार शक्ति है, वह समाज के भीतर रहकर संकुचित हो रही है, इसी का मुझे बड़ा खेद है।

सुशीला का मुँह लाल हो गया। उसने कहा—नहीं, नहीं, आप मेरे लिए कुछ सोच न करे। आपको जो कहना हो, कहिए। मैं उसे समझने की चेष्टा करूँगी।

गोरा ने कहा—मुझे अब और कुछ कहना नहीं है। आप भारतवर्ष को अपनी सरल बुद्धि और सरल हृदय के द्वारा देखे। इसे आप प्यार करे। भारतवर्ष के लोगो को यदि आप अब्राह्म की दृष्टि से देखेगी तो अवश्य उन्हे तुच्छ समझ उनका अपमान करेगी। तब आपको केवल उनकी भूल ही भूल सूझेगी। जहाँ से उनके सम्पूर्ण गुण-दोष देख पड़ेगे वहाँ तक आप न पहुँच सकेगी। ईश्वर ने इन्हे भी मनुष्य वनाया है। इनका विचार भिन्न है, मार्ग भी एक नही। इनका विश्वास और संस्कार भी अनेक प्रकार के हैं। किन्तु सभी का आधार एक मनुष्यत्व है। सबके भीतर एक ऐसा पदार्थ है जो मेरा

और मेरे भारतवर्ष का है, जिस पर सच्ची दृष्टि डालने से उसकी सारी क्षुद्रता और अपूर्णता को पार कर एक अद्भुत महती सत्ता देख पड़ती है। अनेक दिनों की अनेक साधना उसके भीतर छिपी नज़र आती है। बहुत दिनों की होमाग्नि अब भी भस्म के भीतर मौजूद है। वह अग्नि एक दिन आपके छोटे देश काल को छोड़ सारे संसार मे अपनी शिखा का तेजःपुञ्ज फैलावेगी, इसमे सन्देह नही। इस भारतवर्ष मे कितने ही त्रिकालदर्शी पुरुष, जो कितनी ही बड़ी-बड़ी बाते कह गए हैं और कितने ही बड़े-बड़े काम कर गए है, इस समय मिथ्या माने जा रहे हैं, इस बात की कल्पना करना भी मानों सत्य के प्रति अश्रद्धा करना है, इसी को नास्तिकता कहते हैं।

सुशीला सिर नीचा किये सुन रही थी। उसने एक बार गौरमोहन के मुँह की ओर देखकर कहा—आप मुझे क्या करने को कहते है?

गौरमोहन—और कुछ नहीं कहता, मैं सिर्फ़ इतना ही कहता हूँ कि आपको यह बात ख़ूब सोचकर देखनी होगी कि हिन्दू-धर्म—पिता की भाँति—नाना भावो के, नाना मतों के, लोगो को अपनी गोद मे लेने के लिए सदा प्रस्तुत रहता है—अर्थात् एक हिन्दू-धर्म ही ऐसा है जो संसार मे मनुष्य को मनुष्य समझ अङ्गीकार करता है; समाज का व्यक्ति जान उसे मनुष्य से भिन्न जाति का जीव नही मानता। हिन्दू-धर्म मूर्ख को भी मानता है, ज्ञानी को भी मानता है। केवल

ज्ञान की एक मूर्त्ति को न मान ज्ञान के अनेक प्रकार के विकाश को मानता है। किरिस्तान लोग सृष्टि-वैचित्र्य को स्वीकार करना नहीं चाहते, वे कहते हैं कि एक ओर ईसाई धर्म और दूसरी ओर अनन्त विनाश, इसके बीच कोई विचित्रता नहीं है। हम लोगो ने उन्ही किरिस्तानो से सबक़ लिया है, इसी से हिन्दू-धर्म की विचित्रता पर लज्जा आती है। इस विचित्रता के भीतर से ही हिन्दू-धर्म जो एक को दिखाने के लिए साधन कर रहा है, यह हम लोगो को नहीं सूझता। जब तक हम लोगो के दिमाग़ मे ईसाई धर्म की शिक्षा का कुछ भी असर घुला रहेगा तब तक हम लोग हिन्दू-धर्म का सत्य परिचय पाकर गौरव के अधिकारी न होंगे।

गौरमोहन की बात को सुशीला सुन क्या रही थी, मानों आँखो के सामने प्रत्यक्ष देख रही थी। गौरमोहन के नेत्रो मे दूर भविष्यत् से बँधी जो एक ध्यान-दृष्टि थी, वह दृष्टि और वाक्य सुशीला के निकट एक होकर दिखाई दिया। सुशीला लज्जा को छोड, अपने को भूलकर, अपूर्व भाव के उत्साह से उद्दीप्त गौरमोहन के मुँह की ओर स्थिर दृष्टि से देखती रही। उस चेहरे के भीतर सुशीला ने एक ऐसी शक्ति देखी जो संसार मे बड़े-बड़े सङ्कल्पो को मानो योग-बल से सत्य कर दिखाती हो। सुशीला ने अपने समाज के अनेक विद्वानों और बुद्धिमान् लोगो के मुँह से अनेक बार अनेक प्रकार की तत्त्वा-लोचना सुनी है किन्तु गौरमोहन की तो यह आलोचना नहीं

है, यह तो एक प्रकार की मानों नई सृष्टि है। यह एक ऐसा प्रत्यक्ष काम है जो तुरन्त सारे शरीर और मन पर अधिकार कर लेता है। गौरमोहन के मत के साथ उसके मत का कहाँ तक, किस परिमाण से, मिलान होता था या मिलान न होता था, इस बात को भली भाँति सोच समझकर देखने की शक्ति सुशीला मे न थी।

इसी समय सतीश घर मे आया। गौरमोहन से वह डरता था। इस कारण वह उससे बचकर अपनी बहन के पास आ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे बोला—हरि बाबू आया है। सुशीला चौंक उठी, मानों किसी ने उसे चाबुक मारा हो। हरि बाबू का आना उसे अच्छा न लगा। उसे किसी तरह टाल देने ही मे उसने अपना कुशल समझा। और उसका आना गौर बाबू को ज़ाहिर न हो, यह भी उसकी आन्तरिक इच्छा थी। सतीश की धीमी आवाज़ गौरमोहन के कान तक न पहुँची होगी, यह समझकर सुशीला झट वहाँ से उठी। उसने ज़ीने से नीचे उतर हरि बाबू के सामने खड़ी होकर कहा—मुझे क्षमा कीजिए, आज आपके साथ बातचीत करने की सुविधा न होगी।

हरि बाबू—सुविधा क्यों न होगी?

सुशीला इसका सीधा उत्तर न देकर बोली—कल यदि आप पिताजी के यहाँ आवे तो मुझसे भेंट हो सकेगी।

हरि बाबू—मालूम होता है, इस समय आपके यहाँ कोई बैठा है?

इस प्रश्न को भी सुशीला ने उड़ा दिया। उसने कहा—आज मुझे फ़ुरसत नहीं। आज आप कृपा कर मुझे क्षमा करें।

हरि बाबू—किन्तु सड़क से गौरमोहन बाबू का कण्ठस्वर सुन पड़ा है, मालूम होता है वे अभी यहीं हैं।

इस प्रश्न को वह टाल न सकी, मुँह लाल करके बोली—हाँ, हैं तो।

हरि बाबू ने कहा—अच्छी बात है, उनसे भी मुझे कुछ कहना था। यदि आपको बात-चीत करने की फ़ुरसत न हो तो कोई हर्ज नहीं, मैं तब तक गौरमोहन बाबू से बात-चीत करूँगा।

यह कहकर और सुशीला से सम्मति की प्रतीक्षा किये बिना ही वह ज़ीने से ऊपर जाने लगा। सुशीला पार्श्ववर्ती हरि बाबू के प्रति कोई लक्ष्य न करके ऊपर के कमरे में गई और गौर बाबू से बोली—मौसी आपके लिए जलपान तैयार करने गई हैं, मैं उन्हें देख आऊँ।—यह कहकर वह शीघ्रता से चली गई और हरि बाबू गम्भीर भाव धारण करके एक कुरसी पर जा बैठा।

हरि बाबू ने गौर से कहा—आप कुछ दुर्बल दिखाई देते हैं?

गौरमोहन—जी हाँ, दुर्बल होने का कारण ही था।

हरि बाबू ने कंठस्वर को कुछ कोमल करके कहा—इसी से तो, ओफ़! आपको बड़ा कष्ट सहना पड़ा है।

गौर—जितने कष्ट की आशा की जाती है उससे अधिक कुछ भी नहीं हुआ।

हरि—विनय बाबू के सम्बन्ध में आपसे कुछ पूछना है। आपने सुना ही होगा कि उन्होंने आगामी रविवार को ब्राह्म-समाज में दीक्षा लेने का निश्चय किया है।

गौर—जी नहीं, मैंने तो नहीं सुना।

हरि बाबू ने पूछा—आपकी इसमें सम्मति है?

गौर—विनय तो मेरी सम्मति की अपेक्षा नहीं रखता।

हरि बाबू—क्या आप समझते हैं कि विनय बाबू पक्के विश्वास के साथ यह दीक्षा लेने को तैयार हुए हैं?

गौर—जब वह दीक्षा लेने को राज़ी हुआ है, तब आपका यह पूछना बिलकुल अनावश्यक है।

हरि बाबू—जब प्रवृत्ति प्रबल हो उठती है तब हम लोगों को यह विचारकर देखने का अवसर नहीं मिलता कि किसे मानना चाहिए और किसे नहीं। आप तो मनुष्यों का स्वभाव जानते ही हैं।

गौर—जी नहीं, मैं मनुष्य के स्वभाव के विषय में व्यर्थ आलोचना नहीं करता।

हरि बाबू—आपके साथ मेरा या मेरे समाज का मत नहीं मिलता। तो भी मैं आप पर श्रद्धा रखता हूँ। मैं बख़ूबी जानता हूँ कि आपको अपने विश्वास से, चाहे वह सत्य हो या मिथ्या, कोई किसी प्रलोभन से हटा नहीं सकता। किन्तु—

गौरमोहन ने रोककर कहा—मुझ पर जो आपकी कुछ श्रद्धा बच रही है क्या वह इतनी मूल्यवान् है कि उससे वञ्चित होने के कारण विनय को विशेष हानि सहनी पड़े। संसार मे भली-बुरी वस्तुएँ अवश्य है किन्तु आप अपनी श्रद्धा या अश्रद्धा द्वारा उनका मूल्य-निरूपण करे तो भले ही करे, पर बात इतनी है कि आप संसार के लोगों से उसे ग्रहण करने के हेतु आग्रह न करे।

हरि बाबू—बहुत अच्छा, उस बात की मीमांसा अभी न होने से भी काम चल जायगा। किन्तु मैं आपसे पूछता हूँ कि विनय जो परेश बाबू के घर विवाह करना चाहते हैं सो क्या आप उसमे रोकटोक न करेगे ?

गौरमोहन ने लाल आँखे करके कहा—मैं विनय के सम्बन्ध मे आपके साथ क्या यह आलोचना कर सकता हूँ ? जब आप मानवस्वभाव से परिचित हैं तब आपको यह भी जानना उचित था कि विनय मेरा मित्र है, आपका नही।

हरि बाबू—इस घटना के साथ ब्राह्म-समाज का सम्बन्ध है, इसलिए मैंने यह बात चलाई है, नही तो—

गौर—मैं तो ब्राह्म-समाज का कोई नही हूँ, मुझसे आपका यह कहना न कहने के बराबर है।

इसी समय सुशीला घर मे आई। हरि बाबू ने उससे कहा—सुशीला, तुमसे मुझे कुछ कहना है।

यह कहने की कोई आवश्यकता न थी। गौरमोहन के सामने सुशीला के साथ अपनी विशेष घनिष्ठता प्रकट करने ही के लिए हरि बाबू ने निष्प्रयोजन यह बात कही थी। सुशीला ने इसका कुछ उत्तर न दिया। गौरमोहन भी अपने आसन पर अटल भाव से बैठा रहा। हरि बाबू को सुशीला के साथ बात करने का अवकाश देने को उसने वहाँ से हट जाने की कोई चेष्टा न की।

हरि बाबू ने कहा—सुशीला, उठो, उस कमरे मे चलो तो तुमसे मुझे जो कहना है, वह मैं कह दूँ।

सुशीला ने इस बात को अनसुनी कर गौरमोहन के मुँह की ओर देखकर पूछा—आपकी माँ अच्छी तरह हैं ?

गौर—माँ अच्छी न हों, ऐसा तो मैंने कभी देखा ही नहीं।

सुशीला—प्रसन्न रहने की शक्ति उनके लिए कैसी सहज है, यह मै देख चुकी हूँ।

गौरमोहन जब जेल मे था तब सुशीला ने आनन्दी को देखा था। वही बात उसे स्मरण हो आई।

इसी समय हरि बाबू ने सहसा टेबल पर से एक पुस्तक उठा ली। उसे खोल लेखक का नाम देखा फिर उसे टेबल पर रखकर वह पढ़ने लगा।

सुशीला सकुच गई। यह देख गौरमोहन मन ही मन कुछ हँसा।

हरि बाबू ने पूछा—गौरमोहन बाबू, मालूम होता है कि यह आपके लड़कपन के समय की रचना है ?

गौरमोहन ने हँसकर कहा—वह लड़कपन अब भी मौजूद है। किसी किसी प्राणी का बालपन थोड़े ही दिनों मे समाप्त हो जाता है, और किसी किसी की नाबालिग़ी बहुत दिनों तक रहती है।

सुशीला ने कुरसी से उठकर कहा—गौरमोहन बाबू, आपके लिए जलपान का सब सामान ठीक हो गया। आप उस कमरे मे चलिए। मौसी जलपान लेकर यहीं आती, परन्तु वे हरि बाबू के सामने नहीं निकलती इसी लिए वे बड़ी देर से आपकी प्रतीक्षा कर रही है।

यह आख़िरी बात हरि बाबू के मन मे चोट पहुँचाने ही के मतलब से सुशीला ने कही। आज उसने बहुत सहा है, तो भी चोट के बदले चोट लगाये बिना न रह सकी।

गौरमोहन उठा। हरि बाबू धृष्ट की तरह बोले—मैं तब तक बैठता हूँ।

सुशीला—व्यर्थ क्यों बैठिएगा ? आज आपसे बातचीत करने को समय न रहेगा।

तो भी हरि बाबू न उठा। सुशीला और गौरमोहन दोनों वहाँ से चले गये।

गौरमोहन को इस घर मे इस प्रकार आदृत होते देख और सुशीला के व्यवहार पर लक्ष्य करके हरि बाबू का

मन लोहा लेने को तैयार हो गया। क्या सुशीला ब्राह्म-समाज से यों भ्रष्ट हो नीचे गिर जायगी? उसकी रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं है? जैसे होगा, इसका प्रतिरोध करना ही होगा।

हरि बाबू दराज़ से एक कागज़ खींच सुशीला को पत्र लिखने बैठा। हरि बाबू के मन में कितने ही अन्ध-विश्वास थे। उनमे एक यह भी था कि सत्य की दुहाई देकर जब हम किसी को फटकार बताते है तब हमारा ओजस्वी वाक्य विफल नहीं हो सकता।

भोजन के उपरान्त हरिमोहिनी के साथ बड़ी देर तक बाते करके गौरमोहन जब अपनी छड़ी लेने के लिए सुशीला के कमरे मे गया तब सूर्यास्त हो चुका था। सुशीला की टेबल पर बत्ती जलाई जा चुकी थी। हरि बाबू चला गया है। सुशीला के नाम की लिखी एक चिट्ठी टेबल पर खुली पड़ी है। वह इस तरह से रक्खी हुई है कि घर के भीतर प्रवेश करते ही उस पर दृष्टि पड़े।

उस चिट्ठी को देखते ही गौरमोहन के हृदय का भाव बदल गया। जो पहले मक्खन से भी मुलायम था वह एका-एक पत्थर से भी बढ़कर कठोर हो गया। चिट्ठी हरि बाबू के हाथ की लिखी है, इसमे कोई सन्देह न रहा। सुशीला पर जो हरि बाबू का एक विशेष अधिकार है यह गौरमोहन जानता था। उस अधिकार मे कोई अन्तर आ पड़ा है, यह वह

न जानता था। आज जब सतीश ने सुशीला के कान मे हरि बाबू के आने की बात कही और सुशीला चौंककर बड़ी शीघ्रता से नीचे चली गई तथा फिर थोड़ी ही देर बाद उसे अपने साथ ऊपर ले आई तब गौरमोहन के मन मे बड़ी चिन्ता हुई। इसके बाद जब हरि बाबू को घर में अकेला छोड़ सुशीला गौरमोहन को जलपान कराने के लिए ले गई तब यह व्यवहार भी गौरमोहन को अच्छा न लगा परन्तु अधिक घनिष्ठता की जगह ऐसा रूखा व्यवहार हो सकता है, यह समझकर गौरमोहन ने इसे आत्मीयता का ही लक्षण समझा। इसके अनन्तर टेबल पर यह चिट्ठी देखकर गौरमोहन के मन मे एक भारी धक्का लगा। चिट्ठी बड़ी ही रहस्यमय वस्तु है। वह बाहर से केवल नाम दिखाकर भीतर सब बातें रख लेती है जिससे मनुष्य भाँति भाँति के तर्क-वितर्क करने लग जाते हैं, मूल कुछ न रहने पर भी उन्हे आकाश-पाताल की बाते सोचनी पड़ती है।

गौरमोहन ने सुशीला के मुँह की ओर देखकर कहा—मैं कल आऊँगा।

सुशीला ने नीची नज़र करके कहा—बहुत अच्छा।

गौरमोहन जाते समय एकाएक खड़ा होकर यो कहने लगा—भारतवर्ष के सौरमण्डल मे ही तुम्हारे रहने का स्थान है। तुम मेरे देश की हो—कोई धूमकेतु आकर तुमको अपनी पूँछ मे लपेटकर शून्य मे लीन हो जाय, यह कभी होने का

नहां। जहाँ तुमको रहना चाहिए वहीं तुमको दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित करके ही छोड़ूँगा। उस स्थान पर तुम्हारा सत्य, तुम्हारा धर्म, तुमको छोड़ देगा—यह बात इन लोगों ने तुमको समझा रक्खी है। मैं तुमको भली भाँति बता दूँगा कि तुम्हारा सत्य और तुम्हारा धर्म केवल तुम्हारा या दो-चार मनुष्यों का मत या वचन नहीं, वह सत्य धर्म चारों ओर के असंख्य प्राणियों के साथ सम्बद्ध है। यह वह पौधा नहीं है जिसे जब चाहो तब उखाड़कर दूसरी जगह गमले मे लगा दिया। वह एक ऐसा विशाल वृक्ष है कि उसकी छाया मे सभी लोग सुख से विश्राम कर सकते हैं। यदि तुम उस धर्म-वृक्ष को सजीव और हरा भरा रखना चाहती हो, यदि उसको सब प्रकार सार्थक करना चाहती हो, तो तुम्हारे जन्म के बहुत पहले जिस लोक-समाज के हृदय मे तुम्हारा स्थान निर्दिष्ट है वहीं तुमको आसन ग्रहण करना होगा। किसी तरह तुम यह न कह सकोगी "मै इसके बाहर हूँ, यह मेरा कोई नही।" अगर यह बात कहोगी तो तुम्हारा सत्य, तुम्हारा धर्म, तुम्हारी शक्ति, एक साथ छाया की तरह मलिन हो जायगी। ईश्वर ने तुमको जिस जगह भेज दिया है, वही तुम्हारे लिए उपयुक्त स्थान है। तुम्हारा मत अगर वहाँ से तुमको खीचकर अलग ले जाय तो इससे कभी तुम्हारे मत की जीत न होगी, यह बात मैं सप्रमाण सिद्ध करके तुम्हे समझा दूँगा! मैं कल आऊँगा।

यह कहकर गौरमोहन चला गया। गौरमोहन की यह बात घर के भीतर की हवा मे बड़ी देर तक प्रतिध्वनि की तरह गूँजती रही। सुशीला मूर्ति की भाँति निश्चेष्ट बैठी रही।

[५८]

विनय ने आनन्दी से कहा—देखो माँ, मैं तुमसे सच कहता हूँ। जब-जब मैं ठाकुरजी को प्रणाम करता हूँ तब-तब मेरे मन मे कुछ लज्जा मालूम होती है, तो भी उस लज्जा को दबाकर मैंने उलटे मूर्ति-पूजा का पक्ष लेकर अच्छे-अच्छे लेख लिखे हैं और प्रतिमा-पूजन का अनुमोदन किया है। किन्तु जब मैं ठाकुरजी को प्रणाम करता हूँ तब मेरा मन इस काम मे मेरा साथ नहीं देता।

आनन्दी ने कहा—तुम्हारा मन क्या सीधा मन है? तुम तो स्थूल रूप से कुछ देख नहीं सकते। इसी से तुम सदा सूक्ष्म बातों को सोचते रहते हो। यही कारण है कि तुम्हारे मन से सन्देह दूर नहीं होता।

विनय—यही बात ठीक है। अधिक सूक्ष्म बुद्धि के बल से ही मैं जिस पर विश्वास नहीं करता उसे भी किसी न किसी युक्ति द्वारा प्रमाणित कर सकता हूँ। सुविधा देखकर अपने को और दूसरे को भी भुलावे मे डालता हूँ। इतने दिन तक जो मैंने धर्म-सम्बन्ध मे बहुतेरे तर्क किये हैं, वे धर्म की ओर से नहीं, समाज की ही ओर से किये हैं।

आनन्दी ने कहा—धर्म की ओर से जब सत्य का खिंचाव नहीं रहता तब ऐसा ही होता है। तब धर्म भी वंश, मान और रुपये-पैसे की तरह अभिमान करने की वस्तु हो उठता है।

विनय—हाँ, तब यह जो सार्वजनिक धर्म है इस पर लोग ध्यान नहीं देते, किन्तु "यह हमारा धर्म है," इस बात को मन में ठानकर ही वे युद्ध करते फिरते हैं। मैंने भी इतने दिन तक यही किया है। तो भी मैं अपने को एकदम नहीं भुला सका हूँ। जहाँ मेरा विश्वास नहीं उपजता वहाँ मैं भक्ति का बहाना करता हूँ। इस कारण मैं अपने आप ही लज्जित हूँ।

आनन्दी—सो क्या मैं नहीं समझती! तुम लोग साधारण जनों की अपेक्षा बहुत बढ़कर बातें करते हो। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि मन के भीतर कुछ ज़रूर दोष है, जिसको लक्षित न होने देने के लिए तुम लोगों को बहुत मसाला ख़र्च करना पड़ता है। स्वाभाविक भक्ति में मसाले की ज़रूरत नहीं होती।

विनय—इसी से तो मैं आपसे पूछने आया हूँ कि जिस पर मैं विश्वास नहीं करता उस पर विश्वास करने की नक़ल करना क्या अच्छा है?

आनन्दी—सुनो तो, यह बात पूछने का कौन सा अवसर आ पड़ा है?

विनय—माँ, मैं कल रविवार को ब्राह्म-समाज में दीक्षा लूँगा।

आनन्दी ने विस्मित होकर कहा—यह क्या कहते हो विनय? दीक्षा लेने की ऐसी क्या आवश्यकता है?

विनय—आवश्यकता तो मैं अभी आपको बतला रहा था।

आनन्दी—तुम्हारा जो विश्वास है, उस विश्वास पर स्थित होकर क्या तुम हमारे समाज मे नहीं रह सकते ?

विनय— रहने से कपटी कहलाना पड़ेगा।

आनन्दी—क्या कपट छोड़कर रहने का साहस नहीं है? निश्छल भाव से रहने पर समाज के लोग कष्ट देगे, क्या उस कष्ट को सहकर नहो रह सकोगे ?

विनय—माँ, यदि मैं हिन्दू-समाज के मत से न चलूँगा तो—

आनन्दी—हिन्दू-समाज मे यदि तीन सौ तेंतीस करोड़ मत चल सकते हैं तो तुम्हारा एक मत क्यों न चलेगा ?

विनय—हमारे समाज के लोग यदि कहे कि तुम हिन्दू नहीं हो तो क्या मैं ज़ोर देकर कहूँगा, "मै हिन्दू हूँ ?" क्या कहने ही से मैं हिन्दू बना रहूँगा ?

आनन्दी—समाज के लोग तो मुझे किरिस्तान कहते हैं। मैं किसी पर्व त्योहार मे उनके साथ बैठकर भोजन नहीं करती। तो भी उनके किरिस्तान कहने से मैं अपने को किरिस्तान थोड़े ही मानती हूँ। मैं उनकी बात मानकर ही चलूँ, यह कोई बात नहीं। जिसको मैं उचित समझती हूँ, उसे छोड़ अलग हो बैठना मेरी समझ मे अन्याय है।

विनय इसका कुछ उत्तर देना चाहता था। आनन्दी उसे रोककर बोली—विनय, मैं तुमको विवाद करने न दूँगी, यह

तर्क की बात नहीं है। तुम मेरे पास क्या कुछ छिपा सकते हो? मैं देख रही हूँ कि तुम मेरे साथ विवाद करने का बहाना करके ज़बरदस्ती अपने को भुलाने की चेष्टा कर रहे हो। किन्तु इतने बड़े काम मे इस तरह की चाल चलने की इच्छा न करो।

विनय ने सिर नीचा करके कहा—किन्तु माँ, मैं तो चिट्ठी लिखकर वचन दे आया हूँ कि कल मैं दीक्षा लूँगा।

आनन्दी—यह न हो सकेगा। परेश बाबू से यदि मैं समझाकर कहूँगी तो वे कभी इसके लिए हठ न करेंगे।

विनय—परेश बाबू का इस दीक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं। वे मेरे इस अनुष्ठान मे न सहायक है और न बाधक।

आनन्दी—तब तुमको कुछ चिन्ता करनी न होगी।

विनय—नहीं माँ, सब बाते तय हो गई हैं। अब वह बात फिर नहीं सकेगी, किसी तरह भी नहीं।

आनन्दी—गोरा से कहा है?

विनय—गौर बाबू से भेंट ही नहीं हुई।

आनन्दी—क्यों, क्या गोरा अभी घर पर नहीं है?

विनय—नहीं, ख़बर मिली है कि वह सुशीला के घर गया है।

आनन्दी चकित होकर बोली—वहाँ तो वह कल गया था!

विनय—आज भी गया है।

इतने मे आँगन के बीच पालकी के कहारों की आवाज़ सुन पड़ी। आनन्दी की किसी कुटुम्बिनी के आने की बात सोचकर विनय बाहर चला गया।

ललिता ने पालकी से उतरकर आनन्दी को प्रणाम किया। आज आनन्दी के मन मे ललिता के आने की कोई आशा न थी। वह विस्मित होकर ललिता के मुँह की ओर देखते ही समझ गई कि विनय की दीक्षा आदि के कारण ललिता के ऊपर कोई सङ्कट आ पडा है। इसी से वह मेरे पास आई है।

आनन्दी ने बात को सुगम कर देने के अभिप्राय से कहा—बेटी, तुम्हारे आने से मैं बहुत ख़ुश हुई। विनय भी तो अभी यहीं था। कल वह तुम्हारे समाज मे दीक्षा लेगा; मेरे साथ उसकी यही बात हो रही थी।

ललिता ने कहा—वे दीक्षा लेने क्यों जाते हैं। क्या दीक्षा लेने की कोई आवश्यकता है?

आनन्दी ने आश्चर्य के साथ कहा—ऐं, आवश्यकता नहीं है?

ललिता—मैं तो कोई आवश्यकता नहीं देखती।

ललिता के कहने का अभिप्राय न समझ आनन्दी चुपचाप उसके मुँह की ओर देखने लगी।

ललिता ने सिर नीचा करके कहा—ब्राह्म-समाज मे एकाएक इस तरह दीक्षा लेने के लिए जाना उनके लिए अपमान-सूचक है। यह अपमान वे किसलिए स्वीकार करने जाते हैं?

किसके लिए? यह बात क्या ललिता नहीं जानती है? क्या इसमे ललिता के लिए आनन्द की कोई बात नही है?

आनन्दी ने कहा—कल दीक्षा का दिन है, उसने पक्का वचन दिया है, अब उसमे हेर फेर करने की कोई बात नही रही। विनय तो ऐसा ही कह गया है।

ललिता ने आनन्दी के मुँह की ओर अपनी तीव्र दृष्टि स्थापित करके कहा—इन विषयों मे पक्की बात का कोई अर्थ नही। यदि परिवर्तन आवश्यक होगा तो वह करना ही पड़ेगा।

आनन्दी ने कहा—बेटी, तुम मुझसे सङ्कोच मत करो। मै तुमसे सब बातें खोलकर कहती हूँ। मै इतनी देर से विनय को यही समझा रही थी कि तेरा धर्मविश्वास चाहे जैसा हो, समाज छोड़ना तुझे उचित नही, उसकी आवश्यकता भी नही। मुँह से वह चाहे जो कुछ कहे परन्तु वह ये बातें नही समझता, यह मैं नहीं कह सकती। उसके मन का भाव तो तुमसे छिपा नही है। वह निश्चय जानता है कि समाज का त्याग किये बिना तुम लोगों के साथ उसकी एकता न हो सकेगी। बेटी, लजाओ मत, तुम ठीक ठीक बताओ, क्या यह बात सच नही है?

ललिता ने आनन्दी के मुँह की ओर दृष्टि करके कहा—माँ, मैं आपके पास कुछ भी लज्जा न करूँगी। मै आपसे सच कहती हूँ कि मै यह कुछ नहीं मानती। मैंने खूब सोच-विचारकर देखा है कि मनुष्य के धर्म, विश्वास, समाज जो कुछ हैं, इन सबों को न मानने से मनुष्यों मे परस्पर मेल होना

सम्भव नहीं। ऐसा होने से तो हिन्दू और किरिस्तान मे मित्रता न होगी। मनुष्यों के लिए ईश्वर का दिया जो एक व्यापक धर्म है, उसके आगे सामाजिक धर्म तुच्छ है।

आनन्दी ने मुस्कुराकर कहा—तुम्हारी बात सुनकर बड़ी ख़ुशी हुई, मैं भी यही कहती हूँ। एक मनुष्य से अन्य मनुष्य का रूप, गुण, स्वभाव कुछ नहीं मिलता, तो भी इस विभिन्नता के कारण दोनो मनुष्यो के मिलाप मे कोई बाधा नहीं होती। मत, विश्वास के लिए ही क्यो विरोध हो? बेटी, तुमने मेरी सब चिन्ताओं को दूर कर दिया। मैं विनय के लिए बडी चिन्तित थी। उसने अपना मन तुम्हारे हाथ सौंप दिया है, यह मैं जानती हूँ। तुम्हारे साथ सम्बन्ध होने मे यदि उसे कहीं कोई बात खटकेगी तो वह किसी तरह उसे नहीं सह सकेगा। इसी से उसको किसी तरह की बाधा देने मे मेरे मन को जो कष्ट होता था सो अन्तर्यामी भगवान् जानते हैं किन्तु उसका भी बड़ा सौभाग्य है। उसका इतना बड़ा सङ्कट तुमने सहज ही काट डाला; यह क्या साधारण बात है। मैं एक बात पूछती हूँ। परेश बाबू के साथ क्या इस तरह की कोई बात हुई थी?

ललिता ने लज्जा को दबाकर कहा—नहीं, किन्तु मैं जानती हूँ कि वे सब बात ठीक ठीक समझ जायँगे।

आनन्दी—यदि वे न समझेगे तो कौन समझेगा। उन्हीं की बदौलत तो तुमने इतना ज्ञान प्राप्त किया है। वे ज्ञान-

वान् न होते तो तुम ऐसी बुद्धि, ऐसा मानसिक बल, कहाँ से पाती ? मै विनय को बुला लाती हूँ। उसके साथ तुम अपने मुँह से अपनी सब बातों का निश्चय कर लो। आमने सामने ही सब बाते तय हो जानी चाहिएँ। एक बात मैं अभी तुमसे कहे देती हूँ। विनय को मैं इतने दिनों से देखती आती हूँ। वह ऐसा सुशील लड़का है कि उसके लिए तुम जितना दुःख उठाओगी वह सभी दुःखों को सार्थक करेगा, यह मै ज़ोर देकर कहती हूँ। मै बहुत दिनो से इस बात को सोच रही थी कि ऐसी कौन भाग्यवती है जो विनय को पावेगी। बीच-बीच मे उसके व्याह के कितने ही पैग़ाम आये हैं, परन्तु उनमे से मुझे एक भी पसन्द नहीं आया। आज देखती हूँ, उसका भी भाग्य कम नही है।

यह कहकर आनन्दी ने ललिता का चिबुक छूकर चुम्बन किया, और फिर विनय को बुला लाई। लखमिनिया को कमरे मे बिठाकर किसी बहाने आप ललिता के लिए खाने-पीने का प्रबन्ध करने को अन्यत्र चली गई।

आज ललिता और विनय के बीच सङ्कोच का अवकाश न रहा। उन दोनों के जीवन मे जो एक कठिन सङ्कट की सृष्टि हुई है, उसी के सम्पर्क से उन्होने परस्पर के सम्बन्ध को स्वाभाविक और महत्त्व-पूर्ण देखा है। उन दोनों के बीच किसी आवेश के अभिनय ने रङ्गीन परदा नहीं डाला। उन दोनो का हृदय मिलकर एक हुआ है और उन दोनो के

जीवन की धारा गङ्गा-यमुना की तरह एक पुण्य सङ्गम तीर्थ मे एकत्र होने के लिए पास ही पास वह रही है। इस सम्बन्ध मे कुछ आलोचना न करके उन्होने इस बात को विनीत गम्भीर भाव से निर्विवाद होकर मान लिया। समाज उन दोनो को बुलाता नही, किसी तरह उन दोनो को मिलाना भी नही चाहता। उन दोनो का बन्धन कोई बनावटी बन्धन नही है, इस बात को याद करके उन्होने अपने मिलन को एक ऐसे धर्म का मिलन माना जो बहुत बड़ा और सरल है; जो किसी छोटी-मोटी बात पर विवाद नही करता और जिसका कोई विचारवान् पण्डित विरोध नही कर सकता।

ललिता ने अपने मुँह और आँखो को उद्दीप्त करके कहा—आप जो अपना महत्त्व गवाँकर अपने को अपमानित करके, मुझे ग्रहण करने जायँगे तो मै इस मान-हानि को न सह सकूँगी। आप जिस धर्म पर स्थित हैं उसी पर अटल भाव से स्थित रहे, यही मैं चाहती हूँ।

विनय—आपकी जहाँ प्रतिष्ठा है वही आप भी स्थिर रहे, वहाँ से अपने को हिलने न दे। प्रीति यदि प्रभेद को स्वीकार नही कर सकती तो संसार मे कोई प्रभेद दिखाई नही देता।

दोनों ने प्रायः बीस मिनट तक जो बात-चीत की उसका सारांश यह है कि वे हिन्दू हैं या ब्राह्म, इस बात को दोनों भूल गये। दोनो आदमी हैं, दोनों की आत्मा एक है, यही बात उनके मन के भीतर निष्कम्प दीपशिखा की भाँति बलने लगी।

परेश बाबू उपासना के अनन्तर अपने घर के सामने बरामदे मे चुपचाप बैठे हैं। सूर्यास्त हुए अभी देर नहीं हुई है।

इसी समय ललिता को साथ ले विनय वहाँ आया और उसने धरती मे सिर टेककर उन्हे प्रणाम किया।

परेश दोनों को इस तरह वहाँ आते देख कुछ विस्मित हुए। पास मे बैठने को कुरसी न थी, इससे उन्होने कहा—चलो, कोठे मे चलो। "नहीं, आप बैठे रहे," यह कहकर विनय वही नीचे बैठ गया। ललिता भी ज़रा हटकर परेश बाबू के पैरों के पास जा बैठी।

विनय ने परेश बाबू से कहा—हम दोनों मिलकर आपसे 'आशीर्वाद' लेने आये हैं। यही हमारे जीवन की सत्य दीक्षा होगी।

परेश बाबू विस्मित होकर उनके मुँह की ओर देखने लगे।

विनय ने कहा—मैं नियमबद्ध और वाक्यबद्ध होकर समाज मे दीक्षा नही लूँगा। जिस दीक्षा से हम दोनो का जीवन विनयावनत होकर सत्य बन्धन से बद्ध होगा, वह दीक्षा तो आपका आशीर्वाद है। हम दोनों का हृदय भक्ति से आपके ही चरणों मे प्रणत हुआ है—हम दोनों का जो वास्तविक मङ्गल है, वह ईश्वर आपके ही हाथ से करावेगे।

परेश बाबू कुछ देर तक कोई बात न कह सके। पीछे बोले—विनय, तो तुम ब्राह्म न होगे?

विनय—जी नहीं।

परेश बाबू ने पूछा—तो क्या तुम हिन्दू-समाज में ही रहना चाहते हो ?

विनय—जी हाँ।

परेश बाबू ने ललिता के मुँह की ओर देखा। ललिता ने उनके मन का भाव समझकर कहा—पिताजी, मेरा जो धर्म है वह मेरा रहेगा ही। धर्मरक्षा में असुविधा हो सकती है, कष्ट भी हो सकता है, किन्तु जिनके साथ मेरे मत की कौन बात, आचार-व्यवहार का भी मिलान नहीं है उनसे बचकर न रहने में मेरे धर्म में व्याघात पहुँचेगा, इस बात को मैं किसी तरह नहीं मान सकती।

परेश बाबू चुप हो रहे। ललिता ने कहा—पहले मैं समझती थी कि ब्राह्म-समाज ही मानों मेरा एक मात्र संसार है, इसके बाहर मानों सब इसकी छाया है। ब्राह्म-समाज से विलग होना मानों समस्त सत्य से अलग होना है। किन्तु इधर कई दिनों से मेरा वह भाव एकदम लोप हो चला है।

परेश बाबू कुछ उदासी के साथ हँसे।

ललिता ने कहा—पिताजी, मैं आपको ठीक-ठीक बता नहीं सकती कि मेरे विचारों में कितना बड़ा परिवर्तन हो गया है। ब्राह्म-समाज के भीतर मैंने जिन लोगों को देखा है उनमें कितने ही लोगों के साथ मेरा धर्म-मत एक होने पर भी उनके साथ स्वभाव की एकता नहीं है। तो भी ब्राह्म-समाजी होने

से, एक नाम का आश्रय लेकर, मैं उन्हीं को विशेषकर अपना कहूँ और संसार के अन्य सभी लोगों से घृणा करूँ, अब इसका कोई अर्थ मेरी समझ में नहीं आता।

परेश बाबू अपनी विद्रोही बेटी की पीठ पर धीरे-धीरे हाथ फेरते हुए बोले—किसी व्यक्तिगत कारण से मन जब उत्तेजित रहता है तब विचार ठीक नहीं होता। पूर्व पुरुष से लेकर भविष्य सन्तान तक मनुष्य का जो पूर्वापर सम्बन्ध है उसका मङ्गल देखते हुए समाज का प्रयोजन होता है—वह प्रयोजन तो कृत्रिम प्रयोजन नहीं है। तुम्हारे भावी वंश के भीतर जो दूरव्यापी भविष्यत् छिपा हुआ है, उसका भार जिसके ऊपर है वही तुम्हारा समाज है—उसकी बात नहीं सोचोगी?

विनय—हिन्दू-समाज तो है।

परेश—यदि हिन्दू-समाज तुम्हारा भार न ले, यदि वह तुम्हे स्वीकार न करे तो?

विनय ने आनन्दी की बात को स्मरण करके कहा—उसको स्वीकार कराने का भार हमको लेना होगा। हिन्दू-समाज तो बराबर नये-नये सम्प्रदायों को आश्रय देता आया है। वह सारे धर्म-सम्प्रदायों का समाज हो सकता है।

परेश ने कहा—मौखिक तर्क से कोई विषय एक प्रकार से दिखाया जा सकता है किन्तु कार्य में वह उस प्रकार देखा नहीं जाता। नहीं तो इच्छा करने से ही क्या कोई पुराने समाज को छोड़ सकता है? जो समाज मनुष्य के धर्मज्ञान

को बाहरी आचार की बेड़ी डालकर, एक ही जगह घेरकर, बिठा रखना चाहता है उसे मानने से अपने को बहुत दिनों तक कठपुतली बनाकर रखना होता है।

विनय ने कहा—यदि हिन्दू-समाज की भी वही सङ्कीर्ण अवस्था होगी तो उससे उसको छुड़ाने का भार भी हमीं को लेना होगा। जहाँ घर की खिड़की तोड़ देने से ही घर में प्रकाश और वायु आवे वहाँ कोई क्रोध करके पक्का मकान तोड़ देने का दुःख क्यों उठावे?

ललिता बोली—मेरी समझ में ये बातें नहीं आती हैं। किसी समाज की उन्नति का भार लेने का मैं सङ्कल्प नहीं करती। किन्तु चारों ओर से एक ऐसा अन्याय मुझे धक्का दे रहा है कि मेरे प्राण निकलने पर हैं। चाहे जिस कारण से हो, इन सबों को सहकर मैं सिर नीचा करके रहना उचित नहीं समझती। उचित-अनुचित भी मैं भली भाँति नहीं जानती—किन्तु मैं समाज के नियमानुसार नहीं चल सकूँगी।

परेश बाबू ने स्नेह-भरे स्वर में कहा—कुछ और समय लेना क्या अच्छा नहीं होगा? अभी तुम्हारा मन चञ्चल है।

ललिता ने कहा—समय लेने में मेरी कोई क्षति नहीं। किन्तु मैं भली भाँति जानती हूँ कि झूठी बात और अन्याय-अत्याचार बिना बढ़े न रहेगा। इसी से मुझे डर लगता है कि पीछे मैं कोई ऐसा काम न कर बैठूँ जिससे आप भी कष्ट पावें। आप मेरे लिए कोई चिन्ता न करें, मैं इन बातों का

कुछ शोच नहीं करती। मैंने सब बातों को सोच-विचारकर अच्छी तरह देख लिया है। मेरा जैसा संस्कार और शिक्षा है, इससे ब्राह्म-समाज के बाहर होने से मुझे बहुत कुछ सङ्कोच और कष्ट स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु इससे मेरा मन ज़रा भी नहीं हिचकता, प्रत्युत मन मे उत्साह और आनन्द का भाव उदित होता है। मुझे यदि कुछ शोच है तो यही कि मेरा कोई काम पीछे आपको कष्ट न दे।—यह कहकर ललिता धीरे-धीरे परेश बाबू के पैरों पर हाथ फेरने लगी।

परेश बाबू ने ज़रा हँसकर कहा—बेटी, यदि मैं अपनी बुद्धि के ऊपर ही किसी बात को निर्भर करता तो मेरी इच्छा और मेरे मत के विरुद्ध कोई काम होने से मैं दुःख पाता। तुम्हारे मन मे जो आवेग उपस्थित हुआ है वह सम्पूर्ण रूप से अशुभ है, यह मैं सहसा नहीं कह सकता। मैं भी किसी दिन विद्रोह करके घर छोड़ निकल पड़ा था; सुविधा-असुविधा की कोई बात न सोचता था। समाज के ऊपर जो आजकल यह क्रमागत घात-प्रतिघात चल रहा है, इससे साफ़ ज़ाहिर होता है, यह उन्हीं की शक्ति का काम है। वे तोड़-मरोड़कर या नये साँचे मे ढालकर, या पीट-पाटकर किस पदार्थ को किस भाव मे रक्खेंगे, यह मैं नहीं जानता। सोचकर देखो तो ब्राह्म-समाज ही क्या और हिन्दू-समाज ही क्या! किसी समाज को ईश्वर नहीं देखता। वह तो मनुष्य के हृदय को देखता है, चाहे वह किसी समाज

मे क्यों न हो।—यह कहकर परेश बाबू कुछ देर के लिए आँखें मूँदकर ध्यानस्थ हो गये।

कुछ देर मे उन्होने आँखे खोलकर कहा—देखो विनय, धर्म-मत के साथ हमारे देश के सभी समाज सम्मिलित हैं। इसी कारण हमारे समस्त सामाजिक कर्मों के साथ धर्मानुष्ठान का योग है। धर्म-मत के घेरे से बाहर के लोगों को समाज के घेरे मे किसी तरह लेना नहीं होता, लेने का कोई रास्ता भी नहीं है। ऐसी हालत मे तुम धर्मबन्धन को तोड़कर किसी समाज मे कैसे प्रवेश करोगे, यह मेरी समझ मे नहीं आता।

ललिता इस बात को अच्छी तरह न समझ सकी, क्योंकि दूसरे समाज के व्यवहार से अपने समाज मे अन्तर क्या है, यह उसने किसी दिन नहीं सोचा। उसकी धारणा थी कि आचार-व्यवहार मे किसी समाज से किसी समाज की अधिक विभिन्नता नहीं होती। विनय के साथ उसकी विभिन्नता जैसे अनुभव मे नहीं आती, वैसे ही समाज समाज मे भी ऐसा ही होता होगा। वास्तव मे हिन्दू-विवाह के सदनुष्ठान मे उसके लिए कोई विशेष बाधा या असुविधा है, यह वह न जानती थी।

विनय ने कहा—शालग्राम को साक्षी रखकर हम लोगो का विवाह होता है। क्या आप यही बात कह रहे हैं?

परेश बाबू ने ललिता की ओर एक बार देखकर कहा—हाँ। क्या ललिता यह स्वीकार करेगी?

ललिता के मुँह की ओर देखकर विनय समझ गया कि ललिता का अन्तःकरण संकुचित हो उठा है।

ललिता हृदय के आवेग से एक ऐसे स्थान मे आ पड़ी है जो उसके लिए बिलकुल अपरिचित और सङ्कटमय है। इससे विनय के मन मे अत्यन्त दया का भाव उपज आया। वह ललिता को किसी तरह इस आपत्ति से बचाने का उपाय ढूँढ़ने लगा।

ललिता सिर नीचा करके कुछ देर बैठी रही। इसके बाद एक बार सिर उठाकर, सकरुण दृष्टि से विनय की ओर देखकर, बोली—क्या आप सचमुच हृदय से शालग्राम को मानते हैं?

विनय ने तुरन्त कहा—नही मानता हूँ। शालग्राम मेरे लिए देवता नही, वह मेरे लिए एक सामाजिक चिह्न है।

ललिता—जिसको आप मन ही मन सामाजिक चिह्न समझते है, उसे क्या बाहर से देवता मानना ही होगा?

विनय ने परेश बाबू की ओर देखकर कहा—शालग्राम को न रखने से भी काम चल सकता है।

परेश ने कुरसी से उठकर कहा—विनय, तुम लोग सब बाते अच्छी तरह सोच-विचारकर नही देखते। यह बात केवल तुम्हारा या किसी का मतामत समझकर नही होती। विवाह केवल व्यक्तिगत नही, यह एक सामाजिक कार्य है। इस बात को भुला देने से कैसे काम चलेगा? तुम दोनो

कुछ और समय लेकर भली भाँति सोच देखो; झटपट कोई सिद्धान्त स्थिर न कर डालो।—यह कहकर वे कोठे से निकलकर बाग़ की ओर चले गये और वहाँ अकेले इधर-उधर घूमने लगे।

ललिता भी बरामदे से बाहर जाने का उपक्रम कर ज़रा ठहर गई और विनय की ओर पीठ करके बोली—हम लोगो का सङ्कल्प यदि अन्याययुक्त न हो और वह सङ्कल्प यदि किसी एक समाज के नियम से न मिलता हो तो हम लोग सिर नीचा करके सङ्कल्प से मुँह मोड़ ले, यह उचित नहीं। समाज मे मिथ्या व्यवहार को स्थान है और न्यायसङ्गत आचरण को स्थान नहीं ?

विनय धीरे-धीरे ललिता के पास आकर, खडा होकर, बोला—मैं किसी समाज से नहीं डरता। हम दोनो मिलकर यदि सत्य के आश्रयवर्ती हों तो हमारे समाज के ऐसा वड़ा समाज और कहाँ मिलेगा ?

इसी समय शिवसुन्दरी न मालूम किधर से तूफ़ान की तरह उन दोनों के सामने आकर बोली—विनय, सुना है कि तुम दीक्षा न लोगे ?

विनय—मै उपयुक्त गुरु से दीक्षा लूँगा, किसी समाज से नहीं।

शिवसुन्दरी ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा—तुम लोगो के इस प्रपञ्च और प्रवञ्चना का अर्थ क्या है ? दीक्षा लेने का

बहाना करके तुमने दो दिन तक मुझे और ब्राह्म-समाज के लोगों को भुलावे में डालकर यह क्या किया ? क्या तुम ललिता का सर्वनाश करनेवाले हो ?—क्या यह बात तुमने एक बार भी सोचकर नहीं देखी ?

ललिता ने कहा—विनय बाबू की दीक्षा में तुम्हारे ब्राह्म-समाजियों की तो कोई सम्मति नहीं है। तुमने समाचार-पत्र में पढ़ा ही होगा। ऐसी दीक्षा लेने की ज़रूरत ?

शिवसुन्दरी—दीक्षा न लेने से ब्याह कैसे होगा ?

ललिता—क्यों न होगा ?

शिवसुन्दरी—क्या हिन्दू-मत से ?

विनय—हाँ, हो सकता है। उसमें जो कुछ अड़चनें हैं उन्हें मैं दूर कर दूँगा।

शिवसुन्दरी के मुँह से कुछ देर तक कोई बात न निकली। इसके बाद उसने रुँधे कण्ठ से कहा—विनय ! जाओ, तुम चले जाओ; यहाँ फिर कभी मत आना।

[६०]

सुशीला जानती थी कि गौरमोहन आज आवेगा। सबेरे से ही उसका कलेजा धड़क रहा था। सुशीला के मन में गौरमोहन के आगमन की प्रत्याशा के आनन्द के साथ-साथ कुछ भय भी मिला हुआ था। गौरमोहन उसे जिस ओर खींच रहा था, और बालपन से उसका जीवन-वृक्ष अपनी जड़ और

डाल-पात लेकर जिस ओर फैल रहा था, इन दोनों के बीच पड़कर वह घबरा रही थी। मैं अपना पैर किस ओर बढ़ाऊँ, यह उसकी समझ मे न आता था।

कल जब उसकी मौसी के घर मे गौरमोहन ने ठाकुरजी को प्रणाम किया तब सुशीला के मन मे यह बात बेतरह खटकी। गौरमोहन ने प्रणाम तो किया ही है, क्या उसका विश्वास भी ऐसा ही है, या उसने ऊपर के मन से प्रणाम किया है? इस बात को बारंबार सोचकर वह किसी तरह अपने मन को शान्त न कर सकी।

जब वह गौरमोहन के आचरण मे किसी जगह अपने धर्म-विश्वास का मूलगत विरोध देखती थी तब उसका हृदय भय से काँप उठता था। ईश्वर ने उसे किस झमेले मे डाल दिया है!

हरिमोहिनी नव्यमताभिमानिनी सुशीला को दृष्टान्त दिखाने के लिए आज भी गौर को अपने ठाकुरजी के कमरे मे ले गई। आज भी गौरमोहन ने ठाकुरजी को प्रणाम किया।

सुशीला के कमरे मे गौरमोहन ने ज्योंही पैर रक्खा त्योंही सुशीला ने पूछा—क्या आप इस मूर्ति की भक्ति करते हैं?

गौरमोहन ने एक अस्वाभाविक बल के साथ कहा—हाँ, भक्ति करता हूँ।

यह सुनकर सुशीला सिर नवाकर चुप हो रही। उसकी इस नम्र नीरव वेदना से गौरमोहन के मन मे कुछ चोट लगी। वह झट बोल उठा—देखो, मैं तुमसे सच कहता हूँ।

मैं ठाकुरजी की भक्ति करता हूँ या नहीं, यह ठीक-ठीक नहीं कह सकता। किन्तु मैं अपनी देश-भक्ति की भक्ति करता हूँ। इतने दिनो से समस्त देश की पूजा जहाँ पहुँचती है, वही स्थान मेरे लिए पूज्य है। मैं किरिस्तान पादरी की भाँति वहाँ किसी तरह विपदृष्टि नहीं डाल सकता।

सुशीला मन ही मन कुछ सोचती हुई गौरमोहन के मुँह की ओर देखती रही। गौरमोहन ने कहा—मेरी बात को ठीक-ठीक समझना तुम्हारे लिए बड़ा कठिन है, यह मैं जानता हूँ। क्योंकि लगातार इतने दिनो तक एक सम्प्रदाय के भीतर होने से इन सब विषयों पर सहज दृष्टिपात करने की तुम्हारी शक्ति चली गई है। जब तुम अपनी मौसी के घर मे ठाकुरजी को देखती हो तब तुम केवल पत्थर को ही देखती हो। लेकिन मैं तुम्हारी मौसी के भक्तिपूर्ण हृदय को ही देखता हूँ। उसे देखकर क्या मैं कभी क्रोध कर सकता हूँ या अपमान कर सकता हूँ? क्या तुम समझती हो कि यह हृदय का देवता पत्थर का देवता है?

सुशीला—तो क्या भक्ति करने से ही हो गई? किसकी भक्ति की जाती है, इसका भी तो कुछ विचार करना चाहिए।

गौरमोहन ने कुछ उत्तेजित होकर कहा—तुम समझती हो कि एक सीमा-बद्ध पदार्थ को ईश्वर मानकर पूजा करना भ्रम है। किन्तु केवल देश-काल की ही ओर से क्या सीमा निर्दिष्ट करनी पड़ेगी? मान लो, ईश्वर के सम्बन्ध मे शास्त्र

का कोई एक वाक्य स्मरण करने से तुमको बड़ी भक्ति होती है, तो वह वाक्य जिस पन्ने मे लिखा है उसी पन्ने की लम्बाई चौड़ाई मापकर और उसके अक्षरो को गिनकर ही क्या तुम उस वाक्य के महत्त्व को स्थिर करोगी ? भाव की असीमता विस्तृत पदार्थ की असीमता से कही बढ़कर है। चन्द्र, सूर्य और तारो से खचित अनन्त आकाश की अपेक्षा तुम्हारी मौसी के ये ठाकुरजी अधिक विशाल है। माप मे जो बड़ा है उसी को तुम बड़ा समझती हो, इसी कारण ऑख मूँदकर तुमको असीम पदार्थ की बात सोचनी पड़ती है। मै नही जानता कि इससे कोई फल मिलता है या नही। किन्तु हृदय की असीमता, ऑखे खुली रहने पर भी, इस छोटे से पदार्थ के ही भीतर पाई जाती है। यदि वह न पाई जाती तो जब तुम्हारी मौसी का सब संसारी सुख नष्ट हो गया तब उसने इन ठाकुरजी को ही इस प्रकार क्यो गह लिया ? हृदय की इतनी बड़ी शून्यता क्या पत्थर के एक टुकड़े से भरी जा सकती है ? भाव की असीमता न होने से मनुष्य के हृदय की शून्यता नही हटती।

ऐसे सूक्ष्म विचार का उत्तर देना सुशीला के साध्य से बाहर था। और इसको सत्य मान लेना भी एक तरह उसके लिए असम्भव था। इसलिए उसके मन मे उत्तर न देने का दुःख होने लगा।

विरुद्ध दल के साथ तर्क करते समय गौरमोहन के मन मे कभी इतनी दया का सञ्चार न होता था बल्कि इस विषय

में शिकारी जानवर की तरह उसके मन मे एक कठोर हिंस्रता थी। किन्तु आज सुशीला को इस प्रकार निरुत्तर होते देख उसका मन न मालूम क्यों व्यथित होने लगा। उसने अपने कण्ठ-स्वर को कोमल करके कहा—मैं तुम्हारे धर्म-मत के विरुद्ध कोई बात कहना नहीं चाहता। मेरी बात केवल यही है कि तुम जिसे ठाकुरजी कहकर निन्दा करती हो वे ठाकुरजी इस चर्म-चक्षु से देखने की वस्तु नहीं और न उन्हे यों देख-कर कोई जान ही सकता है। उनकी भक्ति से जिसका मन स्थिर हुआ है, हृदय तृप्त हुआ है, और जिसका चरित्र शुद्धता को प्राप्त हुआ है, वही जानता है कि ठाकुरजी मृत्तिकामय हैं या चिन्मय, ससीम हैं या असीम। मैं तुमको विश्वास दिलाता हूँ, सच जानो, हमारे देश का कोई भक्त ससीम की पूजा नहीं करता। सीमा के भीतर असीम को ले आना ही उनकी भक्ति का वास्तविक आनन्द है।

सुशीला ने कहा—सभी तो भक्त नहीं होते।

गौर—जो भक्त नहीं है वह पूजा किसकी करेगा! और उससे किसका क्या सम्बन्ध है? ब्राह्म-समाज मे जो लोग भक्तिहीन हैं वे क्या करते है? उनकी सारी पूजा अगाध शून्यता मे जा गिरती है। नहीं नहीं; शून्यता से भी वह स्थान अत्यन्त भयानक है। पक्षपात ही उनका देवता है, अहङ्कार ही उनका पुरोहित है। इस रक्त-शोषक देवता की पूजा क्या तुमने अपने समाज मे कभी नहीं देखी?

इस बात का कोई उत्तर न देकर सुशीला ने गौरमोहन से पूछा—आपने धर्म-सम्बन्ध मे जो ये बातें कही हैं, सो क्या आपने अपनी अभिज्ञता के द्वारा जानकर कही है ?

गौरमोहन ने मुस्कुराकर कहा—अर्थात् तुम जानना चाहती हो कि मैंने कभी ईश्वर को देखा है या नही ? नही, मेरा मन उस ओर जाता ही नही।

यद्यपि सुशीला के लिए यह बात प्रसन्नता देनेवाली न थी, तो भी उसका मन कुछ स्वस्थ हुआ। इस विषय मे गौर-मोहन को ज़ोर देकर कोई बात कहने का अधिकार नही है। इससे वह एक प्रकार से निश्चिन्त हुई।

गौर ने कहा—मै किसी को धर्मशिक्षा दे सकूँ ऐसी योग्यता मुझमे नही है; किन्तु मेरे देश के लोगो की भक्ति पर तुम लोग हँसो, इसे मैं कभी नही सह सकूँगा। तुम अपने देश के लोगो से पुकारकर कहती हो,—तुम मूर्ख हो, मूर्ति-पूजक हो; मैं उन सभों को बुलाकर जताना चाहता हूँ कि नही, तुम मूर्ख नहीं हो, तुम पौत्तलिक नही हो, तुम ज्ञानी हो, तुम भक्त हो। हम लोगों के धर्मतत्त्व मे जो महत्त्व है, भक्तितत्त्व मे जो गम्भीरता है, उस पर श्रद्धा-प्रकाश के द्वारा मैं अपने देश के हृदय को जाग्रत करना चाहता हूँ। जहाँ उसकी सम्पत्ति है, वहीं उसके गौरव को मैं स्थापित करना चाहता हूँ। मै अपने देश-वासियों का सिर नीचा होने न दूँगा। यही मेरा प्रण है। तुम्हारे पास भी आज मैं इसी लिए आया हूँ। जब

से मैंने तुमको देखा है तबसे एक नई बात मेरे मन मे अनुभूत हुई है। इतने दिन तक मैं उस बात को न सोचता था। अब मैं समझता हूँ कि केवल पुरुष की दृष्टि से ही भारतवर्ष पूर्ण रूप से देखा नहीं जायगा। हमारे देश की स्त्रियों की दृष्टि जिस दिन उस पर पड़ेगी उसी दिन उसका देखना सफल होगा। तुम्हारे साथ एक-दृष्टि से मैं अपने देश को कब देखूँगा, यह उत्कट इच्छा मेरे मन को जला रही है। अपने भारतवर्ष के लिए हम अकेले मरने को तैयार हैं, किन्तु बिना तुम्हारी सहायता के उसका अन्धकार पूरे तौर से दूर न हो सकेगा। अगर तुम उससे दूर रहोगी तो भारतवर्ष की सेवा जैसी चाहिए, न होगी।

हाय! कहाँ वह भारतवर्ष था! कहाँ कितनी दूर पर यह सुशीला थी! कहाँ से भारतवर्ष का यह साधक आ पड़ा। यह भाव मे भूला हुआ साधक सबको हटाकर क्यो इसी के पास आ खड़ा हुआ! सबको छोड़कर क्यों उसने इसी को पुकारा! कोई सन्देह न किया, कोई बाधा न मानी। कहा, तुम्हारे न रहने से काम न चलेगा। मैं तुमको लेने ही के लिए आया हूँ। तुम्हारे दूर रहने से यज्ञ पूरा न होगा। सुशीला की आँखों से आँसुओ की धारा बह चली। क्यों बह चली, यह वह समझ न सकी।

गौरमोहन ने सुशीला के मुँह की ओर देखा। उस दृष्टि के सामने सुशीला ने अपनी आँसू-भरी आँखे नीचे न की।

ओस-कण से भरे हुए कमल-पुष्प की भाँति वे आँखें आत्म-विस्मृत भाव में गौरमोहन के मुँह की ओर विकसित हो रहीं।

सुशीला के सङ्कोच-हीन संशय-विहीन अश्रुपूर्ण नेत्रों के सामने, गौरमोहन का पोढ़ा हृदय इस प्रकार हिलने लगा जैसे भूकम्प से पत्थर का कोठा हिल जाता है। गौरमोहन सारा मानसिक बल लगाकर अपने को रोक रखने के लिए मुँह फिराकर खिड़की की ओर देखने लगा। तब साँझ हो गई थी। अन्धकार से भरे आकाश में कहीं-कहीं तारे उग आये थे। वह आकाश, वे कई एक तारे, आज गौरमोहन के मन को कहाँ ले गये। संसार के सब अधिकारों से, इस पृथिवी के दैनिक नियत कर्म्मपथ से, कितनी दूर। राज्य-साम्राज्य के कितने ही उत्थान-पतन, युग-युगान्तर के कितने ही प्रयास और प्रार्थना, इन सबको अति-क्रम कर यह आकाश और ये तारे निर्लिप्त होकर भविष्य की अपेक्षा कर रहे हैं। कितने ही भविष्य को उदरस्थ कर इन्होंने भूतकाल बना डाला है, तो भी ये जैसे के तैसे पड़े हैं। इनका पेट ख़ाली का ख़ाली पडा है। जब इस अतल-स्पर्शी अगाध गाम्भीर्य के भीतर से एक हृदय अन्य हृदय को बुलाता है, तब गुप्त मानसिक संसार की वह वाक्यहीन व्याकुलता मानों इस दूर आकाश और दूरवर्ती तारों को कँपा देती है। कार्य-रत कलकत्ते की सड़क पर गाड़ी, घोड़े और पथिकों का आना-जाना इस घड़ी गौरमोहन की आँखों में

छाया-चित्र की भाँति अपदार्थ हो गया। शहर का गुल-गपाड़ा उसे कुछ सुन न पड़ा। उसने अपने हृदय की ओर ध्यानस्थ होकर देखा—वह भो इस आकाश की भाँति स्थिर, शून्य और अँधेरा था। केवल वहाँ दो निर्निमेष सजल नेत्र मानों अनादि काल से अनन्त काल की ओर करुण भाव से देख रहे हैं। गौरमोहन के उस विशाल हृदय के भीतर इन दोनों नेत्रों के सिवा इस समय और कुछ नही है।

हरिमोहिनी का कण्ठस्वर सुन गौरमोहन चौंक पड़ा और मुँह फिराकर घर की ओर देखने लगा।

हरिमोहिनी ने कहा—बेटा, कुछ मुँह मीठा करके जाना।

गौरमोहन झट बोल उठा—आज नही, आज मुझे माफ़ कीजिए, मैं अभी जाता हूँ।

यह कहकर गौरमोहन और किसी बात की अपेक्षा न करके बड़ी तेज़ी से चला गया।

हरिमोहिनी ने विस्मित होकर सुशीला के मुँह की ओर देखा। सुशीला कोठे से बाहर चली गई। हरिमोहिनी सिर हिलाकर सोचने लगी, फिर यह क्या मामला देखती हूँ।

कुछ ही देर बाद परेश बाबू आ गये। सुशीला के कमरे मे उसको न देख हरिमोहिनी से उन्होने पूछा—राधारानी कहाँ है?

हरिमोहिनी ने रूखे स्वर से कहा—क्या जाने। इतनी देर तक तो गौरमोहन के साथ बैठक मे बातें हो रही थी।

मालूम होता है, अब छत के ऊपर अकेली हवा खाने को गई है।

परेश बाबू ने अचम्भे के साथ पूछा—इस ठण्डक मे इतनी रात गये छत पर घूमने गई है ?

हरिमोहिनी—कुछ ठण्डक होनी ही ठीक है। आज-कल की लड़कियों को शीत से कोई अपकार नहीं होता।

हरिमोहिनी का जी आज ठिकाने नहीं था, इसी से उसने क्रुद्ध होकर सुशीला को भोजन करने के लिए नहीं बुलाया। सुशीला को भी आज समय का ज्ञान न रहा।

एकाएक परेश बाबू को स्वयं छत के ऊपर आते देख सुशीला अत्यन्त लज्जित हो गई। उसने कहा—चलिए, आप नीचे चलिए। यहाँ आपको ठण्ड लगेगी।

घर मे आकर दिये की रोशनी मे परेश बाबू का उदास चेहरा देखकर सुशीला के मन मे बडा दुःख हुआ। इतने दिन तक जो पितृ-हीना के पिता और गुरु थे, उनके पास से आज सुशीला को कौन बलात् खींचे लिये जा रहा है! सुशीला अपनी इस दुर्बलता को किसी तरह नहीं सह सकी। उसकी छाती ग्लानि से टूक-टूक हो फटने लगी। परेश बाबू के क्लान्त भाव से कुरसी पर बैठने के बाद सुशीला, अपनी आँखों के आँसुओ को छिपाने के अभिप्राय से, उनकी कुरसी के पीछे खड़ी हो धीरे-धीरे उनके पके केशो पर हाथ रखकर उनकी बाते सुनने की प्रतीक्षा करने लगी।

परेश ने कहा—विनय अब दीक्षा न लेगा।

सुशीला कुछ न बोली। परेश ने कहा—विनय के दीक्षा लेने के प्रस्ताव पर मुझे पूरा सन्देह था, इसी से मैं उसके अस्वीकार करने से कुछ विशेष क्षुब्ध नहीं हुआ। किन्तु ललिता की बात के ढङ्ग से मालूम हुआ है कि दीक्षा न लेने पर भी विनय के साथ ब्याह करने मे उसे कोई बाधा नही दिखाई देती।

सुशीला हठात् खूब ज़ोर से बोल उठी—नहीं, यह कभी नहीं होगा।

बातचीत मे सुशीला अनायास व्यग्रता प्रकट नहीं किया करती—इसी लिए उसके कण्ठस्वर मे इस आकस्मिक आवेग की प्रबलता देख परेश ने अचम्भे के साथ पूछा—क्या नहीं होगा?

सुशीला—विनय के ब्राह्म न होने से ब्याह कैसे होगा?

परेश—हिन्दू-मत से।

सुशीला ने सिर हिलाकर कहा—नही, नहीं, आज-कल ये क्या बातें हो रही है। ऐसी बात मन मे आने देना भी उचित नहीं। क्या अन्त में शालग्राम पूजकर ललिता का ब्याह होगा? यह मैं किसी तरह होने न दूँगी।

गौरमोहन ने सुशीला के मन को अपनी ओर खींच लिया है, कोई यह न कहे, इसलिए आज वह हिन्दू-मत से विवाह की बात पर एक अस्वाभाविक आक्षेप प्रकट कर रही है। इस आक्षेप के भीतर की असल बात यही है जिससे परेश बाबू समझें कि सुशीला उनको छोड़ कहीं न जायगी। वह

अब भी उनके समाज का, उनके मत का, उनके उपदेश का उल्लङ्घन न करेगी। वह उनके शिक्षा-रूपी बन्धन को किसी तरह तोड न सकेगी।

परेश ने कहा—विवाह के समय शालग्राम को साक्षी रूप मे न रखने को विनय राज़ी हो गया है।

सुशीला परेश बाबू के पीछे से उनके सामने आकर एक कुरसी पर बैठ गई। परेश ने पूछा—इसमे तुम क्या कहती हो?

सुशीला कुछ सोचकर बोली—तो हमारे समाज से ललिता को निकल जाना पड़ेगा?

परेश—इसके विषय मे मुझे बहुत चिन्ता करनी पड़ी है। किसी मनुष्य के साथ जब समाज का विरोध हो तब दो बातें सोचनी पड़ती हैं। दोनो दलो मे न्याय किस ओर है, और दोनो मे प्रबल कौन है। समाज की प्रबलता मे तो सन्देह ही नही हो सकता, अतएव विद्रोही को दुःख झेलना पड़ेगा। ललिता बार-बार मुझसे कहती है कि 'मैं केवल दुःख सहने को ही तैयार नही हूँ वरन् इसमे आनन्द का अनुभव भी कर रही हूँ।' यदि यह बात सत्य हो और इसमे कोई अन्याय न पाया जाय तो मैं उसे क्यों रोकूँ?

सुशीला—पिताजी, यह कैसे होगा?

परेश—मैं जानता हूँ कि इसमे कोई न कोई सङ्कट अवश्य उपस्थित होगा। किन्तु ललिता के साथ विनय के ब्याह मे जब कुछ दोष नहीं, वरन् ब्याह होना ही उचित है, तब यदि

समाज मे विग्रह उपस्थित हो तो उस विग्रह को हम विग्रह नहीं मानेंगे। मनुष्य को समाज के दबाव मे पड़कर कर्तव्य से संकुचित हो रहना ठीक नहीं। मनुष्य का कर्तव्य सोच-कर समाज को ही अपनी स्थिति सुधारनी चाहिए। इस कारण जो लोग दुःख स्वीकार करने को राज़ी हैं, मैं उनकी निन्दा नहीं कर सकता।

सुशीला ने कहा—इसमे तो सबसे बढ़कर आप ही को दुःख स्वीकार करना होगा।

परेश—यह बात सोचने की नहीं है।

सुशीला ने पूछा—तो क्या आपने सम्मति दे दी है?

परेश ने कहा—नहीं, अभी तो नहीं दी है किन्तु देनी ही होगी। ललिता जिस मार्ग मे जा रही है, उस मार्ग मे मुझे छोड़ कौन उसे आशीर्वाद देगा और ईश्वर को छोड़ उसका सहायक कौन होगा?

परेश बाबू जब चले गये तब सुशीला स्थिर होकर बैठी रही। वह जानती थी कि परेश बाबू ललिता को हृदय से कितना प्यार करते हैं। वही ललिता नियत मार्ग को छोडकर एक अपरिचित मार्ग से चलने को तैयार हो गई है। इससे उनका मन कितना व्याकुल हो रहा है, यह समझने मे उसको कुछ कठिनाई न रही।

पहले परेश बाबू की प्रकृति का यह परिचय उसे विचित्र न लगता था, क्योंकि वह उनको बचपन से ही देखती आती है।

किन्तु आज कुछ देर पूर्व वह गौरमोहन बाबू के तर्क-वाद की चोट खाकर हतज्ञान हो गई थी, इस कारण इन दो श्रेणियों के स्वभावो की विभिन्नता को वह स्मरण किये बिना न रह सकी। गौरमोहन की इच्छा बहुत ही प्रबल है, उस इच्छा का प्रयोग बलपूर्वक करके वह दूसरे को कैसे अभिभूत कर डालता है! गौरमोहन से चाहे जो कोई जैसा सम्बन्ध जोड़े, लेकिन उसकी इच्छा के आगे उसे झुकना ही पड़ेगा। सुशीला भी आज विनत हुई है और विनत होकर उसने आनन्द पाया है। वह आत्म-समर्पण कर एक बड़ी रक़म हाथ आने का अनुभव कर रही थी, तो भी जब परेश बाबू आज उसके उजेले घर से चिन्ता का भार सिर पर लिये धीरे-धीरे बाहर के अन्धकार मे चले गये तब यौवन-तेज से भरे हुए गौर-मोहन के साथ विशेष रूप से स्पर्धा करके सुशीला ने हृदय की भक्ति-पुष्पाञ्जलि बड़े भाव से परेश बाबू के चरणों मे अर्पण की और हाथ जोड़कर बड़ी देर तक शान्तचित्त हो चित्रवत् बैठी रही।

[६१]

आज सवेरे से गौरमोहन के घर ख़ूब धूमधाम है। पहले महिम ने हुक्का पीते-पीते वहाँ आकर गौर से पूछा—मालूम होता है, इतने दिन बाद विनय ने अपना बन्धन काट डाला?

गौरमोहन की समझ मे यह बात न आई। वह भाई के मुँह की ओर देखने लगा। महिम ने कहा—मेरे आगे कपट करने से क्या होगा? तुम्हारे मित्र की बात तो अब छिपी नहीं रही। सर्वत्र डङ्का पिट गया। यह देखो न।

यह कहकर महिम ने गौरमोहन के हाथ मे एक समाचारपत्र दिया। उसमे रविवार को विनय के ब्राह्म-समाज मे दीक्षा लेने की बात ख़ूब बढ़ा-चढ़ाकर छापी गई थी। गौरमोहन जब जेल मे था उस समय ब्राह्म-समाज के किसी प्रधान सभ्य ने कन्यादान की इच्छा से इस दुर्बल-हृदय युवक को गुप्त प्रलोभन से वश मे करके सनातन हिन्दू-समाज से निकाल लिया है। लेखक ने अपने निबन्ध मे ब्राह्म-समाज पर विशेष रूप से कटु भाषा का प्रवर्षण किया है।

गौरमोहन ने जब कहा—मै यह हाल नही जानता तब महिम ने पहले उसके इस कथन पर विश्वास नहीं किया। पीछे वह विनय के इस गहरे कपट व्यवहार पर बार-बार आश्चर्य करने लगा, और चलते समय कह गया कि स्पष्ट वाक्य से शशिमुखी के ब्याह मे सम्मति देकर उसके बाद जब विनय अपनी सम्मति बदलने लगा था तभी हमको समझ लेना चाहिए था कि उसके सर्वनाश का आरम्भ हो गया है।

अविनाश हाँफते-हाँफते आकर बोला—गौरमोहन बाबू, यह क्या! जिसका कभी स्वप्न मे भी अनुभव न हुआ था विनय बाबू ने आख़िर—

अविनाश अपने कथन को पूरा भी नहीं कर सका। विनय की इस लाञ्छना से उसको इतना हर्ष हो रहा था कि इस पर कृत्रिम खेद करना उसके लिए कठिन हो पड़ा।

देखते-देखते गौरमोहन के दल के प्रधान-प्रधान सभी लोग आ जुटे। विनय के विषय मे उन सभो मे खूब उत्तेजना-पूर्ण आलोचना होने लगी। अधिकांश लोग एकमत से बोले—इस घटना मे आश्चर्य की कोई बात नहीं। कारण यह कि विनय के व्यवहार मे बराबर एक दुबिधा और दुर्बलता का लक्षण दिखाई देता आया है। वास्तव मे हमारे दल मे विनय ने कभी मनसा वाचा कर्मणा आत्म-समर्पण नहीं किया। बहुतों ने कहा—'विनय आरम्भ से ही अपने को किसी तरह गौरमोहन बाबू के बराबर धर्मनिष्ठ बनाने की चेष्टा करता था और यह बात हमे न सुहाती थी।' और लोग जहाँ भक्ति का सङ्कोच रहने के कारण गोरा से यथोचित दूर रहते थे वहाँ विनय ज़बर्दस्ती उससे ऐसा लिपटा रहता मानो वह सर्वसाधारण से भिन्न है और गौर का समकक्ष है, गौर विनय को चाहता था इसलिए सब लोग उसकी इस स्पर्द्धा को सह लेते थे—इस प्रकार के बे-रोक-टोक अहङ्कार का यही परिणाम हुआ करता है।

उन लोगो ने कहा—हम लोग विनय के सदृश विद्वान् नहीं हैं, हम लोगो मे अत्यधिक बुद्धि भी नहीं है, किन्तु भैया हम लोग एक आदर्श को मानकर चलते हैं। आचार्य ने जो पथ दिखा दिया है उसे छोड़ नहीं सकते। हम लोगो के जो

मन मे है वह मुँह मे है। हम आज कुछ करें और कल कुछ, यह हम लोगों से नही हो सकता। इससे भले ही हम लोगो को कोई मूर्ख कहे, निर्बोध कहे, चाहे जो कहे।

गौरमोहन ने इन बातो मे कुछ योग न दिया। वह चुपचाप शान्त बैठा रहा।

जब सब लोग एक-एक कर चले गये, तब गौरमोहन ने देखा कि विनय उसके कमरे मे न आकर ज़ीने से ऊपर जा रहा है। इससे गौरमोहन ने झट कोठे से निकल उसे पुकारा—विनय !

विनय ज़ीने से उतरकर गौरमोहन के कोठे मे आया। गौरमोहन ने कहा—विनय बाबू ! मैं नहीं जानता कि मैंने तुम्हारे साथ, बिना जाने, क्या अन्याय किया है जो तुमने मुझे एकाएक इस तरह परित्याग कर दिया है।

आज गौरमोहन के साथ कुछ न कुछ विवाद अवश्य होगा, यह बात विनय पहले ही से सोचकर दिल को मज़बूत करके ही आया था। जब विनय ने गौरमोहन का मुँह उदास देखा, और उसके कण्ठस्वर मे स्नेह-जनित वेदना का अनुभव किया तब वह मन को जिस कठोरता का कवच पहिनाकर लाया था, वह कवच एक ही पल मे टुकड़े-टुकड़े हो उड़ गया।

वह बोल उठा—भाई गौरमोहन, तुमने समझने मे भूल की है। जीवन मे अनेक परिवर्तन होते हैं, कितनी ही वस्तुओं का त्याग करना पड़ता है। किन्तु इससे मैं मित्रत्व को क्यों छोड़ूँगा ?

गौरमोहन ने ज़रा ठहरकर कहा—विनय, क्या तुमने ब्राह्म-धर्म की दीक्षा ले ली है ?

विनय—नही, न ली है और न लूँगा। किन्तु इसके ऊपर मैं कोई ज़ोर देना भी नही चाहता।

गौर—इसका अर्थ ?

विनय—इसका अर्थ यही कि मैंने ब्राह्म-धर्म की दीक्षा ली या न ली, इस बात को मैं अब बहुत बढ़ाना नही चाहता।

गौर—तुम्हारे मन का भाव पहले कैसा था और अब कैसा है ? यह बताओ।

गौरमोहन की बात सुनकर विनय सँभल बैठा और बोला—पहले जब मैं सुनता था कि कोई ब्राह्म होने जाता है तब मेरे मन मे बड़ा क्रोध होता था और मै चाहता था कि उसे पूरा दण्ड दिया जाय। किन्तु मैं अब ऐसा नही चाहता। मैं यही चाहता हूँ कि मत को मत से और युक्ति को युक्ति से ही दबाना चाहिए, किन्तु ज्ञान के विषय को क्रोध से दण्ड देना मूर्खता है।

गौरमोहन—हिन्दू को ब्राह्म होते देख अब तुम्हे क्रोध न होगा, किन्तु ब्राह्म को प्रायश्चित्त करके हिन्दू-समाज मे मिलते देख तुम्हारा सर्वाङ्ग क्रोध से जल उठेगा। क्या पूर्व-दशा के साथ तुम्हारा यही अन्तर हुआ है ?

विनय—यह तुम मेरे ऊपर क्रोध करके कहते हो, विचार-कर नही।

गौर—मैं तुम पर श्रद्धा करके ही कहता हूँ। ऐसा ही होना उचित है। मैं भी होता तो ऐसा ही करता। बहुरुपिया जैसे रङ्ग बदलता है, वैसे ही यदि धर्म-मत का ग्रहण और त्याग हमारे चमड़े के ऊपर का रङ्ग ही होता तो कोई बात न थी। किन्तु वह हृदय का पक्का रङ्ग है, उसे किसी तरह बदल नहीं सकते। सत्य को यथार्थ सत्य रूप मे ग्रहण किया है या नहीं; मनुष्य को उसी की परीक्षा देनी चाहिए। परीक्षा में फ़ेल हो जाने से दण्ड स्वीकार करना ही होगा। सत्य का कारबार ऐसा नहीं कि बिना मूल्य के कोई रत्न पा सके।

गौरमोहन और विनय दोनों में बड़ी देर तक यों ही बहस चलती रही। दोनों अपनी युक्ति द्वारा एक दूसरे को दबाने की चेष्टा करने लगे।

आख़िर बड़ी देर तक वाग्-युद्ध होने के अनन्तर विनय ने खड़े होकर कहा—गौर बाबू, तुम्हारे और मेरे स्वभाव मे एक मूलगत अन्तर है। वह इतने दिनों से छिपा था—जब-जब वह उत्पन्न होने लगा तब-तब मैंने उसे दबा रक्खा क्योंकि मै जानता हूँ कि जहाँ तुम कुछ प्रभेद देखते हो वहाँ सन्धि करना नहीं जानते। तुम एकाएक तलवार के हाथ पिल पड़ते हो। इसी से तुम्हारे मित्रत्व की रक्षा करने के लिए मै बहुत दिनों से ही अपने स्वभाव को दबाता आया हूँ। आज मै समझ गया हूँ कि इससे न कोई फल हुआ और न हो सकता है।

गौर—अब तुम्हारा क्या मतलब है, सो खोलकर कहो।

विनय—मैं आज से अकेला ही रहूँगा। समाज की राक्षसी प्रकृति के आगे प्रतिदिन मनुष्य-बलि देकर किसी तरह उसे शान्त रक्खे और जैसे हो उसी की शासन-रूपी रस्सी गले मे बाँधकर बन्दर की तरह नाचे, जिससे प्राण जायँ या रहे, यह मैं किसी तरह स्वीकार न करूँगा।

गौरमोहन—क्या महाभारत के उस ब्राह्मण-बालक की भाँति तिनका लेकर बकासुर को मारने के लिए घूमोगे?

विनय—मेरे तिनके से बकासुर मरेगा या नही, यह मैं नही जानता, किन्तु मुझको चबाकर खा डालने का अधिकार उसे है, यह बात मैं किसी तरह न मानूँगा—जब वह चबाकर खा रहा हो तब भी नही।

गौर—तुम्हारी यह रूपकालङ्कार की बाते समझना कठिन है।

विनय—समझना तुम्हारे लिए कठिन नहीं, मानना अवश्य कठिन है। मनुष्य को जहाँ स्वभावतः और धर्मतः स्वाधीन होना चाहिए वहाँ भी हमारे समाज ने उसे खाने, पीने, सोने और बैठने के नितान्त अर्थहीन बन्धन से बाँध रक्खा है, यह बात तुम मुझसे कम नही जानते। किन्तु जबरदस्ती की बात तुम ज़बरदस्ती से ही मानोगे। आज मैं तुमसे सच कह रहा हूँ, यहाँ मैं किसी का ज़ोर न मानूँगा। समाज के दावे को भी तभी तक मानूँगा जब तक

वह मेरी उचित प्रार्थना की रक्षा करेगा। वह यदि मुझे मनुष्य न समझ कठपुतली बनाकर रखना चाहेगा तो मैं भी उसकी पूजा फूल-चन्दन से न करूँगा—मैं भी उसे एक लोहे की कल समझूँगा।

गोरा—थोड़े मे कह डालो, तुम ब्राह्म होगे?

विनय—नहीं।

गौर—ललिता से ब्याह करोगे?

विनय—हाँ।

गौर—हिन्दू-पद्धति से?

विनय—हाँ।

गौर—परेश बाबू की राय है?

विनय—यह उनकी चिट्ठी देख लो।

गौरमोहन ने परेश की चिट्ठी दो मर्तबा पढ़ी। उसके अन्त मे यही लिखा था—"मैं अपनी पसन्द या ना-पसन्द की बात न कहूँगा, तुम्हारी सुविधा या असुविधा की भी कोई बात कहना नहीं चाहता। मेरा किस मत पर विश्वास है, मेरा समाज क्या है, यह तुम जानते हो। ललिता ने बचपन से क्या शिक्षा पाई है और किस संस्कार के बीच पलकर वह मनुष्य हुई है, यह भी तुमसे छिपा हुआ नही है। इन सब बातों को अच्छी तरह देख-सुनकर तुमने अपना मार्ग ठीक कर लिया है। अब मुझे कुछ कहना नहीं। जहाँ तक मेरी बुद्धि सोच सकी है, मैने सोच लिया है। सोचकर यही देखा कि तुम

दोनों के विवाह मे बाधा देने का कोई धर्म-सङ्गत कारण नही। क्योंकि तुम पर मेरी पूर्ण श्रद्धा है। इस जगह समाज मे यदि कोई बाधा हो तो तुम उसे स्वीकार करने को बाध्य नही। मुझको केवल इतना ही कहना है कि यदि तुम समाज को लाँघना चाहते हो तो इसके लिए तुमको समाज से बड़ा बनना होगा। यदि तुम अपने को बड़ा न बना सकोगे तो समाज-बन्धन को तोड़कर निकल जाना तुम्हारे लिए श्रेयस्कर न होगा। तुम्हारा प्रेम, और तुम्हारा सम्मिलित जीवन, केवल प्रलय-शक्ति की सूचना न देकर उत्पत्ति और पालन का तत्त्व धारण करे, इस पर सदैव ध्यान रखना होगा। केवल इसी एक काम मे सहसा एक प्रचण्ड दु:साहस दिखलाने से काम न चलेगा। इस दु साहस के अनन्तर तुमको अपने जीवन के समस्त कार्य को वीरत्व-सूत्र मे गूँथना होगा; नही तो तुम बहुत नीचे उतर आओगे। क्योंकि बाहर से समाज तुमको सर्वसाधारण की श्रेणी मे भी नही रख सकेगा। यदि तुम अपने प्रभाव से इन साधारण मनुष्यों की अपेक्षा बड़े न हो सकोगे तो साधारण लोगो की दृष्टि मे भी तुम छोटे जँचोगे। वे लोग भी तुम्हे नीची दृष्टि से देखेंगे। तुम्हारे भविष्य शुभा-शुभ के लिए मेरे मन मे यथेष्ट आशङ्का बनी है। किन्तु इस आशङ्का के कारण तुमको रोक रखने का मुझे कोई अधिकार नही। क्योंकि ससार मे जो साहस करके अपने जीवन के द्वारा नये-नये प्रश्नों की मीमांसा करने को तैयार हैं वे ही

समाज को बड़ा बना सकते है। जो केवल सामाजिक नियम मानकर चलते है वे केवल समाज को ढोते हैं, उसे आगे बढ़ाना नही चाहते। इसलिए मैं अपनी भीरुता और चिन्ता लेकर तुम्हारा मार्ग न रोकूँगा। तुमने जिसे अच्छा समझा है, अनेक विघ्न रहते भी उसका पालन करो। ईश्वर तुम्हारी सहायता करे। ईश्वर अपनी सृष्टि को किसी एक अवस्था मे बाँधकर नही रखता। वह उसको अनेक अवस्थाओ मे बदलता रहता है। जो संसार के पथ-प्रदर्शक हैं वही तुम लोगो को मार्ग दिखावें। मेरे ही मार्ग से तुमको सदा चलना होगा, ऐसा आदेश मैं नहीं दे सकता। तुम्हारी अवस्था के जब हम थे, तब हम भी रस्सी खोलकर किनारे से सम्मुख वायु की ओर नाव ले चले थे। किसी के निषेध-वाक्य पर हमने ध्यान न दिया था। आज भी उसके लिए हम पश्चात्ताप नही करते। यदि अनुताप करने का कारण सङ्घटित होता तो उसी से क्या? मनुष्य भूल करेगा, उसके कितने ही साधन व्यर्थ भी होंगे, वह दुःख भी पावेगा; किन्तु इससे वह हाथ पर हाथ रखकर बैठ न रहेगा। जो उचित समझेगा उसके लिए वह आत्म-समर्पण करेगा ही। इसी तरह यह निर्मल-जलवाली संसार-नदी की धारा चिरकाल तक बहती रहेगी। इससे कभी कभी किनारा टूटकर कुछ काल के लिए क्षति पहुँच सकती है, इस भय से उसके प्रवाह को बाँध देना प्रलय को बुलाना है, यह मैं भली भाँति जानता हूँ। अतएव जो शक्ति तुमको

अनिवार्य वेग से सामाजिक नियम के बाहर खींचकर लिये जा रही है उसी को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके मैं उसके हाथ तुम दोनों को सौंपता हूँ। वही तुम दोनों की जीवन-सम्बन्धी सारी निन्दा, ग्लानि और आत्मीय जनो के चिरविच्छेद को सार्थक करे। जो तुम दोनों को दुर्गम पथ पर लिये जा रहो है, वही तुमको गन्तव्य स्थान तक पहुँचा देगी।"

इस चिट्ठी को पढ़कर गौरमोहन चुप हो रहा। उसे चुप देख विनय ने कहा—परेश बाबू ने अपनी ओर से जैसी सम्मति दी है वैसे ही तुमको भी अपनी सम्मति देनी पड़ेगी।

गौर—परेश बाबू सम्मति दे सकते हैं, क्योंकि नदी की जिस धारा मे किनारे टूटते हैं, वह उन्हीं की है; परन्तु मैं सम्मति नही दे सकता, क्योंकि हमारी धारा किनारे (वंश) की रक्षा करती है। हमारे इस किनारे पर हज़ारों लाखों वर्ष की गगन-भेदी कीर्ति विद्यमान है। हम कुछ नही कह सकते, यहाँ प्रकृति का नियम ही काम करेगा। हम लोग अपने किनारे को पत्थर से बाँध रक्खेगे। इससे हमारी निन्दा करो चाहे जो करो। यह तीर हम लोगो के रहने की प्राचीन पवित्र भूमि है। इस पर साल दर साल नई मिट्टी चढ़ेगी। इस ज़मीन को जोत-बोकर खेती करने का हमारा अभिप्राय नहीं। इससे हमारी हानि ही क्यों न हो। यह पवित्र भूमि हमारे रहने की है, खेती करने की नही। अतएव तुम लोग खेती की बात लेकर जब हमारी इस पथरीली भूमि को कठोर

बताकर निन्दा करते हो तब उससे हम मर्मान्तिक लज्जा का अनुभव नहीं करते।

विनय ने कहा—अच्छा तुम इतना ही बतलाओ कि तुम हमारे इस विवाह को पसन्द करोगे या नहीं।

गौर—नहीं करूँगा, कदापि नहीं।

विनय—और—

गौर—और क्या, तुम्हे छोड़ दूँगा। तुमसे कोई सम्पर्क न रक्खूँगा।

विनय—अगर मैं तुम्हारा मुसलमान मित्र होता तो ?

गौर—तो उसकी बात ही अलग होती। पेड़ की डाल टूट-कर यदि आप ही अलग हो पड़े तो पेड़ उसे किसी तरह फिर पूर्ववत् अपना नहीं बना सकता। किन्तु बाहर से जो लता आकर उससे लिपटती है उसे वह आश्रय देता ही है। यहाँ तक कि अन्धड़ से टूटकर गिर पड़ने पर भी उसे नहीं छोड़ता। किन्तु अपना जब पराया हो जाय तो उसको छोड़ने के सिवा और कोई गति नहीं। इसी लिए तो इतने विधि-निषेध हैं, इतनी खैंचातानी है।

विनय—इसी से कहता हूँ कि त्याग का कारण इतना हलका और उसका विधान इतना सुलभ होना उचित न था। जिस समाज मे अत्यन्त साधारण आघात लगने से ही जुदाई होती है और वह जुदाई हमेशा के लिए रह जाती है उस समाज में मनुष्य को स्वच्छन्द होकर चलने-फिरने और काम-

धन्धा करने में कितनी बाधा पहुँचती है, क्या तुम इस बात को सोचकर नहीं देखते ?

गौर—उस चिन्ता का भार मेरे ऊपर नहीं, समाज के ऊपर है। समाज उसकी, जैसी चाहिए, चिन्ता कर रहा है। हज़ारों वर्षों से इन बातों को वह सोचता आया है और अपनी रक्षा भी करता आया है। मैं उसी समाज के भरोसे निश्चिन्त हूँ। पृथ्वी सूर्य के चारो ओर टेढ़ी गति से चलती है या सीधी चाल से, वह अपनी चाल मे भूल करती है या नहीं, इस बात को हम नहीं सोचते और न सोचने से आज तक हमारा कुछ बिगड़ा भी नहीं। अपने समाज के सम्बन्ध मे भी मेरा यही भाव है।

विनय ने हँसकर कहा—मैं भी इतने दिनों तक ये सब बाते इसी तरह कहता था—आज मुझे भी यह बात किसी के मुँह से सुननी होगी, यह कौन जानता था। बात बनाकर बोलने का दण्ड आज मुझे अवश्य भोगना पड़ेगा, यह मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ। किन्तु वाद-विवाद से कोई लाभ नहीं। क्योकि आज एक बात जो मुझे सूझ पड़ी है वह इसके पूर्व कभी न सूझी थी। आज मैंने समझा है कि मनुष्य के जीवन की गति महानदी की तरह है। वह अपने प्रखर वेग से ऐसी नई ओर रास्ता बना लेती है कि जिस ओर पहले उसका प्रवाह न था। यह उसकी गति की विचित्रता, उसकी अचिन्तनीय परिणति ही, विधाता का विधान है। वह नहर नहीं है जो उसे

बँधे हुए मार्ग मे रखा जा सकेगा। जो मैं आँखों देख चुका हूँ उसमे प्रमाण की आवश्यकता नही।

गौर—भुनगा जब आग मे गिरने जाता है तब वह भी ठीक तुम्हारी भाँति, इसी तरह, तर्क करता है। इसलिए मैं भी अब तुमको व्यर्थ समझाने की चेष्टा न करूँगा।

विनय ने कुरसी से उठकर कहा—अच्छी बात है, तो मैं जाता हूँ, एक बार माँ से भेंट कर आऊँ।

विनय के चले जाने पर महिम ने धीरे-धीरे आकर घर में प्रवेश किया। पान चाबते-चाबते पूछा—मालूम होता है काम नहीं बना, बनेगा भी नही। मैं कितने दिनों से कहता आता हूँ कि सावधान हो—बात बिगड़ने का लक्षण दिखाई देता है। तब तो मेरी बात पर ध्यान ही नही दिया। उसी समय किसी तरह ज़ोर करके शशिमुखी का ब्याह उसके साथ कर देते तो आज क्या चिन्ता रहती। किन्तु "का कस्य परिवेदना" दूसरे का दुःख दूसरा क्या समझेगा? विनय के सदृश चतुर लड़का तुम्हारे समाज से निकल गया, यह क्या कम अफ़सोस की बात है!

गौरमोहन ने कुछ उत्तर न दिया। महिम ने कहा—तो विनय को तुम नहीं लौटा सके। अच्छा इस बात को जाने दो। शशिमुखी के साथ उसके ब्याह के विषय मे बहुत गड़बड़ मच गई थी। अच्छा ही हुआ जो विनय के साथ उसका व्याह न हुआ। अब शशिमुखी का व्याह कर देने मे विलम्ब करना ठीक नहीं। हमारे समाज की जैसी चाल है

सो तुम जानते ही हो। अगर कोई आदमी ठिकाने से मिल जाय तो लोग उसे नाकों-पानी पिला छोड़ते हैं। इसी से एक योग्य वर—नहीं भैया, तुम डरो मत, तुमको वर ढूँढ़ने का कष्ट न दूँगा। वह मैंने स्वयं तय कर लिया है।

गौरमोहन ने पूछा—वर का नाम ?

महिम—वही तुम्हारा अविनाश।

गौर—वह राज़ी हो गया ?

महिम—राज़ी क्यों न होगा। वह क्या तुम्हारा विनय है ! तुम चाहे जो कहो, परन्तु तुम्हारे दल मे यह अविनाश तुम्हारा सबसे बढ़कर भक्त है। तुम्हारे ख़ानदान मे उसका सम्बन्ध होगा, यह बात सुनते ही वह मारे ख़ुशी के नाच उठा। उसने कहा—यह मेरा सौभाग्य है, इससे बढ़कर मेरे गौरव की बात और क्या होगी। रुपये-पैसे की बात पूछने पर उसने कान पर हाथ रखकर कहा, माफ़ कीजिए, ये बाते मुझसे न कहिए। मैंने कहा—अच्छा, यह बात तुम्हारे पिता के साथ होगी। उसके बाप के पास भी मैं गया था। बाप-बेटे मे बहुत अन्तर देखा गया। रुपये की बात छिड़ने पर बाप ने कान पर हाथ न रक्खा, बल्कि यों कहना आरम्भ किया कि मुझी को कान पर हाथ रखने की नौबत आई। लड़के को भी देखा, वह इन बातो मे बाप का पूरा भक्त है। पूर्णतया "पिता हि परम तपः।" उसको मध्यस्थ रखने से कोई फल न होगा। इस दफ़े कम्पनी का काग़ज़

भुनाये बिना काम सम्पन्न होने का नहीं। वह सब तो होगा ही, तुम भी अविनाश से इस विषय में दो एक बात कह दो। तुम्हारे मुँह से उत्साह पाने पर—

गौर—उससे रुपये की संख्या कुछ कम न होगी।

महिम—यह मैं भी जानता हूँ। जब उसकी वैसी पितृ-भक्ति है तब उसे सँभालना कठिन है।

गौरमोहन ने पूछा—बात तो पक्की हो गई है?

महिम—हाँ।

गौर—लग्न मुहूर्त सब ठीक हो गया?

महिम—हाँ, दिन भी स्थिर हो गया। माघ की पौर्णिमा को। अब उसके कै दिन रह गये हैं? वर के बाप ने कहा है कि हीरे-मोती का काम नहीं, गहने ठोस होने चाहिएँ। इस विषय में सुनार से पूछ लेना बहुत ज़रूरी है कि ऐसा उपाय करो जिसमें वज़न तो बढ़े नहीं और चीज़े अच्छी दीख पड़ें।

गौर—किन्तु इतनी जल्दी करने की क्या ज़रूरत है? अविनाश झटपट ब्राह्म-समाज में प्रविष्ट होगा, ऐसी आशङ्का नहीं है।

महिम ने कहा—न हो, किन्तु पिताजी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है, उसे तुमने ध्यानपूर्वक नहीं देखा है। वैद्य लोग जितना ही रोकते हैं, उतनी ही उनके नियम की मात्रा बढ़ती जाती है। आज-कल जो संन्यासी उनके साथ

रहते हैं, वे उन्हे त्रिकाल स्नान कराते हैं। इस पर फिर हठ-योग की ऐसी टेव लग गई है कि आँख की पुतली, भौहे, श्वास-प्रश्वास, इड़ा-पिङ्गला आदि सब उलट पुलट हो जाने की नौबत आ गई है। पिताजी के रहते शशिमुखी का व्याह हो जाने ही मे कुशल है। उनकी पेंशन का एकत्रित रुपया त्रिगुणानन्द स्वामी के हाथ लगने के पूर्व ही इस कार्य को सम्पन्न कर लेने पर अधिक चिन्ता न करनी पड़ेगी। मैंने यह बात कल उनसे कही भी थी। जो देखा, उससे रङ्ग-ढङ्ग अच्छा न मालूम हुआ। इस धूर्त संन्यासी को कुछ दिन ख़ूब गाँजा पिलाकर वश मे कर लेने से उसी के द्वारा कार्य सिद्ध होगा। जो गृहस्थ हैं, जिनको रुपये की ज़रूरत सबसे ज़्यादा है, उनके काम पिता का रुपया न आवेगा यह तुम सच जानो। मुझे कुछ मुश्किल है तो यही कि दूसरे का बाप (वर का पिता) रुपया लेने को हाथ पसारे हुए है और मेरा बाप रुपया देने की बात सुनते ही प्राणायाम करने को बैठ जाता है। मैं अब इस ग्यारह वर्ष की लड़की को गले मे बाँधकर क्या पानी मे डूब मरूँ?

[६२]

हरिमोहिनी ने पूछा—राधारानी, कल रात को तुमने व्यालू क्यों नहीं की?

सुशीला ने चकित होकर कहा—की तो थी।

हरिमोहिनी ने उसकी ढकी हुई भोजन-सामग्री दिखाकर कहा—कहाँ खाया है, सब सामान तो रक्खा हुआ है।

तब सुशीला को स्मरण हो आया कि कल खाने की बात उसे याद न थी।

हरिमोहिनी ने रूखे स्वर मे कहा—ये बाते अच्छी नही। मैं तुम्हारे परेश बाबू को जहाँ तक जानती हूँ, वे तुम्हारे इन रङ्ग-ढङ्गों को पसन्द नहीं करेगे। उनके दर्शन से मनुष्य का मन शान्त होता है। यदि वे तुम्हारी आज-कल की चाल-ढाल की ये बाते जानेंगे तो क्या कहेगे।

हरिमोहिनी के कहने का उद्देश क्या है, यह सुशीला समझ गई। पहले तो उसके मन मे कुछ सङ्कोच हो आया। गौर-मोहन के साथ मेरे व्यावहारिक सम्बन्ध की नितान्त साधारण स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के साथ तुलना करके एक ऐसे अपवाद का कटाक्ष मेरे ऊपर हो सकता है, इस बात को उसने कभी न सोचा था। इसलिए हरिमोहिनी की टेढ़ी बात से वह क्षुब्ध हो गई। किन्तु वह फिर तुरन्त ही सँभलकर बैठी और हरिमोहिनी के मुँह की ओर देखने लगी।

सुशीला ने उसी समय निश्चय कर लिया कि मैं गौर-मोहन के सम्बन्ध की बातों मे किसी के आगे कुछ सङ्कोच न करूँगी। उसने हरिमोहिनी से कहा—मौसी, तुम तो जानती ही हो, कल गौरमोहन बाबू आये थे। उनके मुँह से निकले हुए गम्भीर विषय ने मेरे मन को इस तरह विमुग्ध कर दिया

कि मुझे खाने की भी सुधि न रही। तुम होती तो कल कितनी ही गवेषणा-पूर्ण बातें सुनती।

हरिमोहिनी जैसी बात सुनना पसन्द करती थी ठीक वैसी गौरमोहन की बात न होती थी। वह भक्ति की बात सुनना चाहती थी। किन्तु गौरमोहन के मुँह से भक्ति की बात वैसी सरस और रोचक न निकलती थी। गौरमोहन के सम्भाषण मे सदा एक ऐसा भाव रहता था जैसे उसके सामने बराबर कोई एक प्रतिपक्षी बैठा हो और गौरमोहन उसके विरुद्ध झगड़ा कर रहा हो। जो नहीं मानते उनको वह बरजोरी मनाना चाहता है। किन्तु जो उसके मत को मानता है उससे वह क्या कहेगा। जिस विषय मे गौरमोहन उत्तेजित था उससे हरिमोहिनी सर्वथा उदासीन थी। ब्राह्म-समाज का आदमी यदि हिन्दू-समाज के साथ न मिले और अपना मत लेकर रहे तो इसमे उसको आन्तरिक क्षोभ कुछ भी नहीं था। अपने प्रिय जनो से विच्छेद होने का कोई कारण सङ्घटित न होने पर वह निश्चिन्त रहती थी। इस प्रकृति-विभिन्नता के कारण गौरमोहन की बात मे उसे कुछ भी रस नहीं मिलता था। इसके बाद हरिमोहिनी ने जब जाना कि गौरमोहन ने ही सुशीला के मन पर अधिकार किया है तब उसकी बात-चीत उसे और भी अरुचिकर मालूम होने लगी। रुपया-पैसा खर्च करने मे सुशीला स्वाधीन थी और धर्मविश्वास तथा आचरण मे भी स्वतन्त्र थी, इसी से हरिमोहिनी उसे किसी तरह अपने

वश में नहीं कर सकती थी। और एक बात यह कि सुशीला ही अन्तिम अवस्था मे हरिमोहिनी की एक मात्र अवलम्ब थी। इसी से वह सुशीला पर परेश बाबू को छोड़ और किसी का कैसा भी अधिकार देख चञ्चल हो उठती थी। हरिमोहिनी मन मे कहने लगी कि गौरमोहन की यह पण्डिताई नक़ली है। उसके मन का असल अभिप्राय यही है कि किसी तरह छल-बल से मैं सुशीला के मन को अपनी ओर खींच लूँ। इतना ही नहीं, सुशीला की जो धन-सम्पत्ति है उस पर भी गौरमोहन की नज़र है। गौरमोहन को ही हरिमोहिनी अपना प्रधान शत्रु मानकर उसको रोकने के लिए मन ही मन कमर कसकर तैयार हुई।

आज गौरमोहन को सुशीला के घर जाने के लिए कोई आवश्यकता न थी, कोई कारण भी न था। किन्तु उसके स्वभाव मे द्विधाभाव बहुत कम है। जब वह किसी ओर झुक पड़ता है तब इन बातों को कुछ नहीं सोचता। तीर की तरह सीधा चला जाता है। कहीं अटकने या लौटने का नाम नहीं लेता।

आज सबेरे गौरमोहन जब सुशीला के घर पहुँचा तब हरिमोहिनी ठाकुरजी की पूजा कर रही थी। सुशीला अपनी बैठक में टेबल पर पुस्तक आदि वस्तुओं के सँवारने मे लगी थी। ठीक इसी समय सतीश ने आकर ख़बर दी कि गौर बाबू आये हैं। सुशीला सुनकर विशेष उत्कंठित न हुई। मानो वह पहले ही से जानती थी कि गौरमोहन आज आवेंगे।

गौरमोहन कुरसी पर बैठते ही बोला—आख़िर विनय ने हम लोगों को छोड़ ही दिया।

सुशीला—छोड़ेंगे कैसे! वे तो ब्राह्म-समाज मे सम्मिलित नही हुए।

गौर—ब्राह्म-समाज मे सम्मिलित हो जाता तब तो कोई बात ही न थी। तब तो वह किसी तरह हमारे पास ही रहता। वह हिन्दू-समाज का गला ख़ूब कसकर पकड़े हुए है, यही बात सबसे बढ़कर कष्टप्रद है। इससे हमारे समाज को वह एकदम छोड़ देता तो बड़ा उपकार करता।

सुशीला ने मन मे गहरी चोट खाकर कहा—आप समाज को इस प्रकार अत्यन्त एकान्त दृष्टि से क्यों देखते हैं? समाज के ऊपर जो आप इतना अधिक विश्वास रखते हैं यह क्या आपका स्वाभाविक विश्वास है, या अपने ऊपर बलप्रयोग करके ही ऐसा करते हैं?

गौर—ऐसी अवस्था मे यह बलप्रयोग करना ही स्वाभाविक है। जहाँ गिरने का ख़ौफ़ है, वहाँ पैर पर ज़ोर देकर ही चलना होता है। यह चारों ओर जो विरुद्धता का साम्राज्य फैल रहा है, उससे मेरे वाक्य और व्यवहार मे कुछ बाहुल्य पाया जाता है, यह अस्वाभाविक नहीं है।

सुशीला—यह जो चारों ओर आप विरुद्धता देख रहे है, उसे एकाएक अन्याय और अनावश्यक क्यों समझ रहे हैं?

यदि समय की गति में समाज बाधा दे तो समाज को आघात सहना ही पड़ेगा।

गौर—समय की गति जल की तरङ्ग की भाँति होती है। वह पार्श्ववर्त्ती भूमि को काटकर गिराती है, इससे हम यह नहीं मान सकते कि सूखी ज़मीन का कटकर गिरना ही उसका धर्म है। तुम यह मत समझो कि हम समाज की भली-बुरी बातों पर कुछ विचार नहीं करते। वह विचार करना इतना सहज हो गया है कि आज-कल के छोकरे भी विचारक हो उठे हैं। किन्तु सब बातों को श्रद्धापूर्वक सोच-विचारकर देखना कठिन है।

सुशीला ने कहा—श्रद्धा से हम केवल सत्य का ही ग्रहण नहीं करती हैं, उससे कभी-कभी अविचार द्वारा मिथ्या को भी स्वीकार कर लेती है। मैं आपसे एक बात पूछती हूँ, हमें क्या मूर्ति-पूजा पर भी श्रद्धा करनी चाहिए? क्या आप इसको सत्य मानकर विश्वास करते है?

गौरमोहन कुछ देर चुप रहकर बोला—मैं तुमसे जो कहूँगा, सत्य कहूँगा। मैंने शुरू से ही इस बात को सत्य मान लिया है। युरोपि[illegible] संस्कार के साथ इस उपासना का विरोध है और इसके[illegible] पुस्तक बहुत सस्ती युक्तियों का प्रयोग भी किया जा रहा[illegible] समय लिए मैं झटपट इस मूर्ति-पूजा को व्यर्थ नहीं बता सकूँगा। धर्म के सम्बन्ध मे मेरी कोई विशेष साधना नहीं है, किन्तु सगुणोपासना और मूर्ति-पूजा एक ही बात है।

मूर्ति-पूजा में भक्तितत्त्व का कुछ परिणाम नहीं है, यह बात मैं आँख मूँदकर चिर-अभ्यस्त वचन की भाँति नहीं बोलूँगा। शिल्प मे, साहित्य मे, यहाँ तक कि विज्ञान, इतिहास मे भी मनुष्य की कल्पना-वृत्ति का स्थान है; केवल एक धर्म मे ही उसका कोई प्रयोजन नहीं, इस बात को मैं स्वीकार न करूँगा। धर्म के भीतर ही मनुष्य की सब वृत्तियों का पूरा प्रकाश पाया जाता है। हमारे देश की मूर्ति-पूजा मे ज्ञान और भक्ति के साथ जो कल्पना का सम्मिलन हो चला है इससे हमारे देश का धर्म क्या मनुष्य के निकट अन्य देश की अपेक्षा पूर्ण रूप से सत्य नहीं प्रतीत होता ?

सुशीला—किसी समय ग्रीस और रोम मे भी तो मूर्ति-पूजा होती थी।

गौर—वहाँ की मूर्ति मे मनुष्य की कल्पना सौन्दर्य-ज्ञान को जितना आश्रय दिये हुए थी उतना ज्ञान-भक्ति को नहीं। हमारे देश मे ज्ञान और भक्ति के साथ कल्पना बिलकुल मिली हुई है। यहाँ तक मिली हुई है कि ज्ञान और भक्ति मे उसका चिह्न मात्र दृष्टि-गोचर नहीं होता। हमारे राधाकृष्ण या गौरीशङ्कर केवल ऐतिहासिक पूजा के विषय नहीं है, उनमे मनुष्य के सनातन तत्त्वज्ञान का रूप विद्यमान है। इसी कारण भक्त रामप्रसाद और चैतन्यदेव प्रभृति महात्माओ की भक्ति इन मूर्त्तियों का अवलम्बन करके ही प्रकट हुई है। भक्ति का ऐसा उज्ज्वल प्रकाश ग्रीस और रोम के इतिहास मे कब दिखाई दिया है ?

सुशोला—समय-परिवर्तन के साथ-साथ धर्म और समाज का कोई परिवर्तन क्या आप बिलकुल स्वीकार करना नहो चाहते ?

गौर—चाहते क्यों नहीं। परिवर्तन को हम क्या, सभी मानेंगे। किन्तु यह परिवर्तन किसी के पागलपन से तो होगा नहीं। मनुष्य का परिवर्तन मनुष्यता के साथ ही होगा। बालक से युवा, और युवा से लोग बूढ़े होते हैं। किन्तु मनुष्य सहसा कुत्ता बिल्ली तो नहीं बन जाता। भारतवर्ष का परि-वर्तन भारतवर्ष के मार्ग से ही होगा। सहसा अँगरेज़ी इति-हास का मार्ग पकड़ने से सभी भ्रष्ट हो जायगा। देश की शक्ति, देश का ऐश्वर्य, देश के ही भीतर छिपा पड़ा है, यह तुमको जताने के लिए मैंने अपना जीवन तक उत्सर्ग किया है। मेरी बात समझती हो न ?

सुशीला—हाँ, समझती हूँ। किन्तु मैंने इन बातों को न पहले सुना ही था और न सोचा ही था। नई जगह मे जा पड़ने से खूब जानी हुई वस्तु की पहचान मे जैसे पुरुष कुछ भूलते हैं वैसे ही मैं भी कुछ भूलती हूँ। मालूम होता है, मैं स्त्री हूँ इसी से मेरी दृष्टि दूर तक नहीं पहुँचती।

गौरमोहन—कभी नहीं। मैं बहुत पुरुषो से भी मिल चुका हूँ। मैं यह बातचीत और आलोचना उनके साथ बहुत दिनों से करता आता हूँ। वे लोग यही निश्चय किये बैठे हैं कि जो कुछ हम जानते हैं, बहुत ठीक जानते हैं। किन्तु मैं तुमसे

सच कहता हूँ कि तुम्हारी समझ उन सबो से कही बढ़कर है। तुम्हारी दृष्टि जहाँ तक पहुँचती है, उनमे किसी की दृष्टि वहाँ तक पहुँचते नही देखी। तुममे गहरी दृष्टि-शक्ति है, यह मैं तुमको देखकर पहले ही समझ गया था। इसी से मैं अपने इतने दिनो की हृदय की सब बातों को लेकर तुम्हारे पास आया हूँ। मैंने अपने जीवन की घटनाओ को खोलकर तुम्हारे सामने रख दिया है। तुम उस पर विवेचना करो। मैं तुमसे कोई बात सङ्कोचवश छिपाना नही चाहता।

सुशीला—आप जब इस तरह बोलते हैं तब मेरे मन मे बड़ी व्याकुलता मालूम होती है। आप मुझसे क्या चाहते हैं, कहिए। मैं किस लायक़ हूँ, मुझे क्या करना होगा? मैं आपकी आशा को कहाँ तक पूरी कर सकूँगी, यह मैं नहीं जानती। मेरे हृदय मे जो एक भाव का आवेग आ रहा है, वह क्या है मैं कुछ नही समझती। सच पूछिए तो मुझे भय केवल इतना ही है कि मेरे ऊपर जो आपका विश्वास है उसे किसी दिन अपनी भूल समझकर कहीं आपको पछताना न पड़े।

गौरमोहन ने गम्भीर स्वर मे कहा—भूल की बात क्या कहती हो। तुमको अच्छी तरह जाँचकर ही मैंने तुम पर विश्वास किया है। तुममे कितनी बड़ी शक्ति है, यह मैं तुम्हें दिखा दूँगा। तुम मन मे किसी बात का शोच न करो। तुम्हारी योग्यता प्रकट करने का भार मेरे ऊपर है। तुम मेरे ही भरोसे यह बात रहने दो।

सुशीला चुप हो रही। भरोसे रहने देने मे अब उसे क्या बाक़ी रहा, यही उसने मौन धारण द्वारा सूचित किया। गौर-मोहन ने फिर कुछ न पूछा और चुप हो रहा। बड़ी देर तक घर मे सन्नाटा छाया रहा। वाहर की गली मे पुराने वर्तन लेने-वाला, पीतल के टूटे-फूटे वर्तनों को झनकारता हुआ, दर्वाज़े के सामने से होकर आवाज़ देता चला गया।

हरिमोहिनी ठाकुर की पूजा करके रसोई-घर मे जा रही थी। सुशीला के निःशब्द कमरे मे कोई मनुष्य है यह भी उसे न जान पड़ा। किन्तु घर के भीतर दृष्टि डालकर हरिमोहिनी ने देखा, सुशीला और गौरमोहन चुपचाप वैठे कुछ सोच रहे हैं, दोनो मे किसी तरह का कोई सम्भाषण नही है। तब उसका क्रोध सन् से ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच गया। किसी तरह अपने को सँभाल द्वार पर खड़ी हो उसने पुकारा—राधारानी।

सुशीला उठकर उसके पास गई। हरिमोहिनी ने मीठे स्वर मे कहा—बेटी, आज एकादशी है, मेरा जी अच्छा नही है। तुम रसोई-घर मे जाकर चूल्हा जलाओ, मैं तब तक गौर बाबू के पास वैठती हूँ।

मौसी का भाव देख सुशीला उद्विग्न होकर रसोई-घर मे चली गई। घर मे हरिमोहिनी के आते ही गौरमोहन ने उसे प्रणाम किया। वह कोई वात न बोलकर कुरसी पर बैठ गई। कुछ देर मुँह फुलाये चुप रही, फिर गौरमोहन की ओर देख-कर बोली—तुम तो ब्राह्म नहीं हो?

गौर—जी नहीं।

हरिमोहिनी—हमारे हिन्दू-समाज को तो तुम मानते हो?

गौर—जी हाँ, मानता हूँ।

हरिमोहिनी—तो तुम्हारा यह व्यवहार कैसा है?

हरिमोहिनी के इस प्रतिकूल भाषण का कुछ अर्थ न समझ गौरमोहन चुपचाप उसके मुँह की ओर देखने लगा।

हरिमोहिनी ने कहा—राधा रानी अब अबोध बालिका नहीं है, वह अब सयानी हुई। तुम उसके आत्मीय नहीं हो, तुमसे उसका कोई नाता भी नहीं। तब, इस तरह, रोज़-रोज़ आकर उसके साथ घण्टो बाते करना कैसी बात है। वह स्त्री है, घर का काम-धन्धा करेगी। उसको इन सब बातो मे रहने की क्या ज़रूरत? इससे उसका मन दूसरी ओर जा सकता है। तुम तो बड़े ज्ञानी हो—देश के सभी लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। किन्तु हमारे देश मे ये बाते कभी नहीं थी। किसी शास्त्र मे भी नहीं लिखी हैं।

यह सुनकर गौरमोहन के मन मे बडा धक्का लगा। सुशीला के सम्बन्ध मे ऐसी बात मैं किसी के मुँह से सुन सकता हूँ, इसका स्वप्न मे भी विचार उसने नहीं किया था।

वह कुछ देर चुप रहकर बोला—ये ब्राह्म-समाज मे हैं। इनको बराबर इसी तरह सबके साथ मिलते देखता हूँ, इसी से मैंने इस बात पर कभी ध्यान नहीं दिया।

हरिमोहिनी—वह ब्राह्म-समाज मे है, यह बात मैंने मान ली, किन्तु तुम तो हिन्दू-समाज मे हो, तुम तो इन बातों को कभी पसन्द नही करते। तुम्हारा उपदेश सुनकर आजकल के कितने ही मनुष्य चैतन्य लाभ करते हैं। तुम्हारा व्यवहार ऐसा होने से लोग तुम्हारी बात कैसे मानेंगे ? कल, बड़ी रात तक, तुमने उसके साथ बात-चीत की, तो भी तुम्हारा कहना ख़तम न हुआ। आज फिर सबेरे ही आ पहुँचे। वह भी सबेरे से तुम्हारे पास बैठी रही। न भाण्डार मे गई, न रसोई-घर मे गई। आज एकादशी के दिन वह मेरी कुछ सहायता करती, यह भी उससे न हुआ। क्या यही शिक्षा उसको दी जा रही है ! तुम्हारे घर मे भी तो बहू-बेटियाँ हैं, क्या घर का सभी काम-धन्धा बन्द करके तुम उन्हे भी ऐसी ही शिक्षा देते हो—या और ही कोई उन्हे इस तरह शिक्षा दे तो तुम पसन्द करोगे ?

गौरमोहन के पास इन बातों का कोई उत्तर न था। उसने इतना ही कहा—ये ऐसी ही शिक्षा पाकर इतनी बड़ी हुई हैं इसलिए मैं इनके साथ बातचीत करने मे कुछ बुरा नही मानता।

हरिमोहिनी—वह भले ही शिक्षा पाये हुए हो किन्तु जितने दिन मेरे पास है, और मैं जब तक जीती हूँ, यह बात न चलेगी। उसको मैं बहुत कुछ उस रास्ते से लौटा लाई हूँ। जब मैं परेश बाबू के घर मे थी तब चारो ओर यह अफ़वाह फैल गई थी कि मेरे साथ मिलकर वह हिन्दू हो गई है। इसके बाद इस घर मे आने पर न मालूम तुम्हारे विनय के

साथ क्या-क्या बातें होने लगी। फिर उसका मिज़ाज बदल गया। सुना है, अब वे ब्राह्म के घर ब्याह करने जाते है, जायँ। बड़ी-बड़ी कठिनाई से विनय को यहाँ से हटाया है। एक के हटते ही फिर दूसरा आ गया। हरिश्चन्द्र नाम का एक आदमी आने लगा। उसे जब मैं आते देखती थी, झट सुशीला को लेकर ऊपर के कमरे मे जा बैठती थी। वह अपना अधिकार यहाँ न जमा सका। इस तरह मैं उन लोगों से बचाकर इसे बहुत कुछ अपने मत पर ला सकी हूँ। इस मकान मे आने पर उसने सबका छूआ खाना आरम्भ किया था। कल से उसने ऐसा करना बन्द किया है। कल रसोई-घर से अपना भोजन वह आप ही ले गई। एक दुसाध नौकर नित्य पानी लाता था, उसे पानी लाने को मना कर दिया है। आपसे मै हाथ जोड़कर यही विनती करती हूँ कि आप लोग उसे अब मत बहकाइए। उसके सुधरे स्वभाव को स्थिर रहने दीजिए। संसार मे जो कोई मेरे थे, सब मर गये, सिर्फ़ यही एक—मेरी जो कुछ समझिए—बच रही है; इसके भी अपने समीपीय आत्मीय जनो मे मुझे छोड़ और कोई नही है। इसे आप छोड दीजिए। इसके पुराने घर में तो कितनी ही बड़ी-बड़ी लडकियाँ हैं, लावण्य है, लीला है, वे भी बुद्धिमती और पढ़ी-लिखी हैं। यदि आप को कुछ विशेष वार्तालाप करना हो तो उनके पास जाकर कीजिए, कोई आपको न रोकेगा।

गौरमोहन कुछ न बोला, ज्यों का त्यों बैठा रहा। हरिमोहिनी उसे चुप देख फिर बोली—आप सोचकर देखिए, अब कहीं इसका व्याह कर देना ही होगा। उम्र हो गई है। आप क्या कहते हैं, वह सदा इसी तरह अविवाहिता ही रहेगी? गृहस्थ-धर्म में आना भी तो स्त्रियों का एक आवश्यक कर्म है।

इस विषय मे साधारण भाव से गौरमोहन के मन मे कोई सन्देह न था। उसका भी मत यही था। किन्तु सुशीला के सम्बन्ध मे उसने आज तक कभी अपने मत का प्रयोग करके नहीं देखा। सुशीला गृहिणी होकर किसी एक गृहस्थ के घर के भीतर गृहकार्य मे नियुक्त है, यह कल्पना रूप से भी कभी उसके मन मे न आया था। वह सोचता था, सुशीला जैसी आज है वैसी ही सदा रहेगी।

गौरमोहन ने पूछा—आपने अपनी बहनोती के व्याह की बात कुछ सोची है या नहीं?

हरिमोहिनी—सोचनी ही होगी। मैं न सोचूँगी तो कौन सोचेगा?

गौरमोहन—क्या हिन्दू-समाज मे उसका व्याह हो सकेगा?

हरिमोहिनी—चेष्टा करके देखूँगी। यदि वह ठिकाने के साथ रहे, ठीक तरह से चले तो मैं उसको हिन्दू-समाज मे चला दे सकूँगी। इन बातों को मैंने मन ही मन ठीक कर रक्खा है। इतने दिन तक उसकी जैसी गति-विधि थी, इससे

साहस करके कुछ कर नही सकती थी। अब दो दिन से देखती हूँ कि उसका स्वभाव फिर कुछ बदला जाता है, उसका हृदय कुछ-कुछ कोमल हुआ जाता है, इसी से कुछ भरोसा होता है।

गौरमोहन ने इस सम्बन्ध मे अधिक पूछताछ करना उचित न समझा, पर तो भी वह विना पूछे न रह सका। पूछा—क्या कोई उपयुक्त वर कही ढूॅढ़ा है ?

हरिमोहिनी—हॉ, ढूॅढ़ा तो है। वर अच्छा ही है–कैलास–मेरा देवर। कुछ दिन हुए, उसकी स्त्री मर गई है। पसन्द लायक़ सयानी लडकी नही मिलती, इसी से इतने दिन से वैठा है नहीं तो वैसा वॉका लडका कहॉ मिलेगा। राधारानी के साथ उसका ठीक मिलान होगा।

गौरमोहन के हृदय मे जितनी ही सुइयॉ चुभने लगी उतना ही वह कैलास के सम्वन्ध मे प्रश्न करने लगा।

हरिमोहिनी के देवरो मे कैलास ही अपने विशेष यत्न से थोडा-वहुत लिखा-पढ़ा था। कहॉ तक पढा था, यह हरि-मोहिनी न वतला सकी। अपने भाई-बन्धुओ मे वही विद्वान् कहलाता है। गॉव के पोस्टमास्टर के ख़िलाफ ज़िले मे जो दरख़्वास्त दी गई थी वह कैलासचन्द्र के ही हाथ की लिखो थी। उसने ऐसी सुललित भाषा मे सव बातें लिख दी थी कि पोस्ट आफ़िस का एक बडा वावू स्वयं आकर तहकीक़ात कर गया था। इससे गॉव के सभी लोगो ने कैलास की योग्यता पर

आश्चर्य प्रकट किया। इतनी गम्भीर शिक्षा पाने पर भी आचार और धर्म मे कैलास की निष्ठा कुछ कम नहीं हुई है।

कैलास का सारा इतिहास सुन लेने पर गौरमोहन उठ खड़ा हुआ। हरिमोहिनी को प्रणाम करके वह चुपचाप चलता हुआ।

ज़ीने से उतरकर गौरमोहन जब आँगन से सदर फाटक की ओर जा रहा था तब आँगन के एक ओर रसोई-घर में सुशीला रसोई बनाने मे लगी हुई थी। गौरमोहन के पैरो की आहट पाकर वह द्वार पर आ खड़ी हुई। गौरमोहन किसी ओर दृक्-पात न करके बाहर चला गया। सुशीला लम्बी साँस लेकर फिर रसोई के काम मे लगी।

गौरमोहन जब गली के मोड़ के पास आया तब हरि बाबू से उसकी भेट हुई। हरि बाबू ने ज़रा हँसकर कहा--आज इतने सबेरे ही।

गौरमोहन ने इसका कोई जवाब न दिया। हरि बाबू ने फिर ज़रा मुसकुराकर पूछा--मालूम होता है, वहीं गये थे। सुशीला घर ही पर है?

गौर--जी हाँ।

यह कहकर वह बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ गया। हरि बाबू ने सीधे सुशीला के मकान मे घुसकर रसोई-घर के खुले द्वार की ओर झाँककर देखा। सुशीला को देखते ही वह द्वार के सामने खड़ा हो रहा। सुशीला के भागने का रास्ता बन्द हो गया। मौसी भी उसके पास न थी।

हरि बाबू ने पूछा—गौरमोहन से अभी गली के मोड़ पर भेट हुई थी। मालूम होता है, वे बड़ी देर से यहीं थे ?

सुशीला उसकी बात का कोई जवाब न दे रसोई के बर्तन-बासन ले अत्यन्त व्यस्त हो उठी। मानों अभी दम लेने की फ़ुरसत नहीं है, ऐसा भाव उसने दिखाया। किन्तु हरि बाबू इससे बाज़ आनेवाला न था। उसने उसी जगह खड़े होकर बातचीत करना आरम्भ कर दिया। हरिमोहिनी ने ज़ीने से नीचे उतर दो-तीन बार खाँसा। इससे भी कुछ फल न हुआ। हरिमोहिनी हरि बाबू के सामने ही चली आती, किन्तु वह जानती थी कि एक बार यदि मैं इसके सामने आऊँगी तो इस घर मे इस उद्यमशील युवक के अदम्य उत्साह से मैं और सुशीला दोनो कहीं आत्म-रक्षा न कर सकेंगी। इस कारण वह हरि बाबू की परछाँही देखते ही इतना बड़ा घूँघट काढ़ती थी कि देखने से मालूम होता था, वह कल की आई नई बहू है।

हरि बाबू ने कहा—सुशीला, मैं नहीं जानता कि आख़िर तुम किस रास्ते चलोगी और कहाँ जा पहुँचोगी। शायद तुमने सुना ही होगा कि ललिता के साथ विनय बाबू का हिन्दूमत से ब्याह होगा। तुम जानती हो, इसका दोष किसके माथे मढ़ा जायगा ?

सुशीला से कोई उत्तर न पाकर हरि बाबू ने स्वर को कुछ मुलायम करके गम्भीर भाव से कहा—तुम्हीं इसकी ज़िम्मेदार समझी जाओगी।

हरि बाबू ने समझा था, इतने बड़े दोषारोपण का आघात सुशीला सह न सकेगी। किन्तु वह तब भी कुछ न कहकर काम करने लगी। यह देखकर हरि ने स्वर को और भी गम्भीर करके सुशीला के प्रति अपनी तर्जनी हिलाकर कहा—सुशीला, मैं फिर भी कहता हूँ कि जवाबदेही तुम्हीं पर है। तुम अपनी छाती पर हाथ रखकर कह सकती हो कि इस निमित्त ब्राह्म-समाज में तुमको अपराधी होना न पड़ेगा?

सुशीला ने चुपचाप चूल्हे पर कड़ाही चढ़ाकर तेल डाल दिया। तेल कड़कड़ाने लगा। मानों हरि बाबू के प्रश्न का उत्तर वही देने लगा।

हरि बाबू ने फिर यों कहना शुरू किया—तुम्हीं ने विनय और गौरमोहन को अपने घर में बिठा-बिठाकर उन्हें यहाँ तक बढ़ाया है कि वे अब तुम्हारे ब्राह्म-समाज के किसी व्यक्ति को कुछ मन में नहीं लाते। तुम्हारे ब्राह्म-समाज के सभी श्रेष्ठ लोगों की अपेक्षा यही दोनों हिन्दू युवक तुम्हारे लिए विशेष मान्य हो उठे हैं। इसका फल क्या हुआ है सो देखती हो न? क्या मैं पहले ही से तुमको बराबर सावधान करता नहीं आता हूँ? आज क्या हुआ, यह आँख पसार-कर देखा न! आज ललिता को कौन रोकेगा? तुम सोचती हो, ललिता के ऊपर से ही होकर विपत्ति की आँधी चली जायगी! लेकिन ऐसा नहीं है। आज मैं तुमको सावधान करने आया हूँ। अब तुम्हारी बारी है। आज ललिता की दुर्घटना से

तुम ज़रूर ही मन ही मन पछता रही हो, किन्तु वह दिन दूर नहीं जिस दिन तुम अपने अधःपतन पर ज़रा भी न पछताओगी। किन्तु अब भी सँभलने का समय है। सुबह का भूला अगर शाम को घर आ जाय तो वह भूला नहीं कहलाता। एक बार तुम सोच देखो, एक दिन कितनी बड़ी आशा के भीतर हम-तुम दोनो पड़े थे। हमारे सामने जीवन का कर्तव्य कैसा निर्मल था! ब्राह्म-समाज का भविष्य क्या ही उदार भाव मे फैला हुआ था! हम लोगों के कितने ही शुभ सङ्कल्प थे और हमने कितनी ही काम की बाते सोच रक्खी थीं। क्या वे सब नष्ट हो गई हैं! कभी नहीं। हमारी उस आशा की क्यारी अब भी वैसी ही लहलहा रही है। सिर्फ़ एक बार तुम मुँह फेरकर देखो, जिधर जा रही हो उधर से एक बार लौट आओ।

सुशीला तब तेल मे तरकारी भून रही थी और प्रयोजन न रहते भी बार-बार करछुल चला रही थी। जब हरि बाबू अपने कपटमय वाक्य-प्रयोग का फल जानने की इच्छा से चुप हो रहा तब सुशीला चूल्हे पर से कडाही को नीचे उतार मुँह फिराकर दृढ़ता भरे स्वर मे बोली—मैं हिन्दू हूँ।

हरि बाबू ने एकदम हतबुद्धि होकर कहा—तुम हिन्दू हो?

सुशीला—जी हाँ, मैं हिन्दू हूँ हिन्दू!

यह कहकर वह फिर कड़ाही को चूल्हे पर चढ़ाकर करछुल से बार-बार तरकारी को उलटाने-पलटाने लगी।

हरि बाबू कुछ देर तक इस चोट को किसी तरह बरदाश्त करके तीव्र स्वर मे बोला—मालूम होता है, इसी से गौरमोहन बाबू सवेरे-शाम आकर तुमको मन्त्र देते हैं?

सुशीला नज़र नीची किये ही बोली—हाँ, मैंने उन्ही से मन्त्र लिया है, वही मेरे गुरु है।

हरि बाबू इतने दिन तक अपने ही को सुशीला का गुरु जानता था। यदि आज वह सुशीला से सुनता कि वह गौरमोहन को चाहती है तो इससे उसको वैसा कष्ट न होता—किन्तु उसका गुरुत्व-अधिकार आज गौरमोहन ने छीन लिया है, सुशीला के मुँह से यह बात उसको बरछी की तरह छिदने लगी।

उसने कहा—तुम्हारे गुरु चाहे जितने बड़े लोग हो, क्या तुम समझती हो कि हिन्दू-समाज तुमको ग्रहण करेगा?

सुशीला—यह बात मैं नहीं जानती, समाज को भी नही जानती। मैं सिर्फ़ यही जानती हूँ कि मैं हिन्दू हूँ।

हरि बाबू ने कहा—तुम जान रक्खो कि इतने दिन तक तुम कुँवारी रही। अब तक तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है। इतने ही से तुम हिन्दू-समाज मे अग्राह्य हो गई, तुम्हारी जाति जा चुकी है।

सुशीला ने कहा—इसका आप वृथा शोच न करें किन्तु मै आपसे फिर कहती हूँ—मै हिन्दू हूँ।

हरि बाबू ने कहा—परेश बाबू से जो धर्म-शिक्षा पाई थी, वह भी तुमने अपने नये गुरु के पैरो-तले विसर्जन कर दी।

सुशीला—मेरा धर्म क्या है सो अन्तर्यामी जानता है। उस बात पर मैं किसी के साथ कोई आलोचना करना नहीं चाहती। आप जान लीजिए, मैं हिन्दू हूँ।

हरि बाबू आपे से बाहर होकर बोल उठा—तुम चाहे जितनी बड़ी हिन्दू ही क्यों न बनो, उससे कोई फल न होगा। यह मैं तुमसे कहे जाता हूँ। गौरमोहन को तुम विनय न समझो। तुम अपने को हिन्दू-हिन्दू कहकर गला फाड़कर मर भी जाओगी तो भी गौर बाबू तुमको ग्रहण करे, ऐसी आशा तुम स्वप्न मे भी न करो। शिष्य को लेकर गुरुआई करना सहज है किन्तु इससे वे तुमको ले जाकर गृहिणी बनावे, इस बात की कभी मन मे कल्पना भी न करना।

रींधना-पकाना सब भूलकर सुशीला विद्युत्-वेग से खड़ी होकर बोली—आप यह क्या कह रहे है?

हरि बाबू—यही कह रहा हूँ कि गौरमोहन कभी तुमसे ब्याह न करेगे।

सुशीला की आँखे लाल हो गईं। वह बोली—विवाह? मैंने आपसे कहा नहीं है कि वे मेरे गुरु हैं?

हरि—सो तो कहा है। किन्तु जो नहीं कहा है, वह भी तो हम अपने बुद्धिबल से जान सकते हैं।

सुशीला—आप अभी यहाँ से चले जायँ। मेरा अपमान न करे। खैर, अब आप ऐसी बात न बोले। यह बात मैं

आज आपसे कह रखती हूँ कि आज से मैं आपके सामने बाहर न हूँगी।

हरि—हमारे आगे अब किस बिरते पर निकलोगी? अब तुमने कलेवर जो बदल डाला है! अब तुम हिन्दू रमणी! असूर्य्यम्पश्या हो! सूर्य भी तुम्हे नहीं देख सकेगा, मैं किस गिनती मे हूँ। परेश बाबू के पाप का घड़ा भर गया। वे इस ढलती उम्र मे अपनी करनी का फल भोगे। हम जाते हैं।

सुशीला खूब ज़ोर से रसोई-घर का द्वार बन्द करके बैठ रही और आँचल का कपड़ा मुँह मे ठूँसकर रोने की आवाज़ को दम साधकर रोकने लगी। हरि बाबू मुँह काला करके चला गया।

हरिमोहिनी दोनों का कथोपकथन सुन रही थी। आज उसने सुशीला के मुँह से जो सुना वह सुनने की उसे आशा न थी। उसका हृदय हर्ष से फूल उठा। वह बोली—नही होगा! मैं जो एकाग्र मन से अपने गोपीवल्लभ की पूजा करती हूँ वह क्या सब वृथा जायगी!

हरिमोहिनी ने तुरन्त अपने पूजा-गृह मे जाकर अपने ठाकुरजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और आज से उनका भोग कुछ और बढ़ा देने की प्रतिज्ञा की। इतने दिन उसकी पूजा शोक के सान्त्वना रूप मे शान्त भाव से होती थी; आज वह स्वार्थ का साधन रूप होते ही अत्यन्त उग्र, उत्तप्त और क्षुधातुर हो गई।

गौरमोहन ने सुशीला के सामने जिस प्रकार जी खोलकर सब बातें कही थीं उस प्रकार आज तक किसी से नहीं कही। इतने दिन तक वह अपने श्रोताओं को केवल अपने वाक्य, सत्य और उपदेश ही सुनाता आया है—किन्तु आज सुशीला के सामने उसने अपने हृदय के समस्त भाव को व्यक्त कर दिया। अपनी आत्मा को उसके आगे लाकर रख दिया। इस आत्म-प्रकाश के आनन्द से मानो उसका सारा सङ्कल्प पूरा हो गया। उसकी तपस्या के ऊपर मानों देवताओं ने प्रसन्न होकर अमृत बरसाया।

इस आनन्द के आवेश से ही गौरमोहन विना कुछ सोचे कई दिनों तक नित्य सुशीला के पास आता था। किन्तु आज हरिमोहिनी की बात सुनकर उसे स्मरण हो आया कि उसने इसी प्रकार की मुग्धता में फँस जाने के कारण किसी दिन विनय का यथेष्ट अपमान और उपहास किया था। आज अज्ञानतः अपने को उसी अवस्था में देख वह चौंक उठा। अयुक्त स्थान में बेख़बर सोया हुआ व्यक्ति धक्का खाकर जैसे धड़फड़ा उठता है उसी तरह गौरमोहन सावधान हो उठा। वह बराबर इस बात का प्रचार करता आया है कि संसार में अनेक प्रबल जातियों का बिलकुल ही लोप हो गया है, केवल भारतवर्ष ही एक ऐसा है जो दृढ़ भाव से नियम पालन करके अनेक शताब्दियों से धक्के खाने पर भी आज तक अपने को

बचाये हुए है। गौरमोहन उस नियम में तिलमात्र भी शैथिल्य स्वीकार करना नहीं चाहता। उसका कहना है कि भारतवर्ष का और तो सभी कुछ लूटा जा रहा है किन्तु उसने अपने धर्म-प्राण को इन सब कठिन नियम-संयमों के भीतर छिपा रक्खा है। उस पर किसी अत्याचारी राजपुरुष को हस्त-क्षेप करने का सामर्थ्य नहीं। जब तक हम लोग अन्य जाति के अधीन हैं तब तक अपने नियम को मानकर चलना होगा। नियम वही जिससे धर्म की रक्षा हो। अभी भले-बुरे पर विचार करने का समय नहीं है। जो प्रवाह में पड़कर डूब रहा है उसके जो हाथ में आ जाता है उसी को वह ज़ोर से पकड़ता है। उस समय वह यह नहीं विचारता कि वह अवलम्ब अच्छा है या बुरा। गौरमोहन यही कहता आया है, आज भी उसका कथन यही है। हरिमोहिनी ने जब उस गौरमोहन के आचरण की निन्दा की तब मानों उस निन्दा ने गजराज के साथ अंकुश का काम किया। अंकुश की चोट खाकर जैसे मत्त मातङ्ग सचेत होता है वैसे ही गौरमोहन भी सचेत हो गया।

गौरमोहन जब घर आ पहुँचा तब फाटक के सामने सड़क के किनारे बेञ्च पर बैठा महिम तम्बाकू पी रहा था। आज उसके आफ़िस की छुट्टी थी। गौरमोहन को भीतर जाते देख वह भी उसके पीछे गया और बोला—गौर भाई सुन लो, तुमसे एक बात कहनी है।

गौरमोहन को अपने कमरे मे ले जाकर महिम ने कहा—भाई! क्रोध मत करना, तुमसे एक बात पूछता हूँ। क्या तुमको भी विनय की हवा लग गई है? देखता हूँ, उस ओर बहुत जाना-आना हो रहा है।

गौरमोहन का मुँह विवर्ण हो गया। उसने कहा—कोई चिन्ता नहीं।

महिम ने कहा—जैसा लक्षण हम देख रहे हैं उससे कुछ कहा नहीं जाता। तुम समझते हो कि यह एक खाने की वस्तु है, उसको अच्छी तरह निगलकर फिर घर लौट आऊँगा, किन्तु उसके भीतर जो बनसी (काँटा) है उसका पता अपने मित्र की दशा देखने से ही लगेगा। ओफ्! क्या कहने को था, क्या कह रहा हूँ। असल बात तो अभी हुई ही नहीं। सुना है, ब्राह्म लड़की के साथ विनय का व्याह एकदम पक्का हो गया है। व्याह हो जाने पर उसके साथ हम लोगो का किसी तरह का कोई सम्पर्क न रहेगा। यह मैं तुमसे पहले ही कह रखता हूँ।

गौर—सम्पर्क कैसे रहेगा?

महिम ने कहा—अगर विनय का पक्ष लेकर माँ गड़बड़ करेगी तो ठीक न होगा। हम लोग गृहस्थ आदमी हैं—यों ही लड़के-लड़की का व्याह करना कठिन है, उस पर यदि घर मे ब्राह्म-समाज को टिकाओगे तो मुझे यहाँ से अपना डेरा-डण्डा उठाकर अन्यत्र ले जाना होगा।

गौर—यह कभी न होगा।

महिम—शशिमुखी के विवाह का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ समझो। मेरे समधी जितने वज़न की लड़की घर मे लेगे उसकी अपेक्षा तौल मे सोना अधिक लिये बिना न छोड़ेंगे। क्योंकि वे जानते हैं, देह नश्वर पदार्थ है, सोना उसकी अपेक्षा बहुत दिन टिकता है। औषध की अपेक्षा अनुपान की ही ओर उनका झुकाव ज़्यादा है। उनको समधी कहना ठीक नहीं, वे असमधी कहलाने योग्य है। कुछ ख़र्च होगा सही, किन्तु लोगों से मुझे बहुत शिक्षा मिली है। लड़के का ब्याह करते समय काम आवेगी। जी चाहता है, फिर एक बार इस नये ज़माने मे जन्म लेकर पिता को बीच मे बिठा आजकल के रिवाज के मुताबिक़ अपना विवाह पक्का करूँ; पुरुष-जन्म लेकर उसे सोलह आना सार्थक कर लूँ। पौरुष का अर्थ यही है कि कन्या के बाप को एकदम धराशायी कर दिया जाय। इससे बढ़कर बहादुरी की बात और क्या होगी! तुम चाहे जो कहो, तुम्हारे साथ मिलकर दिन-रात हिन्दू-समाज की जय मनाने का उत्साह नहीं होता, मुँह से बोली नहीं निकलती। समाज की बात सोचकर मूक होना पड़ता है। मेरे लाल की उम्र पूरे चौदह महीने की है। प्रथम कन्या उत्पन्न करके फिर भी कहीं कन्या का ही जन्म न हो, इस भय से सहधर्मिणी ने सन्तानोत्पत्ति मे पूरा समय लिया है। जो हो, इसी के विवाह होने तक तुम सब मिलकर

हिन्दू-समाज को बनाये रक्खो—इसके बाद देश के मनुष्य मुसलमान हो चाहे किरिस्तान, मैं कुछ न बोलूँगा।

गौरमोहन को उठते देख महिम ने कहा—इसी से मैं कहता हूँ कि शशिमुखी के विवाह मे तुम्हारे विनय को निमन्त्रण देना ठीक न होगा। इस बात पर फिर एक नया बखेड़ा खड़ा होगा। यह क्यो हो ? माँ को तुम अभी से सावधान कर दो।

गौरमोहन ने माँ के कोठे मे आकर देखा, आनन्दी चश्मा लगाये एक बही हाथ मे लिये कोई हिसाब जाँच रही है। गौरमोहन को देख उसने चश्मा उतारकर और बही बन्द करके कहा—बैठो।

गौरमोहन के बैठने पर आनन्दी ने कहा—तुमसे मुझे कुछ सलाह करनी है। विनय के व्याह की बात तो तुमने सुनी ही होगी।

गौरमोहन चुप रहा। आनन्दी ने कहा—विनय के चचा को यह व्याह पसन्द नही। इस व्याह का हाल सुनकर वे रुष्ट हो गये हैं। वे आवेंगे भी नही। परेश बाबू के घर मे यह व्याह होगा या नहीं, इसमे भी सन्देह है। अपने व्याह का सब बन्दोबस्त विनय को स्वयं करना होगा। इसी से मै कहती हूँ कि मेरे इस मकान का उत्तर तरफ़ वाला एक-तला तो किराये पर दे दिया गया है, लेकिन उसके ऊपर का घर ख़ाली पड़ा है। यदि इस दोमंज़िले पर विनय के व्याह का इन्तज़ाम ठीक हो तो अच्छा होगा।

गौरमोहन—अच्छा क्या होगा ?

आनन्दी ने कहा—मेरे न रहने से उसके व्याह मे कौन देख-भाल करेगा ? वह बड़ी उलझन मे पड़ जायगा। अगर यहाँ उसका व्याह होगा तो मैं अपने घर मे बैठी-बैठी सब बातों का प्रबन्ध कर दूँगी। किसी तरह की गड़बड़ न होने दूँगी।

गौर—यह न होगा।

आनन्दी—क्यों न होगा ? तुम्हारे पिता को मैंने राज़ी कर लिया है।

गौर—नहीं, यह व्याह यहाँ न हो सकेगा। मेरी बात मान लो।

आनन्दी—क्यो, विनय तो उनके मतानुसार व्याह नहीं करता है !

गौर—यह सब तर्क की बातें हैं। समाज के साथ वकालत नहीं चलती। विनय जो चाहे करे, उसकी ख़ुशी है। किन्तु इस व्याह मे हम लोग उसका साथ न देगे और न अपने मकान मे उसका व्याह ही होने देंगे। कलकत्ते जैसे शहर में घरो की कमी नहीं है। आख़िर उसका भी तो मकान है।

घर बहुत मिल सकते हैं, यह आनन्दी भी जानती थी। किन्तु विनय अपने घर का है, वह सबसे परित्यक्त होकर नितान्त दरिद्र की भाँति किसी के घर मे जाकर चुपचाप व्याह कर ले, यह उसके मन को अच्छा न मालूम होता था। इसी लिए उसने अपने ख़ाली मकान मे विनय का व्याह कर देने

का मन ही मन निश्चय किया था। इससे समाज के साथ कोई विरोध न करके वह अपने घर मे उन दोनों का विवाह देख तृप्त हो सकती।

गौरमोहन को इसमे अधिक आपत्ति करते देख आनन्दी ने लम्बी साँस लेकर कहा—यदि इसमे तुम्हारी इतनी असम्मति है तो कहीं अन्यत्र किराये का मकान लेना ही होगा। किन्तु इससे मेरे ऊपर काम का भार बहुत अधिक पड़ जायगा। यही सही। जब यहाँ उसका ब्याह नहीं होगा तब इस बात को सोचने से क्या फल।

गौर—इस विवाह मे तुमको कुछ देखने-सुनने की ज़रूरत नहीं।

आनन्दी—यह क्या कहते हो, अपने विनय के ब्याह मे मैं न देखूँ-सुनूँगी तो कौन देखे-सुनेगा।

गौर—यह बात कभी न होगी।

आनन्दी—विनय के साथ तुम्हारा मत नहीं मिलता इससे क्या तुम उसके साथ शत्रुता करोगे?

गौरमोहन ने कुछ उत्तेजित होकर कहा—माँ, यह बात तुमने ख़ूब सोचकर नहीं कही। आज मैं विनय के ब्याह मे जो हुलसकर योग नहीं दे सकता हूँ, इसका मेरे मन मे बडा दुःख है। विनय को मैं कितना चाहता हूँ यह और कोई चाहे न जाने पर तुम तो जानती हो। किन्तु यह स्नेह की बात नहीं, इसमे शत्रुता-मित्रता कुछ भी नहीं। विनय इसका

समस्त फलाफल जान-सुनकर ही इस काम मे प्रवृत्त हुआ है। हम लोगों ने उसको नही छोड़ा है, उसी ने हम लोगो को छोड़ दिया है। इसलिए अभी जो विच्छेद हुआ है उसके लिए उसे ऐसा कोई आघात न लगेगा जो कि उसका जाना हुआ न हो। जान-बूझ करके ही वह बन्धु-विच्छेद का दुःख सहने को तैयार हुआ है।

आनन्दी—विनय जानता है कि इस ब्याह से तुम्हारे साथ उसका कोई सम्बन्ध न रहेगा, यह ठीक है। किन्तु यह भी वह निश्चय जानता है कि शुभ कर्म मे मै उसे किसी तरह नहीं छोड़ सकूँगी। यदि विनय यह जानता कि मैं उसकी नव-विवाहिता स्त्री को आशीर्वाद दे अपनी पतोहू की तरह ग्रहण न कर सकूँगी तो वह कण्ठगत प्राण होने पर भी यह ब्याह न कर सकता। क्या मैं विनय के हृदय को नही जानती!

यह कहकर आनन्दी ने आँख के कोने से एक बूँद आँसू पोछ डाला। विनय के लिए गौरमोहन के मन मे जो कठिन पीड़ा थी वह बढ़ गई तो भी उसने कहा—माँ, तुम समाज मे हो और तुम समाज के पास ऋणी हो, यह बात भी तुमको याद रखनी होगी।

आनन्दी ने कहा—गोरा, यह बात मैं तुमसे कई बार कह चुकी हूँ कि समाज के साथ मेरा सम्बन्ध बहुत दिनों से टूट गया है, इस कारण समाज मुझसे घृणा करता है, मैं भी उससे दूर रहती हूँ।

गौरमोहन ने कहा—माँ, तुम्हारी इस बात से मैं सबसे अधिक खिन्न हूँ। इस बात की चोट मुझे बे-चैन कर देती है।

आनन्दी डबडबाई हुई आँखों से गोरा की ओर देखकर बोली—बेटा! भगवान् जाने, तुमको इस चोट से बचाने का सामर्थ्य मुझ मे नहीं।

गौरमोहन खड़ा होकर बोला—तो मुझसे क्या करने को कहती हो? मै विनय के पास जाता हूँ। मै उससे कहूँगा—वह अपने विवाह मे तुमको बुलाकर समाज के साथ तुम्हारे विच्छेद को और अधिक न बढ़ावे, क्योकि यह उसके लिए घोर अन्याय और स्वार्थपरता का काम होगा।

आनन्दी ने हँसकर कहा—अच्छा, तू जो कर सके सो कर। पहले उससे जाकर कह दे, पीछे देखा जायगा।

गौरमोहन के चले जाने पर आनन्दी बड़ी देर तक बैठकर सोचती रही। इसके बाद उठकर धीरे-धीरे अपने स्वामी के महल मे गई। आज एकादशी है, इसलिए आज कृष्णादयाल को रसोई बनाने से फुरसत है। उन्हे घेरण्ड-संहिता का एक नया भाषा-अनुवाद मिल गया था, उसको वे हाथ मे लिये मृगछाला पर बैठे पढ रहे थे।

आनन्दी को देखकर वे हड़बड़ा उठे। आनन्दी ने उनसे दूर ही चौकठ के पास बैठकर कहा—देखिए बड़ा अन्याय हो रहा है।

कृष्णादयाल सांसारिक न्याय-अन्याय से कोई सम्बन्ध न रखते थे, इसलिए उन्होने उदासीन भाव से पूछा—क्या अन्याय?

आनन्दी—गोरा को इस तरह भुलाये रखना उचित नहीं। उसका जीवन-वृत्तान्त साफ़-साफ़ उससे कह देना चाहिए।

गोरा ने जिस दिन प्रायश्चित्त करने की बात कही थी उस दिन कृष्णदयाल को भी इस बात का स्मरण हो आया था। इसके बाद योग-साधन की अनेक प्रक्रियाओं मे उलझ जाने से उन्हे उस बात को सोचने का अवकाश नहीं मिला।

आनन्दी ने कहा—शशिमुखी के व्याह की बात हो रही है। लक्षणों से मालूम होता है कि इस फागुन मे ही होगा। इसके पूर्व घर मे जितनी बार सामाजिक क्रिया-कर्म हुआ है उसमे मै कोई न कोई बहाना करके गोरा को साथ ले दूसरी जगह चली गई हूँ। इस दरमियान वैसा कोई बड़ा कार्य भी नहीं हुआ। किन्तु इस दफ़े शशि के व्याह मे उसको लेकर क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, यह बताइए। अन्याय रोज़ ही बढ़ता जा रहा है। मै दोनों शाम हाथ जोड़कर भगवान् से क्षमा माँगती हूँ। वह जो कुछ दण्ड देना चाहें मुझी को दे। किन्तु मुझे यह भय हो रहा है कि अब यह बात छिपी न रह सकेगी। गोरा के कारण भारी बखेड़ा खड़ा होगा। इस दफ़े आप आज्ञा दीजिए, मेरे भाग्य मे चाहे जो बदा हो, मैं सब बात खोलकर उससे कह दूँ।

कृष्णादयाल की तपस्या भ्रष्ट करने ही के लिए क्या इन्द्र-देव यह विघ्न खड़ा करना चाहते हैं। तपस्या अभी ख़ूब गाढ़ी हो उठी है। प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान और धारणा में

असाध्य साधन हो रहा है। आहार की मात्रा भी क्रम-क्रम से इतनी घट गई है कि पीठ पेट सटकर एक होने में अब विलम्ब नही है। ऐसे समय मे यह उत्पात कहाँ से आया।

कृष्णदयाल ने कहा—क्या तुम पागल हुई हो? यह बात आज प्रकाशित होने से मैं बड़ी विपत्ति मे फँसूँगा, मुझे इसका पूरा सबूत देना होगा। जवावदेही का पहाड़ मेरे सिर आ गिरेगा। पेन्शन तो मेरी बन्द होगी ही, शायद पुलिस भी छेड़-छाड़ करे। जो न होने का है सो हो गुज़रेगा। जो हो गया सो हो गया, उसे जाने दो। जहाँ तक सँभलकर चल सको चलो, अगर न चल सकोगी तो उसमे कोई विशेष दोष भी न होगा।

कृष्णदयाल ने यही निश्चय कर रक्खा था कि हमारी मृत्यु के अनन्तर जो होने को होगा वह होगा, अभी हम इस झंझट मे क्यों पड़े? जितने दिन जीते हैं, स्वतन्त्र होकर रहेगे। आँखे मुँदने पर किसका क्या होता है, यह कोई थोड़े ही देखने आता है।

क्या करना चाहिए, इसका कोई सिद्धान्त स्थिर न कर सकने के कारण आनन्दी उदास मुँह किये उठी। कुछ देर खड़ी रहकर बोली—देखते नही, आपका शरीर दिन-दिन कैसा होता जा रहा है?

आनन्दी की इस मूर्खता पर कृष्णदयाल ख़ूब ज़ोर से हँसे और बोले—शरीर! शरीर क्या!

इस सम्बन्ध मे कोई परामर्श सन्तोषजनक सिद्धान्त पर नहीं पहुँचा। कृष्णदयाल ने फिर घेरण्ड-संहिता मे मन लगाया। इधर उनके संन्यासी बाबा को लेकर महिम बाहर कमरे मे बैठकर उच्च कोटि के परमार्थतत्त्व की आलोचना मे प्रवृत्त था। "गृही को मोक्ष प्राप्त हो सकता है या नहीं ?" अत्यन्त विनीत और व्याकुलता भरे स्वर मे यह प्रश्न पूछकर वह इस तरह हाथ जोड़ मनोयोगपूर्वक एकान्त भक्ति और आग्रह के भाव से उसका उत्तर सुनने को बैठा था मानो मुक्ति पाने के लिए उसके पास जो कुछ है, सब त्यागने को तैयार हो। "गृही को मुक्ति नहीं, स्वर्ग मिल सकता है," यह कहकर संन्यासी बाबा महिम को किसी तरह शान्त करने की चेष्टा कर रहा था किन्तु वह किसी तरह मानता न था। उसको केवल मुक्ति चाहिए, स्वर्ग लेकर वह क्या करेगा। किसी तरह लड़की का व्याह हो जाने पर वह संन्यासी की चरणसेवा करके मुक्ति-साधन मे लग पड़ेगा। किसका सामर्थ्य जो उसे इस सङ्कल्प से रोक सके। किन्तु लड़की का व्याह तो सहज काम नहीं है। केवल एक बाबा दया करे तभी पार लग सकता है।

[६४]

बीच मे कुछ मुझसे भूल हो गई थी, इस बात को सोच-कर गौरमोहन पूर्व की अपेक्षा और भी कठोर हो उठा। वह समाज को भूलकर एक प्रबल मोह के पाले पड़ गया था,

इसलिए नियम-पालन की शिथिलता को ही उसने उसका कारण माना। प्रातःकाल की सन्ध्यादिक क्रिया समाप्त करके बैठक मे आते ही गौरमोहन ने देखा परेश बाबू बैठे है।

उसके हृदय के भीतर मानो एक प्रकार की बिजली दौड़ गई। परेश बाबू के साथ किसी सूत्र मे उसके जीवन की एक गुप्त आत्मीयता का योग है; इसे गौरमोहन के अङ्ग की सारी शिराओं तक ने स्वीकार किया। परेश को प्रणाम करके गौर-मोहन बैठ गया।

परेश ने कहा—विनय के ब्याह की बात तो तुमने जरूर ही सुनी होगी।

गौर—जी हाँ।

परेश—वह ब्राह्म मत से ब्याह करने को प्रस्तुत नही है।

गौर—तो उसको यह ब्याह करना भी उचित नहीं।

परेश कुछ हँसे। इस बात पर वे किसी तर्क मे प्रवृत्त न हुए। उन्होने कहा—हमारे समाज का कोई मनुष्य इस विवाह मे सम्मिलित न होगा। सुना है, विनय का कोई आत्मीय भी न आवेगा। अपनी कन्या की ओर से एक मात्र मैं ही हूँ। विनय की ओर, मालूम होता है, तुम्हे छोड़ और कोई नही है, इसलिए इस सम्बन्ध मे तुम्हारे साथ सलाह करने आया हूँ।

गौरमोहन ने सिर हिलाकर कहा—इस सम्बन्ध मे मेरे साथ क्या परामर्श होगा। मै तो इसमे सहमत नही हूँ।

परेश ने विस्मित भाव से गौरमोहन के मुँह की ओर देख-कर कहा—तुम सहमत नहीं हो।

परेश के इस विस्मय से गौर को कुछ लज्जा हुई। फिर उसने अपने मन को दृढ़ करके कहा—मैं इस कार्य के भीतर कैसे रहूँगा?

परेश ने कहा—मैं जानता हूँ कि तुम उसके मित्र हो। मित्र की आवश्यकता क्या अभी सबकी अपेक्षा अधिक नहीं है?

गौरमोहन—मैं उसका मित्र हूँ। किन्तु यही तो एक मात्र मेरा संसार में बन्धन नहीं है, इसकी अपेक्षा भी कोई दृढ़ बन्धन है।

परेश बाबू ने पूछा—गौर! क्या तुम्हें विनय के आचरण में किसी तरह का दोष या अधर्म देख पड़ता है?

गौर—धर्म की गति दो ओर है, एक नित्य की ओर और दूसरी लौकिक कार्य की ओर। धर्म जहाँ सामाजिक नियमों में प्रकट होता है वहाँ उसकी अवहेला नहीं की जा सकती—यदि अवहेला की जाय तो संसार नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।

परेश—धर्म के नियम असंख्य हैं। बहुत नियम ऐसे हैं जो एक दूसरे से नहीं मिलते। उनमें किस नियम को धर्म-मूलक मानें, यह विचारणीय है।

परेश बाबू ने गौरमोहन को एक ऐसी जगह में चोट पहुँ-चाई जहाँ उसके मन में आप ही एक चक्र चल रहा था और उसके द्वारा वह एक सिद्धान्त भी स्थिर कर बैठा था। इस कारण वह अपने हृदय के सञ्चित वाक्यों के प्रखर वेग से परेश बाबू

से भी निःसङ्कोच सब बातें बक गया। उसके कथन का सारांश यही कि यदि हम लोग नियम को न मानकर अपने समाज की बाध्यता स्वीकार न करें तो समाज के गम्भीरतम उद्देश्य के बाधक गिने जायँ। कारण, वह उद्देश्य बहुत गूढ़ है, उसको सब लोग सहसा नहीं देख सकते। इसलिए विचार न करके भी समाज को मानने की शक्ति हम लोगों मे रहनी चाहिए।

परेश बाबू ने बड़े ध्यान से आख़ीर तक गौरमोहन की सब बातें सुनी। जब वह अपना भाषण समाप्त कर अपनी प्रगल्भता पर कुछ संकुचित होने लगा तब परेश ने कहा—तुम्हारी इन बातों को मैं मानता हूँ। यह बात सत्य है कि प्रत्येक समाज के भीतर विधाता का कुछ विशेष उद्देश्य अवश्य रहता है। वह उद्देश्य सबको मालूम हो, सो भी नहीं। किन्तु उस उद्देश्य को स्पष्ट रूप से देखने की चेष्टा करना ही मनुष्य का कार्य है। वृक्ष-लताओं की भाँति अचेतन भाव से नियम मानते जाने मे मनुष्य-जीवन की सार्थकता नहीं।

गौर—मेरा कहना यही है कि पहले समाज को सब ओर से सर्वथा मानकर चले तभी समाज के सच्चे उद्देश्य के सम्बन्ध मे हमारा अनुभव ठीक हो सकता है। उसके साथ विरोध करके हम उसके उद्देश्य को केवल रोकते ही नहीं बल्कि उसको ठीक-ठीक समझ भी नहीं सकते।

परेश बाबू ने कहा—विरोध और बाधा के सिवा अन्य उपाय से सत्य की परीक्षा हो नहीं सकती। सत्य की परीक्षा

किसी प्राचीन काल मे विद्वानों के द्वारा हो जाने से चिरकाल तक वही सत्य स्थिर रहेगा यह बात नहीं है। समय-समय पर लोगों के पास बाधा और आघात के भीतर से सत्य को नये रूप मे आविष्कृत होना पड़ेगा। जो हो, मैं इन बातों के विषय में तर्क करना नहीं चाहता। मैं मनुष्य की व्यक्तिगत स्वाधीनता को मानता हूँ। व्यक्ति की उस स्वाधीनता के द्वारा आघात पहुँचा-कर ही हम ठीक जान सकते है कि कौन सत्य है और कौन झूठी कल्पना है। यह जानना और जानने की चेष्टा करना ही समाज के हित-साधन का प्रथम सोपान है।

यह कहकर परेश बाबू उठे। गौरमोहन भी उठ खड़ा हुआ। परेश बाबू ने कहा—मैंने सोचा था कि ब्राह्म-समाज के अनुरोध से इस विवाह से मुझे कुछ दूर ही रहना होगा। तुम विनय के मित्र की हैसियत से सब काम सम्पन्न कर दोगे। ऐसे ही मौक़े पर लोग रिश्तेदार से भी बढ़कर मित्र का भरोसा करते हैं। ऐसे ही सङ्कट मे मित्र की मित्रता देखी जाती है। किसी समाज का आघात उसे सहना नहीं पड़ता। किन्तु तुम भी जब विनय का परित्याग करना ही ठीक समझ रहे हो, तब मेरे ही ऊपर सब भार आ पड़ा। यह काम अब अकेले मुझी को करना होगा।

परेश बाबू कहाँ तक अकेले हैं, यह उस समय गौरमोहन न जान सका। शिवसुन्दरी उनके विरुद्ध थी, घर की लड़कियाँ भी प्रसन्न न थीं। हरिमोहिनी की आपत्ति के भय से

परेश बाबू ने सुशीला को इस विवाह मे सलाह करने के लिए बुलाया तक नही। उधर ब्राह्म-समाज के सभी लोग उनके प्रति बिगड़ उठे थे और विनय के चचा की ओर से उन्हे जो दो पत्र मिले थे, उनमे उनको कुटिल और छली कहकर अनेक गालियाँ दी गई थी।

परेश बाबू के जाते ही अविनाश और गौरमोहन के दल के दो एक व्यक्ति घर मे प्रवेश करके परेश बाबू की हँसी उड़ाने लगे। गौरमोहन ने कहा—जो भक्ति के पात्र है, उनकी यदि भक्ति न कर सको तो कोई हर्ज नही। लेकिन उनका उपहास करने की क्षुद्रता से तो बचो।

गौरमोहन को फिर अपने दल के लोगो के बीच अपने पूर्व नियमित काम मे योग देना पड़ा। किन्तु यह उसे रुचा नही, इस काम को वह अब काम नही समझता। इस काम मे कही कुछ जान नही। इस प्रकार केवल लिख-पढ़कर, वाद-विवाद करके या दल बाँधकर कोई काम होता हो सो नही प्रत्युत एक भारी अकाज होता है, यह बात गौरमोहन के मन मे इसके पूर्व कभी इस तरह नही खटकी थी। नई पाई हुई शक्ति से उसका नवाविष्कृत जीवन अपने को पूर्ण भाव से प्रवाहित करने का एक अत्यन्त परिष्कृत सत्य पथ ढूँढ़ रहा है—यह सब व्यर्थ की बातें अब उसे अच्छी नही लगती।

इधर प्रायश्चित्त-सभा की तैयारी हो रही है। इस आयोजन मे गौरमोहन ने विशेष उत्साह दिखाया है; यह

प्रायश्चित्त केवल जेलखाने की अशुचिता का नहीं है, इस प्रायश्चित्त के द्वारा वह सब ओर से पवित्र होकर फिर एक बार नया शरीर लेकर अपने कर्मक्षेत्र मे नया जन्म ग्रहण करना चाहता है। प्रायश्चित्त की व्यवस्था ली गई है, दिन भी स्थिर किया गया है। पूर्व और पश्चिम के विख्यात अध्यापको और पण्डितों को निमन्त्रण देने का उद्योग हो रहा है। गौरमोहन के दल मे जो लोग धनी थे, उन्होने कुछ रुपया भी जमा कर रक्खा है। उसके दल के सभी लोग समझ रहे हैं कि देश मे बहुत दिनों के बाद एक महान् यज्ञ हो रहा है। अविनाश ने गुप्त रूप से अपने सम्प्रदायवालों के साथ सलाह की है कि उस दिन सभा मे सब पण्डितों के द्वारा रोरी, चन्दन, फूल, अक्षत और दूब आदि मङ्गल-द्रव्यों से गौरमोहन को "हिन्दू-धर्म-प्रदीप" की उपाधि दी जायगी। इस सम्बन्ध मे संस्कृत के कई श्लोक लिखकर उसके नीचे समस्त ब्राह्मण पण्डितों के हस्ताक्षर कराये जायँ, और सुनहरे अक्षरो मे छपाकर, चन्दन की लकड़ी के सन्दूक़ मे रख उसको उपहार देना होगा। उसके साथ मैक्समूलर द्वारा प्रकाशित एक खण्ड ऋग्वेद ग्रन्थ —बहु-मूल्य मरक्को चमड़े की जिल्द बँधाकर—सबमे जो पुराने और मान्य अध्यापक होंगे उनके हाथ से, उसे भारतवर्ष का आशीर्वाद-स्वरूप दिलाया जायगा। इससे आजकल की धर्मभ्रष्टता के समय गौरमोहन ही एक सनातन वेद-विहित धर्म का यथार्थ रक्षक है, यह भाव अति सुचारु रूप से प्रकाशित होगा।

इस प्रकार उस दिन की कर्मप्रणाली को अत्यन्त हृद्य और फलप्रद बनाने के लिए गौरमोहन को बिना सूचना दिये ही उसके दल के सब लोग आपस मे विचार करने लगे।

[६५]

हरिमोहिनी को उसके देवर कैलास का पत्र मिला। वह लिखता है—"आपके चरणों की कृपा से यहाँ कुशल है, आप अपने कुशल-समाचार से हमारी चिन्ता दूर कीजिए।" कहना व्यर्थ है कि हरिमोहिनी ने जब से उनका घर छोड़ा है तब से वे इस चिन्ता को बराबर सहन करते आये है, तथापि कुशल-समाचार जानने के लिए आज तक उन लोगों ने कभी कोई चेष्टा नहीं की थी। किन्तु हरिमोहिनी से इस व्याह की वात सुनते ही अब उनकी चिन्ता असह्य हो उठी है। कैलास ने घर भर के लोगों की ओर से प्रणाम और कुशल-प्रश्न लिखकर अन्त मे लिखा था—आप जिस लड़की की बात लिखती हैं उसका सब हाल ख़ुलासा लिखिए। आपने कहा है, उसकी उम्र १२-१३ वर्ष की होगी। जान पड़ता है, लड़की बढ़नहार है, देखने मे कुछ वड़ी मालूम होती होगी। इससे कोई विशेष हानि नहीं। उसकी जो सम्पत्ति की बात लिखी है, उसमे उसका स्वत्व कैसा है यह जाँचकर लिखिए तो मैं अपने बड़े भाई को सूचित कर उनकी सलाह लूँगा। शायद उनकी असम्मति न होगी। लड़की की हिन्दू-धर्म मे निष्ठा सुनकर निश्चिन्त हुआ। किन्तु

इतने दिन तक वह ब्राह्म घर मे पली है इसलिए ऐसा करना जिसमे यह बात ज़ाहिर न हो। यह बात आप भी किसी से न कहे। आगामी पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण पर गङ्गा-स्नान करने का विचार है। यदि फ़ुरसत मिलेगी तो उसी समय आकर लड़की को देख लूँगा।

हरिमोहिनी ने इतने दिन किसी तरह कलकत्ते मे रहकर समय बिताया था। किन्तु जब उसके मन मे ससुराल देखने की आशा अंकुरित हुई तब वह एकदम अधीर हो उठी। विदेश का रहना उसे अत्यन्त क्लेशकर मालूम होने लगा। निर्वासन का प्रत्येक दिन उसे काले साँप की तरह डसने लगा। वह दिन-रात यही चाहती थी कि कब यहाँ से भागूँ। वह इस चेष्टा मे लगी कि अब सुशीला को किसी तरह राज़ी करके व्याह का दिन चुपचाप नियत कर ऊपर ही ऊपर काम निकाल लूँ। तो भी झटपट कोई काम करने का साहस उसको न हुआ।

हरिमोहिनी अवसर की प्रतीक्षा करने लगी और पहले से भी बढ़कर सुशीला पर सतर्क दृष्टि रखने लगी। पहले पूजा-पाठ मे उसका जितना समय लगता था उतना अब नही लगता। अब वह सुशीला को आँख की ओट करना नही चाहती।

सुशीला ने देखा, गौरमोहन का आना-जाना एकाएक बन्द हो गया। वह समझ गई कि हरिमोहिनी ने उससे ज़रूर कुछ कहा है। उसने मन मे कहा, नही आये तो क्या! वही मेरे गुरु हैं, वही मेरे गुरु हैं।

जो गुरु आँख के सामने सदा रहते हैं, उनकी अपेक्षा दृष्टिपथ से दूर रहनेवाले गुरु का ज़ोर ज़्यादा रहता है। क्योंकि तब शिष्य का मन गुरु के विद्यमान न रहने की त्रुटि को अपने अन्तःकरण के द्वारा पूरा कर लेता है। गौरमोहन के सामने रहने से सुशीला जहाँ पूछकर कोई बात समझती थी वहाँ अब उसका लेख पढ़कर उसकी बात को बिना प्रति-वाद किये स्वीकार करती है। जो बात उसकी समझ मे नही आती उसके लिए वह इतना ज़रूर कहती है, वे रहते तो समझा देते।

किन्तु गौरमोहन की वह तेजस्विनी मूर्ति देखने और गम्भीरता-पूर्ण वाक्य सुनने की उसकी तृष्णा क्या किसी तरह मिट सकती थी? इस चिन्ता से उसका शरीर दिन-दिन सूखने लगा। रह-रहकर सुशीला के मन मे इस बात का उद्वेग हो आता था। कितने ही लोग अनायास ही रात-दिन गौरमोहन का दर्शन पाते हैं, किन्तु उनके आगे उस दर्शन का मोल क्या है। वे उस दर्शन का मूल्य क्या जानेंगे?

इसी बीच एक दिन दोपहर के बाद ललिता ने आकर बड़े प्यार से सुशीला को गले लगाया और गद्गद कण्ठ से कहा—सुशीला बहन!

सुशीला—कहो बहन, क्या हाल है?

ललिता—सब ठीक हो गया।

सुशीला—कौन दिन नियत हुआ है?

ललिता—सोमवार।

सुशीला—मण्डप कहाँ होगा?

ललिता ने सिर हिलाकर कहा—मैं नहीं जानती, पिताजी जानते हैं।

सुशीला ने ललिता को भुजाओं से आवेष्टन करके कहा—ख़ुश हो न!

ललिता—ख़ुश क्यों न हूँगी!

सुशीला—जो तुमने चाहा था सो सब मिल गया। अब किसी के साथ झगड़ा करने की बात न रही। इसी से डरती हूँ, पीछे तुम्हारा उत्साह कम न हो जाय। उत्साह न रहने से किसके साथ झगड़ोगी?

ललिता ने हँसकर कहा—क्यों, क्या झगड़ा करनेवालों का अभाव है? अब बाहर खोजना न पड़ेगा।

सुशीला ने ललिता के गाल मे उँगली गड़ाकर कहा—हाँ, समझ गई। अभी से कलह का सब सामान दुरुस्त हो रहा है। मैं विनय से कह दूँगी। अब भी समय है, बेचारा सावधान हो जाय।

ललिता ने कहा—तुम्हारे बेचारे को अब सावधान होने का समय नहीं। अब उसके छूटने का कोई उपाय नहीं। जन्म-कुण्डली मे जो कष्ट लिखा था वह फलित हुआ। अब सिर पीटना और रोना मात्र है।

सुशीला ने गम्भीर भाव से कहा—मैं कितनी ख़ुश हुई हूँ सो तुमसे क्या कहूँ। विनय के सदृश स्वामी पाकर तुम उसके योग्य हो सको, यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है।

ललिता—मैं किसी के योग्य होऊँ इसके लिए तो प्रार्थना और मेरे योग्य कोई हो इसके लिए प्रार्थना नहीं ! वाह ! इस सम्बन्ध मे एक बार उनसे बात करके देखो, उनका मत क्या है सो सुन रक्खो। नहीं तो तुम्हारे मन मे भी अनुताप होगा कि इतने बड़े अद्भुत मनुष्य का आदर इतने दिन तक हमसे कुछ क्यो न हो सका। तुम अपनी इस अज्ञानता पर अब भी बिना पछताये न रहोगी।

सुशीला ने कहा—जो हो, इतने दिन पर तो उसे तुम्हारा जैसा एक जौहरी मिला है। उस अनमोल रत्न के मूल्य मे जो तुम सर्वस्व देना चाहती हो उसमे अब पछताने की कोई बात नहीं। मेरे सदृश गवाँर से आदर पाने की उसे अब ज़रूरत ही न होगी।

"होगी नहीं, ख़ूब होगी !" यह कहकर ललिता ने ख़ूब ज़ोर से सुशीला का गाल मल दिया। वह "हिस" कर उठी। ललिता ने फिर हँसकर कहा—मुझ पर तुम्हारा आदर बराबर बना रहना चाहिए। यह न होगा कि मुझे धोखा देकर किसी और का आदर करने लग जाव।

सुशीला ने ललिता के गाल पर गाल रखकर कहा—किसी को नहीं, किसी को न दूँगी—तुम चाहे जिसे दो।

ललिता ने कहा—किसी को नहीं ! एक दम किसी को नहीं ?

सुशीला ने सिर्फ़ अस्वीकार-बोधक सिर हिलाया। तब ललिता ज़रा हटकर बैठी और बोली—देखो बहन, तुम तो जानती हो, तुम और किसी को आदर देती तो मै कदापि सह्य न कर सकती। इतने दिन तक मैंने तुमसे न कहा था, आज कहती हूँ। जब गौरमोहन बाबू मेरे घर आते थे तब—बहन, मुझे जो कुछ कहना है, आज अवश्य कहूँगी। मैंने तुमसे कभी कोई बात नहीं छिपाई। किन्तु नहीं जानती, यह एक बात मैने तुमसे कभी क्यों नहीं कही। इसके लिए मेरे मन मे बड़ा ही कष्ट है। वह बात आज बिना कहे मैं तुम्हारे पास से बिदा न हो सकूँगी। जब गौर बाबू मेरे घर आते थे तब मुझे बड़ा क्रोध होता था। क्रोध क्यों होता था? तुम समझती थी कि मैं कुछ जानती ही नहीं। मैंने देखा, तुम मेरे आगे उनका नाम भी न लेती थी। इससे मेरे मन मे और भी क्रोध होता था। तुम जो मुझसे बढ़कर उनको प्यार करती थी यह मुझे असह्य मालूम होता था। नहीं बहन, आज मुझे वह बात कहने दो, उसके निमित्त मैंने कितना कष्ट पाया है उसे मैं क्या कहूँ। आज भी तुम मुझसे वह बात न कहोगी, यह मैं जानती हूँ किन्तु आज न कहने से अब मुझे क्रोध न होगा। मैं बहुत ख़ुश हूँगी, अगर तुम्हारा-

सुशीला ने झट ललिता का मुँह बन्द करके कहा—तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, वह बात मुँह पर न लाओ। वह बात सुनने से मैं धरती मे समा जाना चाहती हूँ।

ललिता—क्यो वहन, वे क्या—

सुशीला व्याकुल होकर वोल उठी—नहीं, नहीं, ललिता, पागल की तरह बात न कर; जो वात मन मे न समा सके वह मुँह मे न ला।

ललिता ने सुशीला के इस सङ्कोच से खिसियाकर कहा—वहन, यह तुम्हारी सरासर भूल है। मैंने ख़ूब सोचकर देखा है, मैं तुमसे सच कहती हूँ—

ललिता का हाथ छुड़ाकर सुशीला कोठे से वाहर हो गई। ललिता उसके पीछे दौड़कर उसे पकड लाई और वोली—अच्छा, अच्छा, अव मैं न कहूँगी।

सुशीला—फिर कभी !

ललिता—मैं इतनी वडी प्रतिज्ञा न कर सकूँगी। यदि मेरा दिन आवेगा तो कहूँगी नहीं तो नहीं। यह वात आज यहीं तक रही।

इधर कई दिनों से हरिमोहिनी छिपे-छिपे सुशीला पर नज़र रखती थी, और वरावर उसके पास ही पास फिरा करती थी। सुशीला इस वात को समझ गई थी और हरिमोहिनी की यह सन्देह-पूर्ण सतर्कता उसके हृदय पर वोझ सी मालूम हो रही थी। भीतर ही भीतर वह कुढ़ती थी, परन्तु कुछ वोल न सकती थी।

ललिता के चले जाने पर सुशीला अत्यन्त क्लान्त-चित्त होकर टेवल के ऊपर दोनो हाथों के वीच सिर रखकर रोने लगी। नौकर घर मे वत्ती जलाने आया था, उसे सुशीला ने

मना कर दिया। तब हरिमोहिनी का सन्ध्या-आरती का समय था। वह ऊपर से ललिता को जाते देख सायङ्कालिक कृत्य समाप्त किये विना नीचे उतर आई और सुशीला के घर मे जाकर बोली—राधा रानी!

सुशीला झट आँखें पोछकर उठ खड़ी हुई।

हरिमोहिनी—क्या हो रहा है?

सुशीला ने इसका कुछ उत्तर न दिया।

हरिमोहिनी ने कठोर स्वर मे कहा—यह सब क्या हो रहा है? मेरी तो समझ मे ही नही आता।

सुशीला—मौसी, तुम दिन-रात मेरे ऊपर ऐसी सतर्क दृष्टि क्यों रखती हो?

हरिमोहिनी—क्यों रखती हूँ सो क्या तुम नहीं जानती? तुम न कुछ खाती हो न पीती हो, मुँह मूँदकर रोती रहती हो। यह कैसा लक्षण है? मैं बच्ची नहीं हूँ, क्या मैं इतना भी नहीं समझ सकती?

सुशीला—सच पूछो तो तुम कुछ नहीं समझतीं। तुम ऐसी भयानक भूल समझ रही हो, ऐसा नासमझी का काम कर रही हो, जो अब मुझसे किसी तरह बरदाश्त नहीं होता।

हरिमोहिनी—अच्छा, अगर मैं ग़लत समझती हूँ तो तुम अच्छी तरह समझाकर क्यों नहीं कहतीं?

सुशीला ने सब सङ्कोच हटाकर कहा—अच्छा तो मैं कहती हूँ। मैंने अपने गुरु से एक ऐसी शिक्षा पाई है जो मेरे

लिए बिलकुल नई है, उसको पूर्ण रूप से ग्रहण करने के लिए विशेष शक्ति की आवश्यकता है। मुझमे वह शक्ति नही है, इसी की मुझे चिन्ता है। मैं और किसी बात के लिए कुछ नही सोचती। किन्तु तुम हमारे सम्बन्ध को बुरी दृष्टि से देखती हो, तुमने मेरे गुरु को अपमानित करके बिदा कर दिया है, तुमने उनसे जो कुछ कहा है सब तुम्हारी भूल है। तुम मेरे विषय मे जो सोचती हो, सब झूठ है। तुम अन्याय कर रही हो। उनके सदृश महान् पुरुष को तुम लाञ्छित कर सको ऐसा तुम्हारा सामर्थ्य नहीं। किन्तु तुमने मुझ पर ऐसा अत्याचार क्यो किया है? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?—यह कहते-कहते उसका गला भर आया। वह वहाँ से उठकर दूसरे कोठे मे चली गई।

हरिमोहिनी हतबुद्धि हो वहीं बैठी रही। उसने मन ही मन कहा—अरे दादा! ऐसी बात तो मैंने सात जन्म मे भी न सुनी थी।

सुशीला को कुछ ठण्डी होने का समय देकर कुछ देर बाद हरिमोहिनी उसे खाने के लिए बुला ले गई। जब वह खाने को बैठी तब हरिमोहिनी ने कहा—देखो राधा रानी, मेरी उम्र कम नहीं है, मेरे सब बाल पक गये। अब मैं बुढ़िया हुई। हिन्दू-धर्म मे जो-जो काम करना चाहिए वह बालपन से ही करती आती हूँ और बहुत कुछ देखा-सुना भी है। तुम यह सब कुछ नहीं जानतीं। इसी लिए गौरमोहन तुम्हारा गुरु बनकर तुम्हे ठग

रहा है। मैंने तो उसकी बातें कुछ-कुछ सुनी हैं। उनमें कहीं शास्त्र-सम्बन्धी विषय का लेश नहीं। वह सब अपने बनाये शास्त्र की बातें करता है। मेरे पास उसकी सब क़लई खुल गई है। तुम कल की लड़की हो, यह सब बातें क्या जानोगी! मैंने सच्चे गुरु से उपदेश पाया है। मैं तुमसे कहे देती हूँ, तुमको यह कुछ न करना होगा। जब समय आवेगा तब सब कुछ आप ही हो जायगा। मेरे जो गुरु हैं वे ऐसे धूर्त नहीं है। वे तुमको मन्त्र देंगे। तुम डरो मत, जैसे होगा मैं तुमको हिन्दू-समाज में ले आऊँगी। तुम ब्राह्म-घर में थी या न थी, यह कौन जानता है। तुम्हारी उम्र कुछ अधिक हो गई है, इससे क्या। ऐसी बड़ी-बड़ी तो बहुत लड़कियाँ हैं। तुम्हारी जन्मपत्री तो किसी ने देखी नहीं है। और जब तुम्हारे पास रुपया-पैसा है तब किसी तरह का कोई विघ्न न होगा। सब हो जायगा। तुम घबराओ मत। मल्लाह के लड़के को कायस्थ बनकर समाज में चलते मैंने अपनी आँख से देखा है। मैं हिन्दू-समाज में ऐसे कुलीन ब्राह्मण के घर तुमको चला दूँगी कि किसी की मजाल नहीं, जो कुछ बोल सके। वही तो समाज के मुखिया है। इसके लिए तुमको इतनी असाध्य साधना, इतनी गुरु-भक्ति न करनी होगी। इतना रो-धोकर मरना न होगा।

हरिमोहिनी जब ये बातें विशद रूप से कह रही थी, तब सुशीला को भोजन विषवत् मालूम हो रहा था। वह मुँह में कौर देती थी, परन्तु निगला नहीं जाता था। उसने बड़ी

मुश्किल से बरज़ोरी कुछ खाया। जो न खाती तो हरिमोहिनी फिर उसके अल्प-आहार पर टीका-टिप्पणी करने लग जाती, जो कि उसे किसी तरह सह्य न होती।

हरिमोहिनी ने जब सुशीला से कोई उत्तर न पाया तब उसने मन में कहा—यह बड़े गुरु की चेली है, यह मेरा कहा न मानेगी। इधर यह हिन्दू-हिन्दू कहकर रोती है—उधर उतने बड़े सुयोग की बात पर ध्यान तक नहीं देती। न प्रायश्चित्त करना होगा, न कोई कैफ़ियत देनी होगी, सिर्फ़ इधर-उधर थोड़ा-बहुत रुपया ख़र्च करके अनायास ही समाज में मिल जायगी। इसमें भी जिसको उत्साह नहीं, वह अपने को हिन्दू कहती है, ब्राह्म होकर हिन्दू बनने का बड़ा शौक़ है। गौरमोहन कितना बड़ा धूर्त है और वह सुशीला पर कितना बड़ा प्रभाव डाले हुए है, यह सब हरिमोहिनी बख़ूबी समझ गई।

सुशीला के पास जो कुछ अर्थ (द्रव्य) है, उसी को हरिमोहिनी ने अनर्थ का मूल समझा। अभी जिस जाल में सुशीला फँसी है उसका परिणाम पीछे क्या होगा, यह भी हरिमोहिनी की दृष्टि पर चढ़ गया। हरिमोहिनी इस धूर्त के हाथ से सुशीला को सम्पत्ति-सहित किसी तरह छुड़ाकर अपने देवर के हाथ सौंप देने ही में कुशल समझने लगी। किन्तु सुशीला का मन कुछ मुलायम हुए बिना काम न चलेगा, यह सोच उसके हृदय को पिघलाने की आशा से वह दिन-रात सुशीला को अपनी ससुराल और अपने देवर का सुयश सुनाने लगी।

उनका प्रभाव कितना बड़ा है, उनमे कितनी बड़ी योग्यता है, उनका कैसा असाधारण सामाजिक सम्मान है, समाज मे वे कैसा असाध्य साधन कर सकते हैं—विविध दृष्टान्तो के साथ वह इन सब बातों का वर्णन करने लगी। उनसे विरोध करके कितने ही निष्कलङ्क लोग समाज से पतित होने का कष्ट भोग चुके है और उनके शरणापन्न होकर कितने ही भ्रष्टाचारी मनुष्य मुसलमान के हाथ की पकाई रोटी और मुर्ग़ी खाकर भी हिन्दू-समाज का अत्यन्त बीहड़ रास्ता हँसी-ख़ुशी से पार कर गये हैं। नाम-धाम के विशेष विवरण द्वारा उसने उन सब घटनाओं को विश्वासयोग्य बनाकर कहा।

शिवसुन्दरी के घर सुशीला न जाय, यह शिवसुन्दरी की इच्छा सुशीला से छिपी न थी। शिवसुन्दरी को अपने स्पष्ट व्यवहार के सम्बन्ध मे कुछ गर्व था; दूसरे के साथ सङ्कोच-रहित होकर कठोर आचरण करते समय वह अपने इस गुण की प्रायः घोषणा करती थी। इसलिए शिवसुन्दरी के घर मे सुशीला किसी तरह का आदर पाने की प्रत्याशा न करे, यह सरल भाषा मे उसको व्यक्त हो चुका था। सुशीला यह भी जानती थी कि मैं उनके घर जाऊँ-आऊँ तो परेश बाबू को अपने घर मे बड़ी अशान्ति भोगनी पड़ेगी। इस कारण वह विशेष प्रयोजन न रहते उनके घर न जाती थी। यह जानकर ही परेश प्रतिदिन दो-एक बार स्वयं सुशीला के घर आकर उससे भेट कर जाते थे।

इधर कई दिनों से परेश बाबू अनेक प्रकार की चिन्ताओ और कामो मे फँस जाने के कारण सुशीला के यहाँ न जा सके। सुशीला रोज़ ही उनके आने की राह देखती थी और उसके मन मे कुछ कष्ट और सङ्कोच भी होता था। परेश के साथ जो एक धार्मिक शुभ सम्बन्ध है वह कभी टूट नही सकता, यह वह निश्चय जानती थी किन्तु बाहर के दो-एक बड़े-बड़े सूत्रो मे खिच जाने की वेदना भी उसे चैन नहीं देती थी। इधर हरिमोहिनी उसे दिन-रात तङ्ग किये रहती है, इसलिए सुशीला आज शिवसुन्दरी की अप्रसन्नता भी स्वीकार करके परेश बाबू के घर गई। उस समय सूर्य पश्चिम की ओर बहुत नीचे उतर पड़े थे, जिससे तिमञ्जिले मकान की छाया दूर तक फैल गई थी। उसी छाया मे परेश बाबू सिर झुकाये अपने बाग़ की सड़क पर धीरे-धीरे अकेले टहल रहे थे। सुशीला उनके पास जा खडी हुई और बोली—पिताजी, आप कैसे हैं?

परेश बाबू ने सहसा अपनी चिन्ता मे बाधा पाकर कुछ देर तक खड़े हो राधा रानी के मुँह की ओर देखा, और कहा—राधा, मैं अच्छी तरह हूँ।

दोनो घूमने लगे। परेश बाबू ने कहा—सोमवार को ललिता का ब्याह होगा।

सुशीला सोच रही थी कि इस विवाह मे किसी सलाह या सहायता के लिए मेरी बुलाहट क्यों न हुई और यह बात वह उनसे पूछना चाहती थी, परन्तु पूछने का साहस न होता

था, क्योंकि उसकी ओर भी इस दफ़े कोई बाधा आ पड़ी थी। नहीं तो वह बुलाने की अपेक्षा न रखती।

सुशीला के मन मे जिस बात का सोच हो रहा था, परेश बाबू ने ठीक उसी बात का उत्थान किया। कहा—राधा, इस दफ़े मैं तुमको बुला न सका।

सुशीला—क्यों नही बुला सके ?

सुशीला के इस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर परेश बाबू उसके मुँह की ओर देखने लगे। सुशीला अब स्थिर न रह सकी, वह ज़रा सिर झुकाकर बोली—यह सोचकर कि मेरे मत में कुछ परिवर्तन हो गया है।

परेश—हाँ, यही सोच रहा था। मैं तुमसे अनुरोध कर तुम्हे सङ्कोच मे डालना नहीं चाहता था।

सुशीला—मैंने आपसे सब बातें कहने का निश्चय किया था, किन्तु आपके दर्शन भी दुर्लभ हो गये, कहती किससे। इसी लिए आज मैं यहाँ आई हूँ। मैं अपने मन का भाव स्पष्ट रूप से आपके निकट प्रकट कर सकूँ, यह योग्यता मुझमे नहीं है। मुझे इसी का डर है, कदाचित् सब बाते आपके सामने मुझसे ठीक-ठीक न कही जा सकें।

परेश—मै जानता हूँ, ये सब बातें स्पष्ट कहना सहज नहीं है। तुमने जिस पदार्थ को अपने मन मे केवल भाव के भीतर पाया है उसको तुम अनुभव मात्र कर सकती हो किन्तु वाक्य द्वारा उसका स्वरूप नही दरसा सकती।

सुशीला ने सन्तोष पाकर कहा—हाँ, यही ठीक है। किन्तु मेरा अनुभव ऐसा प्रबल है कि आपसे क्या कहूँ। मालूम होता है, जैसे मैंने नया जीवन पाया हो, नई चेतना पाई हो, इस तरह मैंने कभी आज तक अपने को नही देखा था। इतने दिन मानों मेरे साथ मेरे देश के व्यतीत और भविष्य काल का कोई सम्बन्ध ही न था। किन्तु वह विश्वव्यापी सम्बन्ध कितना बड़ा सत्य है, यह ज्ञान मैंने आज अपने हृदय मे ऐसे अद्भुत रूप से पाया है कि अब उसे किसी तरह भूल नही सकती। मैं आपसे सच कहती हूँ, मै हिन्दू हूँ, यह बात पहले किसी तरह मेरे मुँह से नही निकल सकती थी। किन्तु अब मेरा मन बड़ी दृढ़ता के साथ निःसङ्कोच हो कह रहा है, मैं हिन्दू हूँ। इससे मैं एक विशेष आनन्द का अनुभव कर रही हूँ।

परेश ने कहा—क्या इस बात का अङ्ग-प्रत्यङ्ग सभी सोच-कर देखा है?

सुशीला—सभी सोचकर देखने की शक्ति क्या मुझमे है? किन्तु मैंने इसके सम्बन्ध की अनेक पुस्तकें पढ़ी है, इस पर कई बार आलोचना भी की है, परन्तु यह तब की बात है जब मैंने इस गम्भीर विषय को ऐसे बृहत् रूप मे देखना नही सीखा था। हिन्दू के जिस छोटे से छोटे व्यवहार को मैं अब बड़ा मानती हूँ, उसे देखकर पहले मेरे मन मे बड़ी घृणा होती थी।

परेश बाबू ने उसकी बात सुनकर आश्चर्य माना। वे जान गये कि सुशीला के मन मे कुछ ज्ञान का सञ्चार हुआ

है। वह एक सत्य वस्तु पाने का अनुभव कर रही है। वह अज्ञानी की भाँति कुछ न समझ केवल एक अज्ञात पथ से कर्म-प्रवाह मे बहती नही जा रही है।

सुशीला ने कहा—मैं अपने देश से, अपनी जाति से रहित एक साधारण मनुष्य हूँ, ऐसी बात क्यो बोलूँ? मैं यह क्यों न कहूँ कि मैं हिन्दू हूँ।

परेश ने हँसकर कहा—बेटी, तुम्हारे इस कथन का आशय मैं समझ गया। अर्थात् तुम मुझी से पूछ रही हो कि तुम अपने को हिन्दू क्यों नहीं कहते। सोचकर देखने से इसका कोई भारी कारण नहीं है। यदि कुछ कारण है तो यही कि हिन्दू लोग मुझे हिन्दू नही मानते और जिनके साथ मेरा धर्म-मत मिलता है वे अपने को हिन्दू नहीं कहते।

सुशीला चुप-चाप सोचने लगी। परेश ने कहा—मैं तो तुमसे कही चुका हूँ। ये सब प्रधान कारण नही, ये केवल बाह्य कारण हैं। इन बाधाओं को न मानने से भी काम चल सकता है। किन्तु इसके भीतर एक गम्भीर कारण है। हिन्दू समाज मे प्रवेश करने का कोई मार्ग नही, खिड़की-झरोखे हैं भी तो कोई सदर रास्ता नही। यह समाज समस्त मानव-जाति का समाज नही। दैववश जो हिन्दू के घर मे जन्म लेते हैं, यह केवल उन्ही का समाज है।

सुशीला—सब समाज तो ऐसे ही हैं।

परेश—नही, कोई-कोई समाज बहुत बड़े हैं। मुसलमान समाज का सिंहद्वार सब मनुष्यों के लिए खुला है। ईसाई-समाज भी सभी को बुला रहा है। जो समाज किरिस्तान समाज के अङ्ग हैं उनमे भी सब लोगों को जाने का अधिकार है। अगर मैं अँगरेज़ होना चाहूँ तो यह एकदम असम्भव नहीं। इँगलैंड मे रह करके वहाँ के नियमानुसार चलने से मैं अँगरेज़-समाज मे मिल जा सकता हूँ। इसके लिए किरिस्तान होने की भी ज़रूरत नही। अभिमन्यु व्यूह के भीतर प्रवेश करना जानता था, बाहर निकलना न जानता था। हिन्दू-समाज ठीक इसके उलटा है। उस समाज मे प्रवेश करने का मार्ग एकदम बन्द है, निकलने के सैकड़ो मार्ग खुले हुए हैं। जिसमे आमद का नाम नही और ख़र्च बेहिसाब है, वह समाज कितने दिन टिक सकता है ?

सुशीला—तथापि, इतने दिनो मे भी तो हिन्दू-समाज का लोप नही हुआ है, वह अब तक क़ायम है।

परेश—समाज का लोप सहसा नही होता, इसके लिए बहुत समय चाहिए। इसके पूर्व हिन्दू-समाज की खिड़की खुली थी। तब इस देश की अनार्यजाति हिन्दू-समाज मे प्रवेश करना एक गौरव की बात समझती थी। इधर मुसलमानी अमल-दारी मे देश के प्रायः सभी राजाओ, महाराजाओ और ज़मींदारों का प्रभाव यथेष्ट था, इस कारण समाज से किसी का सहज ही बाहर हो जाना कठिन था। समाज की सीमा बड़ी मज़बूत

थी। सहसा कोई उसका उल्लङ्घन न कर सकता था। जाति-धर्म के लिए लोग प्राण को हथेली पर लिये रहते थे। सबके ऊपर सामाजिक शासन का दबाव था। अब अँगरेज़ इस देश के शासक हुए हैं, वे क़ानून के मुताबिक़ सबकी रक्षा करते हैं। इस क़ानून से हिन्दू-समाज का वैसा कोई सम्बन्ध नहीं जो वह उसकी स्वतन्त्रता मे बाधा पहुँचा सके। जो, जब चाहे, जिस समाज मे जाय, उसका निरोध नहीं है। इसी से कुछ दिनों से देखा जा रहा है, भारतवर्ष मे हिन्दुओ की संख्या घट रही है और मुसलमानों की बढ़ रही है। अगर यह क्रम जारी रहा तो यह देश यवन-प्रधान हो उठेगा। तब इसको हिन्दुस्तान कहना ही अन्याय होगा।

सुशीला ने व्यथित होकर कहा—इसका निवारण करना क्या हम लोगो को उचित नहीं है? क्या हम लोग भी हिन्दू-समाज से बाहर हो उसकी संख्या घटाकर उसके लोप का कारण हो? अभी तो चारो ओर से उसे ख़ूब मज़बूती के साथ पकड़ रखने का समय है।

परेश बाबू ने स्नेह-भरी दृष्टि से सुशीला की ओर देखकर कहा—क्या हम लोग इच्छा करने ही से किसी को पकड़-कर रख सकते और उसे बचा सकते है? रक्षा के लिए एक सांसारिक नियम है। उस स्वाभाविक नियम का जो त्याग करता है, उसे स्वभावतः सब लोग त्याग देते हैं। हिन्दू-समाज मनुष्य का अपमान करता है, उसे कुत्ते-बिल्ली से भी

नीच समझता है, इसलिए आजकल के समय मे उसको अपनी रक्षा करना कठिन हो गया है। क्योंकि अब तो वह परदे के भीतर बैठा नहीं रह सकेगा। अब पृथ्वी के चारो ओर का रास्ता खुल गया है। चारो ओर से मनुष्य आकर उस पर विचरण कर रहे हैं। शास्त्र-संहिता के वाक्यों की दीवाल खड़ी कर, उसकी आड़ मे रह, वह अपने को सब के सम्पर्क से किसी तरह बचाकर नहीं रख सकेगा। हिन्दू-समाज यदि अब भी अपनी मण्डली के भीतर एकता का बल न जुटा-कर क्षय रोग को ही आदर दे तो बाहर के मनुष्यो का यह अबाध सम्पर्क उसके लिए एक साङ्घातिक रोग हो जायगा।

सुशीला खेद के साथ बोली—मैं यह सब नहीं जानती। किन्तु यदि यही सत्य है, यदि सब इसको छोड़ने ही को बैठे हैं तो ऐसे दिन मे मैं इसे छोड़ न सकूँगी। हम लोग भारत की सन्तान होकर आज इस दुर्दिन के समय इस रोगग्रस्त समाज के सिरहाने क्यो न खड़े होगे? हमे अपने इस क्षयरोगी समाज की सेवा छोड़ अन्य समाज मे जाना कदापि उचित नहीं।

परेश ने कहा—बेटी, तुम्हारे मन मे जो भाव जाग उठा है, उसके विरुद्ध मैं कोई बात न बोलूँगा। तुम उपासना के द्वारा मन को स्थिर करके सब बातों को विचारकर देखो। सब बातें धीरे-धीरे तुम्हे आप ही मालूम हो जायँगी। जो सबकी अपेक्षा बड़े हैं, उनको देश और मनुष्य के आगे हलका

मत समझो। इससे न तुम्हारा मङ्गल होगा और न देश का ही। मैं यही समझ एकान्त चित्त से उन्हीं के पास आत्मसमर्पण करना चाहता हूँ। तभी मैं देश का और प्रत्येक मनुष्य का सच्चा प्यारा और सत्य सेवक हो सकूँगा।

इसी समय एक आदमी ने आकर परेश बाबू के हाथ मे एक चिट्ठी दी। परेश बाबू ने कहा—चशमा नहीं है, कुछ अँधेरा भी हो गया है। सुशीला तुम्हीं चिट्ठी पढ़ो।

सुशीला ने चिट्ठी पढ़कर उन्हे सुना दी। ब्राह्म-समाज की एक कमेटी से उनके पास यह पत्र आया है, उसके नीचे अनेक ब्राह्म-समाजियों के हस्ताक्षर हैं। पत्र का सारांश यही है कि परेशबाबू ने ब्राह्म-मत के प्रतिकूल अपनी कन्या के विवाह से सम्मति दी है और वे उस विवाह मे भी योग देने को प्रस्तुत हुए हैं। ऐसी अवस्था मे ब्राह्म-समाज किसी तरह उन्हें सभ्य-श्रेणी मे नहीं रख सकता। यदि उनको इस विषय मे कुछ कहना हो तो आगामी रविवार के पहले ही उनके हाथ का पत्र सभा के पास आना चाहिए। उस दिन उस पर विचार करके अधिकांश लोगों के मत से अन्तिम निष्पत्ति होगी।

परेशबाबू ने चिट्ठी लेकर पाकेट मे रख ली। वे फिर धीरे-धीरे टहलने लगे। सुशीला भी उनके पीछे-पीछे घूमने लगी। क्रमशः साँझ का अँधेरा घना हो उठा। बाग़ के दाहिने पार्श्व की गली मे रोशनी बलती देख पड़ी। सुशीला ने कोमल स्वर मे कहा—आपके उपासना करने का समय हो गया है। आज मैं

आपके साथ उपासना करूँगी।—यह कहकर सुशीला उनका हाथ पकड़ उन्हे उपासना-गृह मे ले गई। वहाँ पहले ही से आसन विछा था और एक मोम-बत्ती जल रही थी। परेशबाबू ने आज बड़ी देर तक चुपचाप उपासना की। अन्त मे एक छोटी सी प्रार्थना करके वे आसन से उठ पड़े। बाहर आते ही देखा, उपासना-गृह के दर्वाज़े के पास वाहर ललिता और विनय चुपचाप बैठे हैं। उन दोनो ने झट उनके पैर छूकर प्रणाम किया। परेशबाबू ने उनके सिर पर हाथ रख मन ही मन आशीर्वाद दिया। फिर सुशीला से कहा—बेटी, मैं कल तुम्हारे यहाँ आऊँगा। आज कुछ काम करना है। यह कह-कर वे अपने कोठे मे चले गये।

उस समय सुशीला की आँखों से आँसू गिर रहे थे। वह चित्रवत् निश्चेष्ट हो चुपचाप बरामदे के अन्धकार मे खड़ी रही। ललिता और विनय भी देर तक कुछ न बोले।

सुशीला जब जाने को उद्यत हुई तब विनय ने उसके सामने आकर मीठे स्वर मे कहा—बहन, तुम हमे आशीर्वाद न दोगी? यह कहकर ललिता को साथ ले विनय ने सुशीला को प्रणाम किया। सुशीला ने गद्गद कण्ठ से जो कहा वह उसके अन्तर्यामी के सिवा और किसी ने न सुना।

परेश बाबू ने अपने कोठे मे आकर ब्राह्म-समाज की कमिटी को पत्र लिखा। उसमे उन्होने लिखा, ललिता के विवाह का काम मुझी को सम्पादन करना होगा। इससे

यदि समाज मुझे त्याग दे तो यह उसका अनुचित विचार न होगा। अब ईश्वर के निकट मेरी यही एकमात्र प्रार्थना है कि वे सब समाजों के आश्रय से निकालकर मुझे अपने चरणों मे शरण दें।

[६६]

सुशीला ने परेश बाबू के मुँह से जो कुछ ज्ञान की बाते सुनी वे गौरमोहन से कहने के लिए उसका मन व्याकुल हो उठा। जिस भारतवर्ष की ओर गौरमोहन ने अपनी दृष्टि को प्रसारित और चित्त को प्रबल प्रेम से आकृष्ट किया है, वह भारतवर्ष क्षय के मुँह मे प्रवेश करने चला है। क्या गौर-मोहन इस बात को न सोचता होगा? इतने दिन भारत-वर्ष ने अपनी आभ्यन्तरिक व्यवस्था के बल से अपने को बचा रक्खा है। इसके लिए भारतवासियों को सावधान होकर चेष्टा करने की तादृश आवश्यकता न थी। क्या अब उस तरह निश्चिन्त हो बैठने से भारतवर्ष की रक्षा हो सकती है? क्या अब पहले की तरह केवल पुरानी व्यवस्था के भरोसे घर के भीतर बैठ रहने से भारत का रोग दूर हो सकता है!

सुशीला सोचने लगी, इसके भीतर मेरा भी तो एक काम है। वह काम क्या है! गौरमोहन को इस समय मेरे सामने आकर आदेश करना और पथ दिखा देना उचित था। सुशीला ने मन ही मन कहा—यदि वे मुझको मेरी समस्त बाधा और

अवज्ञा से उद्धार करके मेरे उचित स्थान में स्थिर कर दे सकते तो मैं अपने कर्त्तव्य का पालन भली भाँति कर सकती। उसका मन आत्मगौरव से पूर्ण हो गया। उसने कहा—गौरमोहन ने क्यों मेरी परीक्षा न ली ? देशोपकार के लिए वह असाध्य साधन करने को तैयार है। गौरमोहन के दल में समस्त पुरुषों के बीच ऐसा कौन है जो सुशीला की भाँति ऐसे सहज भाव से अपना सब कुछ त्याग सकता है ? ऐसी आत्मत्याग की इच्छा और ऐसी प्रबल शक्ति का कोई प्रयोजन क्या गौरमोहन ने नहीं देखा ? इसको लोक-लज्जा के घेरे में कर्म-हीनता के बीच फेंक देने से क्या देश की कुछ भी हानि न होगी ? सुशीला ने इस अवज्ञा को बिलकुल अस्वीकार करके उसे दूर हटा दिया। वह बोली—वे मुझे इस तरह त्याग दें यह कभी न होगा ! मेरे पास उनको आना ही होगा। मेरी खोज-खबर उनको लेनी ही होगी। उनको सारी लोक-लज्जा से हाथ धोना ही पड़ेगा। वे चाहे जितने बड़े शक्तिमान् पुरुष क्यों न हो, उनको मेरा प्रयोजन है, यह बात उन्होंने अपने मुँह से मेरे आगे कही थी। आज एक साधारण बात में पड़कर वे उस बात को कैसे भूल गये !

सतीश दौड़कर सुशीला के पास आया और उसके बदन से सटकर बोला—बहन !

सुशीला ने उसे गले लगाकर कहा—क्या है भाई बख़्तियार !

सतीश—सोमवार को ललिता बहन का व्याह है। मैं अब कई दिन उनके घर मे ही रहूँगा। उन्हाने मुझको बुलाया है।

सुशीला—यह बात मौसी से कही है ?

सतीश ने कहा—मौसी से कही थी। उसने क्रोध करके कहा कि मै यह कुछ नहीं जानती। अपनी बहन से जाकर कह, वह जो समझेगी वही होगा। बहन, तुम मुझे रोको मत; वहाँ मेरे पढ़ने-लिखने मे कोई बाधा न होगी। मैं रोज़ पढ़ूँगा। विनय बाबू मुझे पाठ पढ़ा देंगे।

सुशीला—तुम काम-काज के घर मे जाकर अपनी चाल से सबको हैरान कर दोगे।

सतीश ने व्यग्र होकर कहा—नहीं बहन, मैं कोई उपद्रव न करूँगा।

सुशीला—तुम अपने मैला कुत्ते को भी वहाँ ले जाओगे ?

सतीश—हाँ, उसको ले जाना पड़ेगा। विनय बाबू ने ख़ासकर उसको लाने की सलाह दी है। उसके नाम से लाल काग़ज़ पर छपा एक निमन्त्रण-पत्र अलग ही आया है। उसमे लिखा है, वह परिवार सहित यहाँ आकर भोजन करे।

सुशीला—उसका परिवार कौन है ?

सतीश झट बोल उठा—क्यो, विनय बाबू ने मुझसे कहा था, उसका परिवार तुम हो। उन्होने मेरा वह अर्गन बाजा भी लेते आने को कहा है। बहन, वह मुझे देना, मैं नही तोड़ूँगा।

सुशीला—टूट जाने ही मे कुशल है। इतनी देर बाद अब समझ मे आया। तुम्हारे मित्र ने अपने व्याह मे अर्गन बजाने ही के लिए शायद तुमको बुलाया है। मालूम होता है, रोशन-चौकीवाले को एकदम लङ्घन कराने का विचार है।

सतीश अत्यन्त उत्तेजित होकर बोला—नहीं, कभी नहीं; विनय बाबू ने कहा है, हम तुम्हे अपना वरबन्धु बनावेगे। वरबन्धु को क्या करना होता है, बहन।

सुशीला—दिन भर उपवास करना पड़ता है।

सतीश ने इस बात पर विश्वास न किया। तब सुशीला ने सतीश को अपने आगे खींचकर और उसके दोनो हाथ पकड़कर पूछा—अच्छा, यह बताओ, तुम बड़े होने पर क्या होगे? भाई बख़्तियार! ख़ूब सोचकर कहना।

इसका उत्तर सतीश के मन मे मौजूद था। उसके क्लास के शिक्षक ही उसके निकट विशेष योग्यता और असाधारण पाण्डित्य के आदर्श-स्थल थे—उसने पहले ही से मन मे सोच रक्खा था कि मैं बड़ा होने पर मास्टर होऊँगा।

सुशीला ने उससे कहा—भाई, बहुत काम करना है। हम दोनों भाई-बहन मिलकर अपना काम करेंगे। सिर्फ़ मास्टरी करने ही से तुम्हारे कर्तव्य की इतिश्री न होगी। अपने देश को प्राण से भी बढ़कर मानना होगा। प्राण देकर भी उसके महत्त्व की रक्षा करनी होगी। उसको बड़ा बनाना होगा। परन्तु हम उसे बडा क्या बनावेगी, वह आप ही बडा

है। हमारे देश के ऐसा महत्त्व-पूर्ण देश और कौन है। हम उसकी सेवा करके अपने को ही गौरवास्पद बनावेंगे। कहो सतीश, इस बात को तुमने समझा ?

न समझने पर भी सतीश ने प्रौढ़ता के साथ कहा—हाँ।

सुशीला ने कहा—हमारा जो यह देश है, हमारी जो यह जाति है, हमारा जो यह हिन्दू-समाज है, ये कितने बड़े है, सो तू जानता है। यह मैं तुझे किस तरह समझाऊँ। यह एक अद्भुत देश है। इसको संसार के सब देशो का शिरोमणि बनाने के लिए हज़ारों क्या लाखों वर्ष से विधाता ने आयोजन किया है। देश-विदेश से भी कितने ही लोगो ने आकर उस आयोजन मे योग दिया है। इस देश मे कितने ही महापुरुष उत्पन्न हुए हैं, कितने ही बड़े-बड़े भीषण युद्ध हुए है; कितने ही शास्त्र बने है, कितने ही महावाक्यो का प्रचार यहाँ से हुआ है। कितनी ही कठिन तपस्याएँ और साधन यहाँ किये गये है। यहाँ कितने ही ऋषि, मुनि, योगी और ब्रह्मज्ञानी हो गये है। धर्म को प्राण से भी बढ़कर माननेवाले कितने ही धर्मनिष्ठ महात्माओ का जन्म इसी देश मे हुआ है। जिस देश के दर्शन को द्वीप-द्वीपान्तर से लोग आते और कृतार्थ हो जाते थे, वही हमारा यह भारतवर्ष है। इसको तू बहुत बड़ा जान। इसको कभी भूलकर भी अवज्ञा की दृष्टि से न देख। जो बात मैं अभी तुझसे कह रही हूँ वह एक दिन तुझे समझनी ही होगी। आज भी तू एकदम

कुछ न समझता हो यह नहीं, कुछ-कुछ तू अवश्य समझता होगा। यह बात तुझे याद रखनी होगी। तूने एक बड़े मान्य देश में जन्म लिया है, हृदय से इस देश की भक्ति करना, और जी-जान से इस देश का काम करना। इस बात को कभी भूलना मत।

सतीश कुछ देर चुप रहकर बोला—बहन, तुम क्या करोगी?

सुशीला—मैं भी यही काम करूँगी। तू मेरी सहायता करेगा न?

सतीश ने सीना तानकर कहा—हाँ, करूँगा।

सुशीला के हृदय में जो बात उफना रही थी, वह कहने के लिए घर में कोई था नहीं जिससे कहकर वह जी को ठण्ढा करती। इससे वह अपने छोटे भाई को पास में पाकर अपने हृदय के आवेग को न रोक सकी। उसने जिस भाषा में जो बातें कहीं, वे बालक से कहने की न थीं। किन्तु सुशीला कहने में संकुचित न हुई। उसने अपने मन की ऐसी उत्साहित अवस्था में यह समझा था कि जो मैं जानती हूँ उसको भली भाँति कहूँ तभी बालक वृद्ध सभी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार कुछ समझ सकते हैं। हृदय का भाव व्यक्त न करने से उसका पूरा विकास नहीं होगा।

सतीश की कल्पना-वृत्ति उत्तेजित हो उठी। उसने कहा—बड़े होने पर जब मेरे पास बहुत रुपया होगा तब—

सुशीला ने कहा—नहीं नहीं, रुपये की बात मुँह से मत निकाल बख़्तियार। हम तुम दोनों को रुपये का प्रयोजन नहीं। हम जो काम करेंगे, उसमे भक्ति चाहिए, मन चाहिए।

इसी समय आनन्दी उस घर मे आई। सुशीला का हृदय प्रफुल्ल हो उठा। उसने आनन्दी को प्रणाम किया। प्रणाम करना सतीश को अच्छा न लगता था, तो भी किसी तरह सकुचते-सकुचते उसने आनन्दी के पैरों तक हाथ बढ़ाया।

आनन्दी ने सतीश को अपनी गोद के पास खींचकर उसके सिर पर हाथ रख आशीर्वाद दिया और प्यार किया। सुशीला से कहा—बेटी, मैं तुम्हारे साथ कुछ सलाह करने आई हूँ। तुम्हे छोड और कोई ऐसी नहीं दीखती जिससे कुछ पूछूँ। विनय ने कहा था, विवाह मेरे ही घर मे होगा। मैने कहा, यह कभी न होगा। तुम बड़े नवाब बने हो! हमारी लड़की यों ही सीधे तुम्हारे घर जाकर व्याह कर आवेगी! यह न होगा।—मैने एक मकान ठीक किया है, वह तुम्हारे इस घर के पास ही है। मैं अभी वहीं से आ रही हूँ। परेश बाबू से कहकर तुम उन्हे राज़ी कर लेना।

सुशीला— पिताजी राज़ी हो जायँगे।

आनन्दी—इसके बाद, तुमको भी वहाँ जाना होगा। इसी सोमवार को व्याह है। इसके भीतर ही हमे सब बातों का ठीक-ठाक करना होगा। समय तो अब अधिक नहीं है। मै अकेली ही सब क़ाम सँभाल सकती हूँ; किन्तु वहाँ तुम्हारे

न रहने से विनय को बड़ा दुःख होगा। वह मुँह खोलकर तुमसे अनुरोध नहीं कर सकता। यहाँ तक कि वह मेरे पास भी सङ्कोच-वश तुम्हारा नाम नहीं लेता। इसी से मैं समझती हूँ कि तुम पर उसका मानसिक आग्रह बहुत है। और ललिता के मन मे भी बड़ा खेद होगा।

सुशीला ने कुछ आश्चर्य के साथ कहा—माँ, तुम इस व्याह मे सम्मिलित हो सकोगी ?

आनन्दी—सम्मिलित होने की बात क्या कहती हो! मैं क्या बाहर की हूँ जो शरीक होऊँगी। यह तो अपने घर का काम है। सब काम मुझी को करना होगा। विनय क्या मेरा दूसरा है? किन्तु मैंने उससे कह रक्खा है कि इस विवाह मे सब काम मैं लड़की की ओर से करूँगी। वह मेरे घर मे ललिता से व्याह करने आ रहा है।

माँ होकर भी शिवसुन्दरी ने अपनी प्यारी बेटी ललिता को इस शुभ कर्म मे त्याग दिया है, इसी से आनन्दी का हृदय दया से परिपूर्ण हो गया है। इसी कारण वह ऐसी चेष्टा कर रही है जिससे इस विवाह मे किसी तरह की कोई त्रुटि न होने पावे। वह ललिता की माँ का आसन ग्रहण कर अपने हाथ से ललिता का सिंगार करेगी, वर का परिछन कर विवाह-मण्डप मे लावेगी। यदि दो चार निमन्त्रित व्यक्ति आवेंगे तो उनके आदर-सत्कार मे किसी तरह की त्रुटि न हो, इसकी देख-भाल करेगी। और इस नये घर को ऐसे ढंग से सजा-

वेगी जिससे ललिता के मन मे मकान की सजावट पर कोई खेद न रह जाय।

सुशीला—इससे आपके घर मे कोई विरोध तो उपस्थित न होगा ?

महिम ज़िद पकड़े हुए है, उसे स्मरण करके आनन्दी ने कहा—ऐसा हो सकता है, परन्तु उससे क्या होगा। कुछ बखेड़ा तो होगा ही। चुपचाप सह लेने से कुछ दिन मे सब उपद्रव शान्त हो जायगा।

सुशीला जानती थी कि गौरमोहन इस विवाह मे सम्मिलित नहीं है। उसने आनन्दी को रोकने की चेष्टा की थी या नहीं, यह जानने के लिए उसका मन बड़ा ही उत्सुक था। किन्तु यह बात आनन्दी से पूछने का उसे साहस न हुआ और आनन्दी ने भी गौरमोहन के विषय मे कुछ न कहा।

आनन्दी के आने की ख़बर हरिमोहिनी पा गई थी। वह अपने हाथ का काम सँवारकर धीरे-धीरे उस कोठे मे आई, और बोली—बहन, आप अच्छी तो है ? न कभी दर्शन देती हो, न ख़बर ही लेती हो।

आनन्दी ने इस उपालम्भ का उत्तर न देकर कहा—तुम्हारी बहनोती को लेने आई हूँ।

यह कहकर उसने अपना अभिप्राय प्रकट किया। हरिमोहिनी कुछ देर मुँह फुलाये चुप रही, पीछे बोली—मैं तो इस कार्य मे न जा सकूँगी।

हरिमोहिनी बोल उठी—तुम लोगों का भाव कुछ भी मेरी समझ मे नही आता। तुम्हारा ही बेटा तो इसे हिन्दू मत मे लाया है और तुम कुछ जानती ही नही! जैसे तुम आकाश से उतर आई हो!

जो हरिमोहिनी परेश बाबू के घर मे अपराधिनी की तरह डरकर रहती थी, जो किसी को अपनी ओर कुछ भी अनुकूल पाकर उसे एकान्त आग्रह के साथ गहती थो वह हरिमोहिनी आज कहाँ है? अपने अधिकार को सुरक्षित रखने के लिए वह आज बाघिन की तरह खड़ी है। उसकी सुशीला को उसके पास से छीन लेने के लिए चारो ओर भाँति-भाँति की शक्तियाँ लगाई जा रही हैं, इस सन्देह से वह बराबर चौकन्नी रहती है। कौन हित है, कौन अनहित, यह भी वह नही समझती। इस कारण उसके मन मे आज और भी हलचल मच गई है। पहले जिसने सारे संसार को सूना देखकर श्री गोपीरमणजी की सेवा मे अपने व्याकुल चित्त को समर्पित कर दिया था उस देव-पूजा मे भी आज उसका जी नही लगता। एक दिन वह घोर संसारी थी—दुःसह शोक से जब उसको सांसारिक विषय मे वैराग्य उत्पन्न हुआ था तब उसके मन मे इसकी भावना तक न थी कि फिर कभी उसे रुपये-पैसे, घर-द्वार और अपने परिजन वर्ग के प्रति कुछ भी आसक्ति उपजेगी—किन्तु आज हृदय का घाव कुछ आराम होते ही संसार फिर उसके सामने दिव्य रूप धारणकर उसके मन को अपनी ओर खीचने लगा है। जिस दिशा को त्यागकर

वह बहुत आगे बढ़ आई थी, उस ओर फिर लौटने का वेग ऐसा प्रबल हो उठा है कि इसके पूर्व संसारी रहने की अवस्था मे भी ऐसा न हुआ था। इधर कुछ ही दिनों मे हरिमोहिनी के मुँह और आँखो की भाव-भङ्गी तथा वचन-व्यवहार मे इस अभावनीय परिवर्तन का लक्षण देख आनन्दी एकदम भौचक सी हो रही। सुशीला के लिए उसके कोमल हृदय मे परिताप होने लगा। अगर वह जानती कि सुशीला एक छिपे हुए सङ्कट-जाल मे फँसी है तो वह कभी उसे बुलाने न आती। अब वह किस उपाय से सुशीला को इस आघात से बचा सकेगी, यह उसके लिए एक अत्यन्त शोचनीय विषय हो गया।

गौरमोहन को लक्ष्य करके हरिमोहिनी ने जब बात की तब सुशीला सिर नीचा करके चुपचाप कोठे से चली गई।

आनन्दी ने कहा—बहन, तुम डरो मत; मैं पहले न जानती थी। मैं उसे वहाँ जाने के लिए विवश न करूँगी। तुम भी अब उससे कुछ मत कहो। वह पढ़ी लिखी है, उस पर अधिक दबाव डालोगी तो शायद वह न सह सके।

हरिमोहिनी—यह क्या मै नही जानती ! मेरी इतनी बड़ी उम्र हो गई। वह तुम्हारे सामने ही कहे न, उसे मैंने कभी कोई कष्ट दिया है। जो उसके जी मे आता है, करती है। मैं कभी उससे कुछ नही कहती। भगवान् उसे ज़िन्दा रक्खें, यही मेरे लिए बहुत है। मेरा नसीब वैसा नही। कौन जाने, किस दिन क्या हो, इससे नींद नहीं आती।

आनन्दी जब जाने लगी तब सुशीला ने अपने कोठे से निकल उसे प्रणाम किया। आनन्दी ने स्नेह और दया के साथ उसका सिर छू करके कहा—बेटी, मैं आऊँगी, तुमको सब ख़बर दे जाऊँगी। कोई विघ्न न होगा। ईश्वर की कृपा से यह शुभ कर्म सम्पन्न हो जायगा।

सुशीला कुछ न बोली।

दूसरे दिन सबेरे जब आनन्दी लखमिनिया को साथ ले नये मकान के चिर-सञ्चित कूड़े-करकट को साफ़ कराने गई और वह अपने हाथ से भी झाड़ने-बुहारने लगी, उसी समय सुशीला आ पहुँची। आनन्दी ने झट झाड़ू फेंक उसे छाती से लगा लिया।

इसके बाद घर आँगन साफ़ करने की धूम मच गई। कोई झाड़ने-बुहारने, कोई पानी लाने, कोई गाय के गोबर से लीपने और कोई दीवाल साफ़ करने लगी। जो मज़दूरिनें काम करने को आई थी, उन सबों मे सुशीला ने काम बॉट दिये। वे अपने-अपने काम मे लग गई। आनन्दी और सुशीला बड़ी मुस्तैदी के साथ काम कराने लगी। परेश बाबू ने ख़र्च के लिए सुशीला के हाथ मे कुछ रुपया दिया था, यह पूँजी लेकर दोनों ख़र्च का चिट्ठा तैयार करने लगी।

कुछ ही देर के बाद ललिता को साथ ले परेश बाबू स्वयं वहाॅ उपस्थित हुए। ललिता को अपना घर असह्य हो गया था। कोई उससे बोलता न था। बोलने की बात दूर रहे,

कोई उसकी ओर प्रसन्न दृष्टि से देखता न था। उन लोगों की यह उदासीनता पग-पग पर उसे चोट पहुँचाने लगी। आख़िर शिवसुन्दरी के साथ समवेदना प्रकट करने के लिए जब झुण्ड के झुण्ड उसके बन्धु-बान्धव आने लगे तब परेश बाबू ने ललिता को इस मकान से अन्यत्र ले जाना ही अच्छा समझा। ललिता बिदा होते समय शिवसुन्दरी को प्रणाम करने गई तो वह मुँह फेरकर बैठी रही और उसके चले जाने पर आँसू गिराने लगी। ललिता के इस विवाहोत्सव मे लावण्य और लीला का मन विशेष उत्सुक था। अगर वे किसी उपाय से छुट्टी पाती तो दौड़कर ललिता का विवाह देखने जाती। किन्तु ललिता जब चली गई तब ब्राह्म-परिवार के कठोर कर्तव्य का स्मरण करके वे मुँह लटकाकर चुपचाप बैठ रहीं। दर्वाज़े के पास ललिता ने सुधीर को देखा, किन्तु सुधीर के पीछे उसके समाज के और कई प्रवीण व्यक्ति थे, इस कारण उसके साथ कोई बातचीत न हो सकी। गाड़ी मे बैठने के साथ ललिता ने देखा, बेञ्च के एक कोने मे काग़ज़ मे लपेटी कोई चीज़ रक्खी है। खोलकर देखा, जरमन सिलवर का एक फूल-दान है। उस पर अँगरेजी भाषा मे यह वाक्य खुदा था, "प्रसन्न दम्पती को ईश्वर चिरायु करे।" और एक कार्ड पर सुधीर के नाम का पहला अक्षर अँगरेज़ी मे लिखा था। ललिता ने आज छाती को पत्थर कर प्रण किया था कि मै आँसू न गिराऊँगी, किन्तु पिता के घर से विदा होते समय

अपने बाल्य सहचर का यह स्नेहोपहार हाथ मे लेते ही उसकी आँखो से झर् झर्कर आँसू गिरने लगे। परेश बाबू आँखे' मूँदे स्थिर बैठे रहे। कुछ देर मे गाड़ी नये मकान के फाटक पर जा पहुँची।

"आओ बेटी, आओ," कहकर आनन्दी ललिता के दोनों हाथ पकड़ बड़े प्यार से घर के भीतर ले आई। मानों वह उसके आने की प्रतीक्षा मे ही बैठी थी।

परेश बाबू ने सुशीला को बुलाकर कहा—"ललिता मेरे घर से एकदम बिदा होकर आई है।" यह कहते समय उनका कण्ठस्वर कम्पित हो गया।

सुशीला ने गम्भीर स्वर मे कहा—यहाँ उसे किसी तरह की तकलीफ़ न होगी।

परेश बाबू जब जाने को उद्यत हुए तब आनन्दी ने घूँघट डालकर उनके सामने आ उन्हें नमस्कार किया। परेश बाबू ने भी सिर नवाया। आनन्दी ने कहा—ललिता के लिए आप कुछ भी चिन्ता न करे। आप जिसके हाथ मे ललिता को सौंप रहे हैं उसके द्वारा वह कभी कोई दुःख न पावेगी। भगवान् ने इतने दिन बाद मेरे एक अभाव को दूर कर दिया। मेरे लड़की न थी, वह मुझे मिली। विनय की बहू के कारण मेरे कन्या न रहने का दुःख मिटेगा, मैं बहुत दिनों से इस आशा मे बैठी थी। यदि ईश्वर ने देर करके मेरा मनोरथ पूरा किया तो उसने ऐसी लड़की दी और ऐसी

अद्भुत रीति से दी जो सब प्रकार मेरे मन के अनुकूल हुई। मेरा ऐसा भाग्य होगा, यह मैंने कभी सोचा भी न था।

ललिता के विवाह का आन्दोलन आरम्भ होने के बाद यही पहले पहल परेश बाबू के चित्त ने संसार मे एक जगह एक किनारा देखा और सच्ची सान्त्वना पाई।

[६७]

कारागार से मुक्त होने के बाद गौरमोहन के पास दिन भर लोगो की इतनी भीड़ होने लगी कि वह घबरा उठा। यहाँ तक कि घर मे रहना उसके लिए कठिन हो गया।

गौरमोहन ने फिर पहले की तरह गाँवो मे घूमना आरम्भ कर दिया।

सवेरे ही कुछ खाकर वह घर से निकल पड़ता था। दिन का गया रात को लौटता था। कलकत्ते के आस-पास के किसी स्टेशन पर उतरकर वह बस्तो मे जाता था। वहाँ कालीप्रसाद आदि धीवरो के घर जाकर आतिथ्य ग्रहण करता था। यह लम्बा चौड़ा विशाल-मूर्ति ब्राह्मण उन लोगों के घर क्यो इस तरह घूमने आता है, क्यों उनके सुख-दुःख की ख़बर लेता है—यह वे लोग कुछ न समझते थे। बल्कि उन लोगो के मन मे भाँति-भाँति के सन्देह उत्पन्न होते थे। किन्तु गौर-मोहन उनके सारे सङ्कोच-सन्देह को दूरकर उनके बीच घूमने-फिरने लगा। कभी-कभी उसने उनसे अप्रिय बाते भी सुनी, तो भी वह उससे हतोत्साह न हुआ।

उसने इन बस्तियों मे घूमकर देखा कि इन गॉवो मे समाज का बन्धन शिक्षित भद्रसमाज से कहीं बढ़कर है। प्रत्येक घर का खाना-पीना, सोना-बैठना और काम-धन्धा आदि सभी काम समाज के निर्निमेष नेत्रो पर दिन-रात चढ़े रहते हैं। हरेक आदमी को लोकाचार पर पूरा विश्वास है। उस सम्बन्ध मे कोई कुछ तर्क नही करता। किन्तु समाज का बन्धन और आचार-विचार इनको कर्मक्षेत्र मे कुछ भी बल करने नहीं देता। इन लोगो के ऐसा भीरु, असहाय और अपने हित-विचार मे अक्षम जीव संसार मे कही है या नही, इसमें सन्देह है। लोकाचार के पालन को छोड़ और प्रकार के मङ्गल-विधान को ये जानते ही नहीं, समझाने पर भी नही समझते। दण्ड के द्वारा, भेद भाव के द्वारा, निषेध को ही सबकी अपेक्षा बड़ा समझते है। क्या करना उचित नहीं, यही बात पग-पग पर अनेक शासनों के द्वारा उनकी प्रकृति को मानों सिर से पैर तक जाल मे फँसाये हुए है। किन्तु यह जाल ऋण का जाल है, यह बन्धन महाजन का बन्धन है, राजा का बन्धन नही। इसमे ऐसी बड़ी कोई एकता नही जो सबको विपत्ति-सम्पत्ति मे पास ही पास खड़ा कर सके। गौरमोहन से यह बात भी छिपी न रह सकी कि आचार के चोखे हथियार से एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का लहू चूसकर उसे निष्ठुरतापूर्वक निःस्वत्व कर रहा है। कितनी ही बार उसने देखा है, सामाजिक क्रिया-कर्म्म मे कोई किसी पर तनिक

भी दया नही करता। एक आदमी का बाप बहुत दिनों से रोग के चंगुल मे फँसा था। उस रोगी की चिकित्सा और पथ्य-पानी मे उसके बेटे का सर्वस्वान्त हो गया। इस विपत्ति मे किसी से उसको कोई सहायता न मिली। सहायता की बात अलग रही, उलटे गाँव के लोगों ने ज़िद पकड़ी कि उसके बाप को अज्ञात पाप-जनित, चिररुग्णता के लिए प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा। उस हतभाग्य की दरिद्रता और असमर्थता की बात किसी से छिपी न थी, तो भी क्षमा नही, जैसे हो, प्रायश्चित्त करना ही होगा। सभी क्रिया-कर्मों मे ऐसा ही निष्ठुर विचार था। जैसे डकैती की अपेक्षा पुलिस की तहक़ीक़ात गाँव के लिए बड़ी भारी दुर्घटना है, वैसे ही माँ-बाप की मृत्यु की अपेक्षा माँ-बाप का श्राद्ध (तेरही आदि) सन्तान के लिए बड़े भारी दुर्भाग्य का कारण हो उठता है। अपने थोड़े विभव और थोड़ी शक्ति पर कितना ही कोई रोवे-चिल्लावे पर उसकी दुहाई पर कोई ध्यान न देगा। जैसे होगा उसे समाज के हृदय-हीन निर्दय दावे को सोलह आना चुकाना ही होगा। विवाह के उपलक्ष्य मे कन्या के पिता का बोझ दु:सह करने के लिए वर के पक्षवाले कोई कौशल उठा नही रखते, हतभाग्य के ऊपर रत्ती भर दया नही करते। इस समाज मे ग़रीब के घर जन्म लेना ही मानों नरक की यन्त्रणा भोगना है। किसी क्रिया-कर्म के समय समाज की ओर से उस बेचारे धनहीन पर घोर अत्याचार किया

जाता है। गौरमोहन ने देखा कि यह समाज प्रयोजन के समय मनुष्य का न तो साहाय्य करता है और न विपत्ति के समय सान्त्वना देता है। केवल हिन्दू-शासन के द्वारा उसे विवश कर उसकी दुर्दशा कर डालता है।

शिक्षित समाज में गौरमोहन इन बातों को भूला हुआ था। कारण यह था कि समाज साधारण लोगों के कल्याणार्थ एक होकर रहने की शक्ति बाहर से सञ्चित कर रहा है। इस समाज में एकत्र मिलकर रहने के लिए अनेक प्रकार के उद्योग हो रहे हैं। इस एकता का उद्देश्य दूसरे के अनुकरण रूप में हमको असफलता की ओर ले जाना न हो, यही एक सोचने का विषय है।

किन्तु बस्ती में जहाँ बाहरी शक्ति का वैसा कोई लगाव नहीं है वहाँ गौरमोहन ने निश्चेष्टता के भीतर अपने देश की गम्भीरतर दुर्बलता की मूर्त्ति को एकबारगी अनावृत रूप में पाया। जो धर्म सेवारूप में, प्रेमरूप में, करुणारूप में, आत्म-त्यागरूप में और मनुष्य के प्रति श्रद्धारूप में सबको शक्ति देता है, साहस देता है, जीवन देता है और कल्याण देता है वह धर्म कहीं दिखाई नहीं देता। जो आचार केवल पंक्ति-विच्छेद करता है, भेद-भाव उत्पन्न करता है, भाँति-भाँति के क्लेश देता है, जो बुद्धि को भी स्थिर नहीं रहने देता और जो प्रीति को भी पास फटकने नहीं देता, वही सबके लिए चलते-फिरते उठते-बैठते सभी विषयों में बाधा उपस्थित करता

है। गाँव मे इस मूढ वाध्यता का अनिष्टकारी बुरा फल अनेक रूप धारणकर गौरमोहन की आँखो के सामने नाचने लगा। वह दुराग्रह रूपी आचार मनुष्य के स्वास्थ्य, ज्ञान, धर्म-बुद्धि और कर्म को चारो ओर से इस प्रकार घेरे हुए है जिसे देखकर अपने को भावुकता के भ्रम-जाल मे भुला रखना गौरमोहन के लिए असम्भव हो गया।

गौरमोहन की दृष्टि पर यह बात पहले ही चढ़ गई कि गॉव की नीच जातियो मे स्त्रियों की संख्या अल्प होने के कारण या किसी अन्य कारण से, कहीं-कही अधिक मूल्य देने पर लडकी मिलती है। कितने ही निर्धन पुरुषो को आजीवन और कितने ही को बुढ़ापे तक अविवाहित रहना पडता है। इधर अल्पवयस्क विधवा के विवाह-सम्बन्ध मे कठिन निषेध है, सख़्त मनाही है। साठ वर्ष के बूढे वर से आठ वर्ष की लड़की का व्याह कर देने से कोई समाजच्युत नहीं हो सकता, परन्तु बारह वर्ष की अज्ञान बालिका का पुनर्विवाह यदि कोई दयाशील पिता कर दे तो समाज उसे उसी घड़ी जातिच्युत कर देगा। यद्यपि इससे घर-घर मे लोग अनेक यन्त्रणाएँ भोग रहे हैं, इसके भयङ्कर परिणाम और अनिष्ट फल का अनुभव समाज का प्रत्येक मनुष्य कर रहा है, तथापि इस पातक से पिण्ड छुडाने का उपाय कोई नही सोचता। इस अमङ्गल-जनक कलङ्क का भार चिरकाल से सहने के लिए सभी वाध्य हैं, किन्तु इसके प्रतिकार का उपाय कहो किसी के हाथ मे नहीं है। जो गोरा

शिक्षित समाज में आचार को कदापि शिथिल होने देना नहीं चाहता उसी ने इस आचार को यहाँ खण्डित किया। उसने गाँव के अशिक्षित समाज के पुरोहितों को मिलाया, वे राज़ी हो गये किन्तु समाज के लोग किसी तरह राज़ी न हुए। उन्होंने गौरमोहन पर क्रुद्ध होकर कहा—अच्छा, पहले ब्राह्मण लोग विधवा-विवाह करें, पीछे हम लोग भी करेंगे।

उन लोगों के क्रोध का प्रधान कारण यही था कि उन्होंने समझा, गौरमोहन उन्हें नीच जानकर उनका अपमान करता है। उनके सदृश छोटे लोगों के लिए नितान्त गर्हित आचार ग्रहण करना ही श्रेष्ठ है, गौरमोहन यही प्रचार करने आया है।

गाँव-गाँव में घूमकर गौरमोहन ने यह भी देखा कि मुसलमानों में वह विशेषता है, जिसे अवलम्बन कर वे सब के सब एक ही जगह खड़े हो सकते हैं। गौरमोहन ने ध्यान देकर देखा, गाँव में कोई आपद-विपद होने पर मुसलमान लोग जैसे घनिष्ठ भाव से एक दूसरे के पास आ खड़े होते हैं वैसे हिन्दू नहीं होते। उसने इस बात को कई बार सोचकर देखा है, इन दोनों अति समीपीय पड़ोसी समाजों में इतना बड़ा अन्तर क्यों है? जो उत्तर उसके मन में उदित होता है, उसे वह किसी तरह मानना नहीं चाहता। इस बात को स्वीकार करते हुए उसका हृदय काँपने लगता है कि धर्म के द्वारा मुसलमान एक हैं; आचार के द्वारा नहीं। एक ओर जिस प्रकार आचार के बन्धन ने उनके सारे कामों को अनर्थक

नहीं कर डाला है—दूसरी ओर उसी तरह धर्म का बन्धन उनमे बहुत ही घनिष्ठ है। उन लोगो ने एकता से एक ऐसी वस्तु को ग्रहण किया है जो सिर्फ़ निषेधात्मक नहीं, स्वीकारात्मक भी है, जो ऋणात्मक नहीं, धनात्मक है, जिसके लिए मनुष्य एक आवाज़ देते ही पल भर मे एक साथ खड़े होकर सहज ही प्राण तक दे सकते है।

शिक्षित समाज मे गौरमोहन ने जब जो कुछ लिखा है, आलोचना की है, व्याख्यान दिया है, या शास्त्रार्थ किया है, वह केवल दूसरो को समझाने के लिए। अन्य जनो को अपने मार्ग पर लाने के लिए उसने स्वभावत: अपने कथन को कल्पना के द्वारा सुन्दर वर्ण से रञ्जित किया है। जो स्थूल विचार है, उस पर अपनी सूक्ष्म व्याख्या के द्वारा पर्दा डाल दिया है। जो अनावश्यक है उसे भी भाव की ज्योति मे मोहमय चित्र की भाँति दरसा दिया है। देश का एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदायवाले से द्वेष रखने के कारण सारे देश को बुरी नज़र से देखता है, इसलिए अपने देश पर प्रबल अनुराग होने के कारण गौरमोहन ने इस ममताहीन दृष्टि के अपमान से बचाने के लिए, सारे देश को अत्यन्त विशद भाव के आवरण से ढँक रखने की सदैव चेष्टा की है। इसका उसे अभ्यास हो गया था। "सब अच्छा है, जिसको दोष कह रहे हो वह भी किसी एक भाव से गुण हो सकता है—" गौरमोहन इस तरह वकील की भाँति युक्ति-कौशल से प्रमाणित नहीं करता

था; वल्कि उसका तो हृदय से ऐसा ही विश्वास था। उसका एकमात्र उद्देश्य था, स्वदेश पर स्वदेशवासियों की श्रद्धा को लौटा लाना। इसके वाद और काम।

किन्तु जब वह गाँव में जाता था तब तो उसके सामने कोई श्रोता आता न था, जिसे वह कुछ प्रमाण देकर समझाता। वहाँ अवज्ञा और विद्वेष को नीचा दिखाने के लिए अपनी सारी शक्ति लगाने का कोई प्रयोजन न था। इसलिए यहाँ पर वह सत्य को किसी आवरण के भीतर से न देखता था। देश के प्रति उसके अनुराग की प्रबलता ही उसकी सत्यदृष्टि को असाधारण रूप से तीव्र कर देती थी।

[६८]

टसर का कोट पहिने, कन्धे पर दुपट्टा डाले और हाथ में एक वैग लटकाये स्वयं कैलासचन्द्र ने आकर हरिमोहिनी को प्रणाम किया। उसकी उम्र पैंतीस साल के लगभग होगी। क़द मँझोला है, चेहरा देखने से वदन मज़बूत मालूम होता है। हजामत वनवाये कुछ दिन हो जाने से दाढ़ी में कुशाग्र की भाँति वाल निकल आये हैं।

हरिमोहिनी मुद्दत के वाद ससुराल के आत्मीय को देख हर्षित होकर बोली "अच्छा, कैलास वाबू हैं। आइए, आइए, वैठिए," यह कहकर उसने झट एक कम्बल विछा दिया। हाथ-पैर धोने को लोटे में पानी लाकर रख दिया।

कैलास ने कहा—अभी इसकी ज़रूरत नहीं। आपकी तबीअत तो अच्छी है?

तबीअ़त का अच्छा रहना एक अपवाद जानकर हरिमोहिनी ने कहा—"तबीअ़त अच्छी क्या रहेगी, देह तो दिन-रात बिना ही आग के जला करती है," यह कहकर वह नाना प्रकार की व्याधियों का नाम गिनाने लगी। फिर बोली—ऐसे निकम्मे शरीर का न रहना ही अच्छा है। इतना दुःख पाने पर भी मरण नहीं होता।

जीवन के प्रति ऐसी उपेक्षा में कैलास ने आपत्ति की और ये बातें बनाकर उसके हृदय को गद्गद कर दिया कि यद्यपि बड़े भाई संसार में नहीं हैं तथापि तुम्हारे रहने से हमें उनके न रहने का दुःख नहीं है; हम सब तुम्हारा पूरा भरोसा रखते हैं और प्रमाण में यह भी कहा—यही क्यों नहीं देखती कि आप यहाँ हैं, इसी से कलकत्ते आना हुआ, नहीं तो यहाँ खड़े होने को भी कहीं जगह न मिलती।

घर और गाँव का सब कुशल-समाचार आद्योपान्त सुनाकर कैलास ने चारों ओर देखकर पूछा—मालूम होता है, यह मकान उसी का है।

हरिमोहिनी—हाँ।

कैलास—मकान पक्का है।

हरिमोहिनी ने उसके उत्साह को बढ़ाकर कहा—पक्का क्या, बिलकुल पक्का है।

कैलास—नहीं, नहीं, ऐसा मत करो। इस तरह पानी छिड़ने से दीवाल कमज़ोर हो पड़ेगी, छत गिर जायगी। अब इस घर मे पानी गिराना बन्द करो।

हरिमोहिनी को चुप होना पड़ा। कैलास ने तब कन्या का रूप जानने की उत्सुकता प्रकट की।

हरिमोहिनी ने कहा—इसे तो देखने ही से जानोगे। पर तो भी मैं इतना कह सकती हूँ कि तुम्हारे घर मे ऐसी रूपवती बहू आज तक न आई होगी।

कैलास—यह क्या कहती हो! हमारी मँझली भाभी—

हरिमोहिनी ने कहा—क्या कहा! भला तुम्हारी मँझली भाभी कब उसकी बराबरी कर सकती है। जो इसके पैर मे रूप है वह उसके चेहरे मे न होगा। तुम चाहे जो कहो, मँझली बहू से मेरी सुशीला कहीं बढ़कर सुन्दरी है।

मँझली बहू और नई बहू के सौन्दर्य की तुलना मे कैलास कुछ विशेष उत्साह का अनुभव न कर मन ही मन एक अपूर्व रूप की कल्पना करने लगा।

हरिमोहिनी ने देखा, इस पक्ष की अवस्था आशाजनक है। उसके मन मे यहाँ तक भरोसा हुआ कि कन्या-पक्ष मे जो गुरुतर सामाजिक त्रुटियाँ है उनसे भी इस ब्याह मे कोई बाधा नहीं पहुँच सकती।

———

[६९]

विनय जानता था कि गौरमोहन आजकल सबेरे ही घर से चल देता है। इसलिए वह सोमवार को बड़े तडके उठकर गौरमोहन के घर गया। उसके ऊपरवाले शयनगृह मे विनय एकाएक जा पहुँचा। वहाँ गौरमोहन को न देख नौकर से पूछकर जाना कि वह ठाकुरजीवाले कमरे मे है। इस कारण उसे मन ही मन कुछ आश्चर्य हुआ। ठाकुरजी के कमरे के द्वार के सामने आकर देखा कि गौरमोहन पूजा के भाव मे बैठा है, रेशमी धोती पहिने, एक रेशमी चादर ओढे, हाथ मे गोमुखी लिये कोई मन्त्र जप रहा है। उसके विशाल गोरे शरीर का अधिकांश खुला हुआ था। उसे पूजा करते देख विनय अचम्भे मे आ गया।

जूते का शब्द सुन गौरमोहन ने पीछे की ओर फिरकर देखा। विनय को देखकर वह हड़बडा उठा और बोला—इस कमरे मे मत आना।

विनय ने कहा—डरो मत, मै न आऊँगा। मैं तो तुमसे मिलने आया हूँ।

गौरमोहन तब पूजा-गृह से निकलकर, कपड़े बदल, तिमञ्जिले के ऊपरवाले कमरे मे विनय को ले गया। वहाँ दोनों पास ही पास कुरसी पर बैठे।

विनय ने कहा—भाई गौरमोहन, आज सोमवार है।

गौर—ज़रूर ही सोमवार है। पञ्चाङ्ग की गणना में भूल हो सकती है किन्तु आज की दिन-गणना में तुम्हारी भूल न होगी। आज न रविवार है न मङ्गलवार, उनके मध्य का दिन, जिसे लोग सोमवार कहते हैं, वही है।

विनय—तुम तो शायद न जाओगे; शायद क्या, नहीं ही जाओगे; किन्तु आज एक बार बिना तुमसे कहे मैं इस काम में प्रवृत्त न हो सकूँगा, इसी से आज इतने सबेरे उठकर पहले तुम्हारे ही पास आया हूँ।

गौरमोहन चुपचाप बैठा रहा, कुछ बोला नहीं।

विनय—तो तुम मेरे विवाह-मण्डप में न आ सकोगे, यही बात स्थिर रही।

गौरमोहन—हाँ, मैं न आ सकूँगा।

विनय चुप हो रहा। गौरमोहन ने हृदय की वेदना को दबाकर हँसकर कहा—मैं नहीं गया, इससे क्या? तुम्हारी ही तो जीत हुई। तुम माँ को खींचकर ले ही गये हो। मैंने चेष्टा तो बहुत की, किन्तु मैं उसको किसी तरह रोककर नहीं रख सका। वह तुम्हें न छोड़ सकी। आख़िर तुमसे मुझे हार माननी पड़ी। विनय, "क्या एक-एक कर सब लाल हो जायगा?" अपने मानचित्र में केवल मैं ही अकेला बच रहूँगा!

विनय ने कहा—भाई, मुझे दोष मत दो। मैंने उनसे ज़ोर देकर कहा था—'माँ, मेरे ब्याह में तुम कभी जाने न पाओगी।' माँ ने कहा—देखो विनय, तुम्हारे ब्याह में जो

न जायँगे, वे तुम्हारा निमन्त्रण पाकर भी न जायँगे और जो जानेवाले हैं वे तुम्हारे मना करने पर भी जायँगे। इसी लिए मैं तुमसे कहती हूँ कि न तुम किसी को निमन्त्रण दो, और न किसी को मना करो, चुप हो रहो।—गौर भाई, क्या तुमने मुझसे हार मानी है! तुम्हारी हार तुम्हारी माँ के आगे है, हज़ार बार हार स्वीकार करनी पड़ेगी। ऐसी माँ क्या और कहीं है।

गौरमोहन ने यद्यपि आनन्दी को रोकने के लिए बड़ी चेष्टा की थी, तथापि वह उसकी कोई बाधा न मान, उसके क्रोध और कष्ट की कुछ परवा न करके विनय के व्याह मे चली गई। इससे गौरमोहन के मन मे कोई कष्ट न हुआ बल्कि उसने एक अपूर्व आनन्द का अनुभव किया था। विनय ने उसकी माता के अपरिमेय स्नेह का अंश पाया था। गौर-मोहन के साथ विनय का चाहे जितना बड़ा विच्छेद हो, उस गम्भीर स्नेह-सुधा के अंश से उसे किसी तरह वञ्चित न करने का निश्चय जानकर गौरमोहन के हृदय मे तृप्ति और शान्ति दोनों एक साथ उत्पन्न हुईं। और सब बातों मे वह विनय से बहुत दूर जा सकता है, किन्तु इस अक्षय मातृ-स्नेह के बन्धन मे अत्यन्त गुप्त रूप से ये दोनो चिरमित्र बहुत दिनों तक एक दूसरे के अत्यन्त निकटस्थ होकर रहेंगे।

विनय ने कहा—तो मैं अब जाता हूँ। अगर तुम वहाँ आना एकदम पसन्द नहीं करते, तो मत आओ। परन्तु मन मे नाराजी न रक्खो। इस मिलन से मेरे जीवन ने कितनी

बड़ी सार्थकता प्राप्त की है, उसे यदि तुम सोचोगे तो कभी हमारे इस विवाह को अपनी मित्रता की सीमा से बाहर न कर सकोगे। यह मैं तुमसे ज़ोर देकर कहता हूँ।

यह कहकर विनय उठ खड़ा हुआ। गौरमोहन ने कहा—विनय बैठो, इतना क्यों उकता रहे हो? तुम्हारे ब्याह का लग्न तो रात मे है। अभी से उसकी इतनी जल्दी क्या है?

गौरमोहन के इस अप्रत्याशित सस्नेह अनुरोध से द्रवित-चित्त होकर विनय तुरन्त बैठ गया।

इसके बाद आज बहुत दिनो के अनन्तर, इस भोर के समय दोनों पहले की तरह घुल-घुलकर बाते करने लगे। विनय के चित्त-रूपी तम्बूरे मे आजकल जो तार पाँचवे सुर मे बँधा था उसी तार पर गौरमोहन ने हाथ रक्खा। विनय ने अपने हृदय का कपाट खोल दिया। कितनी ही छोटी-छोटी घटनाएँ, जिनका यहाँ उल्लेख करना फ़ज़ूल समझा जायगा—फ़ज़ूल ही नहीं बल्कि हास्यास्पद समझा जायगा—विनय के मुँह से तान गान की भाँति नई-नई तर्ज़ मे अलापी जाने लगी। विनय के हृदय मे जो एक अद्भुत तन्त्री का सुर बज रहा था, जिस अद्भुत कुतूहल का स्रोत बह रहा था, वह उसके विचित्र माधुर्य का अनुभव कर सरस भाषा मे विशद रूप से उसका वर्णन करने लगा। जीवन की यह कैसी अपूर्व अभिज्ञता है। विनय जिस अनिर्वचनीय पदार्थ से हृदय को पूर्ण कर सका है, वह क्या सभी कर सकते हैं? यह सौभाग्य पाने की शक्ति

क्या सबको है? संसार में साधारणतया स्त्री-पुरुष मे जो मिलन होता है, उसमे ऐसे उच्चतम भाव का समावेश नही पाया जाता। विनय ने गौरमोहन से बार-बार कहा कि औरो के साथ हमारी तुलना मत करना। वह सोचने लगा, मालूम नही, और भी कभी ऐसा हुआ है या नही। यदि ऐसा सदा सर्वत्र हुआ करता तो वसन्त ऋतु की हवा के एक ही झोके से जिस प्रकार तमाम जङ्गलो के नये-नये पुष्प-पल्लव पुलकित हो जाते है उसी तरह प्राणो की हिलोड़ से, समाज चञ्चल हो जाता। तब तो लोग-बाग इस प्रकार खा-पीकर और मज़े मे सोकर आराम न कर सकते। तब तो जिसमे जितना सौन्दर्य और जितनी शक्ति है वह स्वभाव से ही अनेक रङ्गो और आकारो मे उन्मीलित हुआ करती। यह जो सोने की छड़ी है—इसके स्पर्श की परवा न करके क्या कोई सुस्त पड़ा रह सकता। यह तो साधारण व्यक्ति को भी असाधारण बना देती है! उस प्रबल असाधारणता का स्वाद यदि मनुष्य को जीवन मे एक बार भी मिल जाय तो उसे जीवन का सत्य परिचय प्राप्त हो जाय।

विनय ने गौर से कहा—मैं तुमसे सच-सच कहता हूँ, मनुष्य की सारी प्रकृति को क्षण भर मे जाग्रत् करने का उपाय प्रेम है। चाहे जिस कारण से हो, हम लोगो मे इस प्रेम की उपज बहुत कम है। इसी से हम लोग अपने सम्पूर्ण सुखो से वञ्चित हैं। हम लोगो के पास क्या है सो भी हम नही जानते। जो गुप्त है, उसे प्रकाशित नही कर सकते। जो सञ्चित

है, उसे ख़र्च करने का सामर्थ्य नही इसी लिए चारों ओर ऐसा निरानन्द, ऐसी उदासीनता है। इसी से हम लोगो मे जो महत्त्व है वह केवल तुम्हारे सदृश विरले ही मनुष्य जानते है, साधारण लोगो के मन मे उसका ज्ञान तक नहीं है।

महिम ख़ूब ज़ोर से जँभाई लेकर बिछौने से उठकर जब मुँह धोने गया, तब उसके पैरो की आहट सुन विनय के उत्साह का प्रवाह बन्द हो गया। वह गौरमोहन से जाने की आज्ञा लेकर चला गया।

गौरमोहन ने छत पर खड़े हो पूरब के लाल आकाश की ओर देखकर एक लम्बी साँस ली। वह बड़ी देर तक छत पर घूमता रहा। आज वह और दिन की भाँति किसी गाँव को न जा सका।

गौरमोहन आजकल अपने हृदय मे जिस आकांक्षा और पूर्णता के अभाव का अनुभव कर रहा है, उस अभाव की पूर्ति किसी तरह किसी काम के द्वारा नही कर सकता। वह आप ही नही, बल्कि उसके सारे काम-काज भी मानों ऊपर को हाथ उठाकर कहते हैं—एक प्रकाश चाहिए, उज्ज्वल प्रकाश, सुन्दर प्रकाश। मानों और तो सब सामान तैयार है, मानो हीरा-माणिक, सोना-रूपा दुमूल्य नहीं है, मानो लोहा वज्र वर्म और चर्म दुर्लभ नही है—सिर्फ़ आशा और सान्त्वना से उद्भासित स्निग्ध सुन्दर अरुण-राग-मण्डित प्रकाश कहाँ है? उसी की तो ज़रूरत है। जो वस्तु प्राप्त है उसे और

भी बढ़ा देने के लिए किसी अन्य उपाय की आवश्यकता नही है किन्तु उसे समुज्ज्वल करके, लावण्यमय करके, प्रकाशित करने की अपेक्षा अवश्य है।

विनय ने जब गौरमोहन से कहा—किसी-किसी शुभ योग मे स्त्री-पुरुष के प्रेम को आश्रय कर एक अवर्णनीय श्रेष्ठता उद्भासित हो उठती है, तब गौरमोहन पहले की तरह इस बात को हँसकर उड़ा नही सका। उसने मन ही मन इस बात को स्वीकार किया कि वह सामान्य मिलन नहीं, वह प्रेम का परिपूर्ण मिलन है। वह प्रेम का ऐसा अमूल्य धन है जिसके सम्पर्क से सब पदार्थों का मोल बढ़ जाता है, वह प्रेम कल्पना को सदेह कर देता है, और देह को प्राण दान दे सबल करता है। वह प्राण मे प्राण-शक्ति और मन मे मनन-शक्ति को केवल दुगुनी नही करता बल्कि उसे एक नये रस से अभिषिक्त कर देता है।

विनय के साथ आज सामाजिक विच्छेद का दिन है। आज विनय का हृदय गौरमोहन के हृदय पर एक अपूर्व सङ्गीत का भाव अङ्कित कर गया। विनय चला गया। किन्तु उसके सङ्गीत की लहर घर मे अटक रही।

गौरमोहन का मन उस लहर मे बार-बार ग़ोते खाने लगा। समुद्र-गामिनी दो नदियाँ एक साथ मिलने से जो रूप धारण करती हैं, जैसे एक का प्रवाह दूसरी नदी की धारा से टकराकर तरङ्ग को शब्दायमान करता है, वैसे ही विनय की प्रेम-धारा

आज गौरमोहन के प्रेम-प्रवाह पर पतित हो तरङ्ग के द्वारा तरङ्ग को शब्दायमान करने लगी। गौरमोहन जिसे किसी प्रकार बाधा देकर, बीच मे कोई परदा डाल, अपनी आँखों के सामने से दूर रखने की चेष्टा कर रहा था, उसी ने आज परदा हटाकर अपने को स्पष्ट रूप से सामने ला रक्खा। उसे धर्म-विरुद्ध कहकर निन्दा करे या उसे तुच्छ कहकर उपहास करे, ऐसी शक्ति आज गौरमोहन के मन मे न रही।

गौरमोहन आज दिन भर इसी चिन्ता में पड़ा रहा। जब साँझ होने मे थोड़ा सा विलम्ब रह गया, तब वह एक चादर ओढ़कर सड़क पर घूमने चला। उसने कहा—जो मुझे हृदय से चाहता है उसकी चाह मैं भी अवश्य करूँगा; नहीं तो संसार मे मेरा काम अधूरा पड़ा रह जायगा।

सारी दुनिया के भीतर सुशीला उसी के आह्वान की अपेक्षा कर रही है, इसमे गौरमोहन को ज़रा भी सन्देह न रहा। आज ही, इसी सन्ध्या समय, वह इस अपेक्षा को पूर्ण करेगा।

लोगों से भरे हुए कलकत्ते के रास्ते मे गौरमोहन इस वेग से चला, जैसे किसी को उसने सड़क पर देखा ही न हो। उसका मन उसके शरीर को छोड़ एकाग्र हो कहीं चला गया।

सुशीला के घर के सामने आकर गौरमोहन एकाएक सचेत होकर खड़ा हो गया। वह इतने दिन तक यहाँ आया है, पर कभी दर्वाज़ा बन्द नहीं मिला। आज देखा, दर्वाज़ा

खुला नहीं है। ढकेलकर देखा, भीतर से बन्द था। खड़े होकर कुछ देर सोचा, फिर किवाड़ पर धक्का दे दो-चार बार पुकारा।

एक नौकर किवाड़ खोलकर बाहर आया। उसने सन्ध्या के सूक्ष्म अन्धकार मे गौरमोहन को देखते ही पहचान लिया और उनसे किसी प्रश्न की अपेक्षा न करके कहा—मालकिन नहीं हैं।

"कहाँ गई है ?"

वे ललिता बहन के ब्याह की तैयारी मे कई दिनों से वहीं रहती हैं।

एक बार गौरमोहन ने मन मे कहा, चलो, विनय के विवाह-मण्डप मे ही जायँ। इसी समय एक अपरिचित व्यक्ति ने घर के भीतर से निकलकर कहा—क्या है महाशय, क्या चाहिए ?

गौरमोहन ने सिर से पैर तक उसे देखकर कहा—नहीं, कुछ नहीं चाहिए।

कैलास ने कहा—आइए, ज़रा बैठिए, तम्बाकू पी लीजिए तो जाइएगा।

साथी के बिना कैलास की जान निकली जा रही थी। देहाती लोग जब तक किसी के साथ भर पेट गप-शप न करे तब तक उनका खाना नहीं पचता। इसी से वह गौरमोहन को देख ख़ुश हुआ। दिन को वह हाथ मे हुक्का ले गली के मोड़ पर खड़ा-खड़ा रास्ते पर लोगों को आते-जाते देख

किसी तरह जी बहला लेता था; किन्तु साँझ को घर के भीतर अकेला बैठना उसके लिए असह्य हो उठता था। हरिमोहिनी के साथ जो कुछ आलोचना करने को थी, वह ख़तम हो चुकी है। हरिमोहिनी मे वार्तालाप करने की शक्ति बहुत कम थी। इसी कारण कैलास नीचे, फाटक के पासवाले छोटे कमरे मे, चौकी पर हुक्का लेकर बैठता था और बीच-बीच मे दरवान को पुकारकर उसके साथ गप-शप करके समय बिताता था।

गौरमोहन ने कहा—नहीं, मै अभी नहीं बैठ सकता।

कैलास को दुबारा अनुरोध करने का मौक़ा न देकर वह पलक मारते ही उस गली से चला गया।

गौरमोहन के मन मे यह एक दृढ़ संस्कार था कि मेरे जीवन की अधिकांश घटनाएँ आकस्मिक नही है अथवा मेरी व्यक्तिगत इच्छा के द्वारा वे सिद्ध नहीं होतीं। मैने अपने देश के विधाता का कोई अभिप्राय सिद्ध करने के लिए जन्म ग्रहण किया है।

इसलिए वह अपने जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं का भी कोई विशेष अर्थ जानने की चेष्टा करता था। आज जब उसने अपने मन की इतनी बड़ी प्रबल इच्छा की प्रेरणा से एकाएक जाकर सुशीला के घर का दरवाज़ा बन्द देखा और दरवाज़ा खुलने पर जब सुना कि वह नहीं है, तब उसने इसे एक अभिप्रायपूर्ण घटना समझा। जो ईश्वर सुशीला को चलायमान कर यहाँ से अन्यत्र ले गया है वही आज गौर-

मोहन को निषेध की सूचना दे रहा है। इस जीवन मे उसके लिए सुशीला का द्वार बन्द है। सुशीला उसके लिए नहीं है। गौरमोहन के सदृश मनुष्य को अपनी इच्छा के अनुसार किसी वस्तु पर मुग्ध होने से काम न चलेगा। वह अपने सुख से सुखी और अपने दुःख से दुःखी होनेवाला नहीं है। वह भारतवर्ष का ब्राह्मण है, भारतवर्ष की ओर से उसे देवता की आराधना करनी होगी। भारतवर्ष का होकर तपस्या करना ही उसका काम है। आसक्ति, विषयोपभोग उसके लिए नहीं सिरजा गया है। गौरमोहन ने मन मे कहा—विधाता ने आसक्ति का रूप स्पष्ट दिखा दिया। जो दिखाया, वह स्वच्छ नहीं, शान्त नहीं, वह मद्य जैसा लाल और वैसा ही तेज़ है। वह बुद्धि को स्थिर रहने नहीं देता। वह और को और कर दिखाता है। मैं संन्यासी हूँ, मेरी साधना मे उसका स्थान नहीं।

[७०]

कई दिन अनेक प्रकार की पीड़ा भोगने के अनन्तर इन कई दिनो मे आनन्दी के पास सुशीला ने जो सुख-चैन पाया वैसा कभी न पाया था। आनन्दी ने ऐसे सहज भाव से उसे अपना लिया है कि किसी दिन वह उसके लिए अपरिचिता थी या दूर थी, इसे सुशीला सोच भी न सकती थी। आनन्दी न मालूम सुशीला के मन का सब भाव कैसे जान गई। वह

कुछ न कहकर भी सुशीला को एक गहरी सान्त्वना दे रही थी। सुशीला "माँ" शब्द को इसके पूर्व इस प्रकार स्पष्ट और उत्कण्ठा सहित कभी उच्चारण नहीं करती थी। कोई प्रयोजन न रहने पर भी वह आनन्दी को केवल "माँ" कहकर पुकारने के लिए अनेक प्रकार के बहाने रचती और बार-बार उसे "माँ" कहकर पुकारती थी। ललिता के ब्याह का जब सब काम ठीक हो गया, तब थके शरीर से बिछौने पर लेटकर सुशीला यही सोचा करती थी कि मै अब आनन्दी को छोड़ कैसे अपने घर जाऊँगी। वह आप ही आप कहने लगी—"माँ, माँ!" यह कहते-कहते उसका हृदय भक्ति से भर गया और आँखों से आँसू बहने लगे। इसी समय उसने एकाएक देखा, आनन्दी मसहरी उठाकर उसके पलँग पर आ बैठी और उसके बदन पर हाथ रख पूछने लगी—तू क्या मुझे पुकार रही थी?

तब सुशीला को चेत हुआ कि मैं माँ, माँ पुकार रही थी। सुशीला कोई उत्तर न दे सकी। उसकी छाती मे मुँह छिपाकर रोने लगी। आनन्दी कुछ न कहकर धीरे-धीरे उसके शरीर पर हाथ फेरने लगी। उस रात को वह उसी के पास सो गई।

विनय का ब्याह हो जाने पर आनन्दी तुरन्त बिदा न हो सकी। उसने कहा, ये दोनो अभी गृहकार्य से अनभिज्ञ है। इनके घर का सब प्रबन्ध किये बिना मैं कैसे जाऊँगी?

सुशीला ने कहा—माँ, तो मैं भी तब तक तुम्हारे साथ रहूँगी।

ललिता ने उत्साहित होकर कहा—हाँ, माँ, सुशीला बहन भी कुछ दिन हमारे साथ रहें।

यह सलाह सुन सतीश दौड़कर आया और सुशीला के गले से लिपटकर बोला—हाँ, बहन, मैं भी तुम्हारे साथ रहूँगा।

सुशीला ने कहा—बख्तियारे, तुझको जो पढ़ना है।

सतीश—विनय बाबू मुझको पढ़ावेंगे।

सुशीला ने कहा—विनय बाबू अभी तुम्हारी मास्टरी नहीं कर सकेंगे।

विनय पास के कमरे से बोल उठा—अच्छी तरह कर सकूँगा। मैं एक ही दिन में क्या ऐसा असमर्थ हो गया हूँ यह मेरी समझ में नहीं आता। अनेक रातों जाग-जागकर जो लिखना-पढ़ना सीखा था, वह एक ही रात में भूल बैठा होऊँ ऐसा तो नहीं जान पड़ता।

आनन्दी ने सुशीला से कहा—तुम्हारा यहाँ रहना क्या तुम्हारी मौसी पसन्द करेंगी?

सुशीला—मैं उनको एक चिट्ठी लिखती हूँ।

आनन्दी—तुम मत लिखो, मैं ही लिखूँगी।

आनन्दी जानती थी कि सुशीला यदि रहने की इच्छा प्रकट करेगी तो हरिमोहिनी उस पर ख़फ़ा होगी। किन्तु मैं सुशीला को कुछ दिन अपने पास रहने देने का अगर उससे अनुरोध करूँगी तो मुझी पर क्रोध करेगी, और इसमें कुछ हानि नहीं।

आनन्दी ने पत्र मे यह आशय जताया कि ललिता के नये घर का प्रबन्ध कर देने के लिए कुछ दिन तक मुझे विनय के घर रहना होगा। यदि सुशीला को भी मेरे साथ कुछ दिन और रहने की आज्ञा मिल जाय तो मुझे बड़ी सहायता मिलेगी।

आनन्दी के पत्र से हरिमोहिनी केवल क्रुद्ध ही न हुई, वरन् उसके मन मे बड़ा भारी सन्देह भी उपजा। उसने सोचा कि मैंने इसके बेटे को तो अपने यहाँ आने से रोक ही दिया है, अब सुशीला को फँसाने के लिए माँ कौशल-जाल बिछा रही है। इसमे माँ-बेटे दोनों की सलाह है। आनन्दी किसी तरह अपने बेटे का ब्याह सुशीला के साथ कर देना चाहती है। आनन्दी की चेष्टा शुरू से ही उसे अच्छी न लगती थी, यह बात भी उसे याद हो आई।

अब कुछ भी विलम्ब न कर, जितना शीघ्र हो सके, सुशीला को प्रसिद्ध राय-परिवार के घर दे देने ही से वह निश्चिन्त होगी। फिर कैलास को ही इस तरह यहाँ कब तक बिठा रक्खेगी। उस बेचारे को कुछ काम न धन्धा, दिन भर बैठा-बैठा तम्बाकू पीकर घर की दीवालें काली किया करता है। भला इस तरह रहना उसे कैसे अच्छा लगेगा ?

जिस दिन हरिमोहिनी को चिट्ठी मिली, उसके दूसरे दिन सबेरे ही पालकी करके, नौकर को साथ ले, वह स्वयं विनय के घर गई। तब नीचे के कमरे मे सुशीला, ललिता और आनन्दी रसोई-पानी की तैयारी कर रही थी। ऊपर के कमरे मे सतीश

वर्ण-विन्यास सहित अँगरेज़ी शब्द और उसका अर्थ खूब ज़ोर से रट रहा था। अपने घर पर वह इस तरह बुलन्द आवाज़ से न पढ़ता था, किन्तु यहाँ वह अपने पढ़ने-लिखने मे कुछ भी सुस्ती नही करता, इसे सप्रमाण सिद्ध करने के लिए वह कण्ठ-स्वर मे अनावश्यक बल का प्रयोग कर रहा था।

हरिमोहिनी को आनन्दी विशेष आदर के साथ पालकी से उतार लाई। वह उन शिष्टाचारो पर ध्यान न देकर एका-एक बोली—मैं राधा रानी को लेने आई हूँ।

आनन्दी ने कहा—अच्छी बात है, ले जाओ, ज़रा बैठो भी तो।

हरिमोहिनी—नही, मेरा पूजा-पाठ सभी पड़ा है। नित्य-कृत्य करके नही आई हूँ। मैं अभी यहाँ न बैठ सकूँगी।

सुशीला चुपचाप कद्दू छील रही थी। हरिमोहिनी ने उसे पुकारकर कहा—सुनती हो, चलो, अब वक्त हो गया।

ललिता और आनन्दी चुपचाप बैठी रही। सुशीला अपना काम छोड़ उठ खड़ी हुई और बोली—मौसी, आओ।

हरिमोहिनी को पालकी की ओर जाते देख सुशीला ने उसका हाथ पकड़कर कहा—चलो, एक बार इस कमरे मे चलो।

सुशीला ने हरिमोहिनी को घर के भीतर ले जाकर दृढ़ता-पूर्वक कहा—जब तुम मुझको लेने आई हो तब सब लोगो के सामने तुमको ख़ाली हाथ न लौटाऊँगी, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी, किन्तु आज ही दोपहर को फिर मैं यहाँ लौट आऊँगी।

हरिमोहिनी ने मुँह फुलाकर कहा—तो यह क्यो नहीं कहती कि यही रहना चाहती हो।

सुशीला—हमेशा तो न रह सकूँगी। हाँ, जब तक माँ यहाँ रहेगी, मैं भी उसके साथ रहूँगी। उसे छोड़कर न जाऊँगी।

यह बात सुनते ही हरिमोहिनी का सर्वाङ्ग जल उठा। किन्तु अभी कोई बात कहना उसने ठीक न समझा।

आनन्दी के पास आकर सुशीला मुस्कुराती हुई बोली—माँ, मै ज़रा घर हो आऊँ।

आनन्दी ने और कुछ न पूछकर कहा—अच्छा, हो आओ।

सुशीला ने ललिता के कान मे कहा—मैं आज ही दोपहर को फिर लौट आऊँगी।

पालकी के सामने खड़ी होकर सुशीला ने कहा—सतीश।

हरिमोहिनी ने कहा—सतीश को यही रहने दो न।

सतीश जो घर जायगा तो विघ्न-स्वरूप हो सकता है, यह सोचकर उसने सतीश को दूर रखना ही पसन्द किया।

दोनों जब पालकी मे बैठी और कहार पालकी ले चले तब हरिमोहिनी ने भूमिका बाँधने की चेष्टा कर कहा—"ललिता का तो ब्याह हो गया। यह अच्छा ही हुआ। एक लड़की से तो परेश बाबू निश्चिन्त हुए।" इसके बाद उसने कहा—घर मे कुँवारी लड़की बहुत बड़ी विपद की वस्तु है, पिता के लिए वह बड़ी ही दुश्चिन्ता का कारण है।

मैं तुमसे क्या कहूँ, मेरे मन मे भी दिन-रात यही चिन्ता लगी रहती है। जब भगवान् का नाम लेने लगती हूँ तब भी यही चिन्ता मन मे रहती है। मैं तुमसे सच कहती हूँ कि ठाकुरजी की सेवा मे अब मेरा पहले की तरह जी नहीं लगता। हाय! गोपीवल्लभजी सब माया-मोह से छुड़ाकर फिर मुझे किस फन्दे मे फँसाना चाहते हैं।

हरिमोहिनी की यह केवल सांसारिक उत्कण्ठा नहीं है, इससे तो उसके मुक्ति-पथ मे विघ्न हो रहा है। इस विघ्न से बढ़कर हरिमोहिनी के लिए और सङ्कट क्या होगा। परन्तु उसके इतने बड़े सङ्कट की बात सुनकर सुशीला कुछ न बोली। हरिमोहिनी न समझ सकी कि सुशीला के मन का ठीक भाव क्या है। "मौन धारण सम्मति का लक्षण है" इस लोकोक्ति को उसने अपने अनुभव के अनुकूल जाना और अपने मन मे मान लिया कि सुशीला का हृदय कुछ कोमल हुआ है।

सुशीला के सदृश ब्राह्मधर्मावलम्बिनी कुमारिका को हिन्दू समाज मे ले आना एक कठिन समस्या है, किन्तु हरिमोहिनी ने इस समस्या को सहल कर दिया। सहल क्या मानो सुशीला की काया पलट कर दी। इससे बढ़कर सुशीला का उपकार वह और कर ही क्या सकती है। इस उपकारिता पर गर्व प्रकट करती हुई हरिमोहिनी बोली—मैं एक ऐसे घराने मे सम्बन्ध पक्का कर दूँगी कि जिसका सुयश सर्वत्र छाया हुआ है। एक ऐसा अवसर प्राप्त हो गया है जिसके कारण तू

बड़े-बड़े कुलीनों के घर एक पंक्ति मे बैठकर भोजन करेगो और कोई चूँ तक न कर सकेगा।

भूमिका समाप्त न होने पाई थी कि पालकी दर्वाजे के पास आ पहुँची। दोनों पालकी से उतरकर घर के भीतर आईं। ऊपर जाते समय सुशीला की दृष्टि एकाएक दर्वाज़े के समीप-वाले कमरे मे एक अपरिचित व्यक्ति पर पड़ी। देखा, वह एक नौकर से तेल की मालिश ज़ोर से करा रहा है। उसने सुशीला को देखकर कुछ सङ्कोच न किया बल्कि बड़े कुतूहल के साथ उसकी ओर निहारने लगा।

ऊपर जाकर हरिमोहिनी ने अपने देवर के आने का संवाद सुशीला को सूचित किया। पूर्व की भूमिका के साथ मिलान करके सुशीला इस घटना का अर्थ ठीक-ठीक समझ गई। हरिमोहिनी ने उसको समझाने की चेष्टा की कि घर पर एक मेहमान आया है, उसे ऐसी अवस्था मे छोड़ आज ही दोपहर को चला जाना तुम्हारे लिए उचित न होगा, वरन् शिष्टाचार के सर्वथा विरुद्ध होगा।

सुशीला ने बड़े ज़ोर से सिर हिलाकर कहा—नहीं मौसी, मुझे जाना ही होगा।

हरिमोहिनी—अच्छा, तो आज के दिन रह जाओ, कल चली जाना।

सुशीला—मैं अभी स्नान करके परेश बाबू के घर भोजन करने जाऊँगी और वहीं से ललिता के पास जाऊँगी।

तब हरिमोहिनी ने स्पष्ट कहा—तुम्हीं को देखने आये हैं।

सुशीला ने मुँह लाल करके कहा—मुझे देखकर क्या करेंगे?

हरिमोहिनी ने कहा—बाहर पहले देखे-सुने बिना क्या ये काम होते हैं। अब वह समय नहीं रहा। तुम्हारे मौसा ने सुहाग-रात के पहले मुझे नहीं देखा था।—यह कहकर उसने इस सम्बन्ध की बातों की झड़ी बाँध दी कि व्याह के पहले उसके पिता के घर सुप्रसिद्ध राय-परिवार से अनाथबन्धु नामक उनके घर का एक पुराना नौकर और श्यामा नाम की एक चतुरा दासी, सिपाहियाना भेस धारण किये दो दूतों के साथ, किस ठाट-बाट से कन्या देखने आई थी और उस दिन उसके पिता के घर मे कैसी धूम मच गई थी। यह ख़बर पाकर गाँव के कितने ही लोग इकट्ठे हो आये थे। आये हुए उन कन्या-निरीक्षकों के खिलाने-पिलाने और आदर-सत्कार करने के पीछे वे लोग बड़े हैरान थे। इन बातों का सविस्तर वर्णन करके हरिमोहिनी ने लम्बी साँस ली और कहा—बेटी, अब वह समय नहीं रहा।

हरिमोहिनी ने बड़े कोमल स्वर मे कहा—इसमे क्या हानि है, सिर्फ पाँच ही मिनट मे देखा-सुनी हो जायगी।

सुशीला—नहीं।

यह "नहीं" शब्द इतना प्रबल और साफ़ था कि हरिमोहिनी को फिर उसे दुहराने का साहस न हुआ। उसने कहा—अच्छा, न सही। देखने की उतनी ज़रूरत भी नहीं

है। यह तो अपने घर की बात है। परन्तु कैलास आज-कल का लिखा-पढ़ा लड़का है, तुम्हीं लोगों की तरह वह भी कुछ नहीं मानता। कहता है, कन्या को अपनी आँख से देखूँगा। तुम लोग सबके सामने जाती-आती हो, इसी से कहा। देखना तो कोई बड़ी बात नहीं है। किसी दिन तुमसे उसकी भेंट कराऊँगी। अभी तुम लजाती हो, तो भले ही उससे भेंट न करो।

यह कहकर वह कैलास के गुणों का वर्णन करने लगी। उसके हाथ की लिखी एक ही दर्ख़्वास्त से पोस्ट मास्टर की क्या दशा हुई, उसे कितना कष्ट भुगतना पड़ा। गाँव के आसपास चारों ओर जिसे कोई मामला-मुक़दमा करना होता है, वह कैलास से सलाह लिये बिना कुछ नहीं करता। इन बातों को उसने ख़ूब बढ़ा-चढ़ाकर कहा। उसके शील-स्वभाव के बारे में उसने बहुत कहना फ़ज़ूल समझा। इतना ही कहा, स्त्री के मरने पर वह किसी तरह दूसरा ब्याह करना नहीं चाहता था। घर के लोगों ने जब उसे बहुत तङ्ग किया तब वह लाचार होकर केवल गुरुजन की आज्ञा पालन करने को प्रवृत्त हुआ है। इस प्रस्ताव पर राज़ी करने के लिए उसी को क्या कम क्लेश उठाना पड़ा है। क्या कैलास ऐसी साधारण बात पर ध्यान देना चाहता था। उसका वंश बड़ा ही उच्च है। समाज में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा है।

सुशीला ने किसी तरह उनकी प्रतिष्ठा को बिगाड़ना नहीं चाहा। हरिमोहिनी के प्रस्ताव पर वह किसी तरह राज़ी नहीं

हुई। वह नहीं चाहती कि मुझे हरिमोहिनी का कहा गौरव प्राप्त हो। हिन्दू-समाज मे यदि उसे बैठने को जगह न भी मिले तो भी उसे कुछ परवा नहीं। कैलास बहुत तरह से समझाये जाने पर ब्याह करने को राजी हुआ है, यह सुशीला के लिए अल्प सौभाग्य या थोड़े सम्मान की बात नहीं, परन्तु वह मूर्खा यह क्या जाने। बल्कि वह उलटा इसे अपमान का कारण समझ बैठी है। आजकल की इस उलटी समझ से हरिमोहिनी हतबुद्धि हो रही।

तब वह मन की कोपाग्नि से प्रज्वलित हो बार-बार गौरमोहन को लक्ष्य करके कटु वाक्यो का प्रयोग करने लगी। उसने कहा—गौरमोहन अपने को चाहे जितना बड़ा हिन्दू कहकर अपनी बड़ाई करे परन्तु हिन्दू-समाज मे उसे पूछता कौन है। उसे कौन जानता है? यदि वह लोभ मे पड़कर ब्राह्म घर की किसी रुपये-पैसेवाली लड़की से ब्याह करेगा तो समाज के शासन से फिर उद्धार कैसे पावेगा! दस लोगो के मुँह बन्द करने के लिए रुपये फूकने पड़ेगे। तो भी समाज उसे ग्रहण करेगा या नहीं, इसमे सन्देह है।

सुशीला—मोसी, तुम ये बाते क्यो कह रही हो? तुम जानती हो, ये बिलकुल बे सिर पैर की बाते हैं।

हरिमोहिनी ने कहा—मैं बूढ़ी हुई, मुझे कोई बातो मे कैसे ठगेगा? मेरे आँख-कान खुले हैं। मै सब कुछ देखती-सुनती हूँ, परन्तु समझ-बूझकर चुप हो रहती हूँ। गौरमोहन जो

अपनी माँ से सलाह लेकर सुशीला के साथ ब्याह करने की चेष्टा कर रहा है। उस विवाह का गूढ़ उद्देश्य भी वैसा कुछ विशेष नहीं है। यदि वह राय-घराने की सम्मति के अनुकूल सुशीला की रक्षा न कर सकी तो समय पाकर यही होगा। सुशीला अवश्य ही गौरमोहन को आत्मसमर्पण करेगी। इस सम्बन्ध मे उसने अपना निश्चित विश्वास प्रकट किया।

सुशीला का स्वभाव बड़ा ही सहिष्णु था, तथापि वह अब की बार उकताकर बोली—तुम जिनकी बात कह रही हो उन्हे मैं गुरु मानती हूँ, उन पर मेरी हार्दिक भक्ति और श्रद्धा है। उनके साथ मेरा कैसा भाव है, यह जब तुम किसी तरह नहीं समझती तब कोई उपाय नहीं। मैं अब यहाँ से जाती हूँ। जब तुम शान्त होगी तब मेरे हृदय को पहचानोगी, और तुम्हारे साथ अकेली रहने का अवसर होगा तब मैं फिर यहाँ आऊँगी।

हरिमोहिनी—गौरमोहन को यदि तुम दूसरी दृष्टि से देखती हो, यदि उसके साथ तुम्हारा ब्याह न होगा, तो ऐसी अवस्था मे तुम ऐसे योग्य वर (कैलास) का निषेध क्यों करती हो? तुम कुँवारी तो रहोगी नहीं।

सुशीला—क्यों न रहूँगी! मै ब्याह न करूँगी।

हरिमोहिनी ने आँखे फाड़कर कहा—यह कहो, तो बुढ़ापे तक यों ही रहोगी?

सुशीला—हाँ, मृत्युपर्यन्त।

इस आघात से गौरमोहन के मन का भाव बदल गया। सुशीला के द्वारा जो गौरमोहन का मन आक्रान्त हुआ था, उसने उसका कारण सोचकर देखा। वह उन लोगों के साथ हिल-मिल गया है, कब कैसे उन लोगो के साथ इस तरह मिल गया, इसका ज्ञान उसे न रहा। जो निषेध की सीमा थी, उसे गौरमोहन भूल से लाँघ गया है। यह हमारे देश की रीति नही है। कोई अपनी सीमा की रक्षा न कर सकने पर, जानकर या न जानकर, केवल अपना ही अनिष्ट नही कर डालता वरन् दूसरे का हित करने की शक्ति भी उसकी चली जाती है। हृदय की वृत्ति संसर्ग से प्रबल होकर ज्ञान, निष्ठा और शक्ति को मलिन कर देती है। निर्मल बुद्धि भी संसर्ग से बिगड़ जाती है।

केवल ब्राह्म-घर की लड़कियो के साथ मिलने जाकर गौर-मोहन अपने को भूल गया हो, सो नही; वह जो आस-पास के गाँवो मे साधारण लोगों के साथ मिलने गया था, वहाँ भी वह मानों एक भ्रम-जाल मे पड़कर अपने को भूल सा गया था। क्योकि उसको पग-पग पर दया उपजती थी। इसी दया के वश होकर वह केवल यही सोचता था कि यह काम बुरा है, यह अन्याय है, इसको दूर कर देना ही उचित है। किन्तु यह दयावृत्ति क्या भले-बुरे के सुविचार की योग्यता को विकृत नही करती? दया करने की झोक जितनी ही बढ़ उठती है, उतनी ही निर्विकार भाव से सत्य को देखने की हमारी शक्ति

चीण पड़ जाती है। दया-वश हम अयुक्त विचार करने को बाध्य हो पड़ते हैं।

इसलिए जिसके ऊपर देश के समस्त हित का भार है, उसको सबसे निर्लिप्त होकर रहने की विधि हमारे देश मे चली आती है। प्रजा के साथ घनिष्ठ भाव से मिलने ही पर राजा प्रजा का पालन कर सकता है, यह बात सर्वथा अमूलक है। प्रजा के सम्बन्ध मे राजा को जिस ज्ञान की आवश्यकता है वह प्रजा के विशेष सम्पर्क से दूपित हो जाता है। इस कारण प्रजा आप ही अपने राजा से दूर रहकर उसकी आज्ञा का पालन करती है। अगर राजा प्रजा का सहचर हो जाय तो उसकी ज़रूरत ही न रहे।

ब्राह्मण को भी उसी तरह सबसे दूरस्थ और निर्लिप्त रहना चाहिए। ब्राह्मण को बहुतो का मङ्गल करना पड़ता है इस-लिए वह बहुतों के संसर्ग से बचकर रहे इसी मे कुशल है।

गौरमोहन ने कहा—मैं भारतवर्ष का वही ब्राह्मण हूँ। किन्तु जो ब्राह्मण दस लोगो के साथ सम्पर्क रखते हैं और व्यवसाय के कीचड़ मे लोट, धन के लोभ मे पड़, शूद्रत्व की रस्सी गले मे बाँधकर मरने को तैयार है उनकी गणना गौर-मोहन ने स्वदेश के सजीव पदार्थों मे नहीं की। उन्हे शूद्र से भी नीच समझा। क्योंकि शूद्र अपने शूद्रत्व की रक्षा करके जीवित है, किन्तु ये ब्राह्मणत्व के अभाव से मृतप्राय हैं। इसी लिए ये अपवित्र और शक्तिहीन हैं। भारतवर्ष इन्ही के कारण आज ऐसा दीन होकर अशौच मे है।

गौरमोहन ने उन म्रियमाण ब्राह्मणों को पुनः सजीव करने के लिए आज सञ्जीवन मन्त्र की साधना करने का सङ्कल्प करके कहा—इसके लिए मुझे पूर्ण रूप से पवित्र होना पड़ेगा। मैं सबके साथ एक जगह खड़ा होकर हाँ मे हाँ न मिलाऊँगा। किसी के साथ मित्रता जोड़ना भी मेरे लिए ठीक नहीं। स्त्री का साथ जिसके लिए विशेष प्रयोजनीय है, मैं उस श्रेणी का मनुष्य नहीं। देश के अन्य साधारण लोगों का सहवास मेरे लिए सर्वथा त्याज्य है। पृथ्वी सुदूर आकाश की ओर जैसे वृष्टि के लिए ताकती है वैसे ही ब्राह्मण की ओर ये सर्व साधारण लोग ताक रहे है। अगर मै इनके पास ही आ रहूँगा तो इनकी रक्षा कौन करेगा?

इसके पूर्व गौरमोहन का मन कभी देव-पूजा मे नहीं लगता था। जब से उसका हृदय इन बातो को सोचकर क्षुब्ध हो उठा है तब से उसकी कुछ और ही धारणा हो गई है। सभी काम उसे निस्सार मालूम होते हैं। इस असार संसार का विचार कर जब उसने कुछ पार न पाया तब देव-पूजा मे मन लगाने का ही निश्चय किया। कुछ दिन से वह देवमूर्ति के सामने बैठकर उस मूर्ति मे अपने मन को एकदम निविष्ट कर देना चाहता है। परन्तु वह किसी उपाय से अपनी चित्त-वृत्ति को उस मूर्ति मे स्थिर नहीं कर सकता। वह बुद्धि के द्वारा देवता की व्याख्या करता है, उसकी महिमा गाता है। परन्तु कल्पित मूर्ति के आगे उससे भक्ति करते नहीं बनता। आध्या-

त्मिक दृष्टि से मूर्ति-पूजा नहीं की जाती। मन्दिर मे बैठकर मूर्ति-पूजा की कोई चेष्टा न करके जब वह घर बैठकर किसी के साथ आध्यात्मिक आलोचना करता था या एकान्त मे बैठकर अपने मन और वाणी को भाव के स्रोत मे बहा देता था तब उसके हृदय मे आनन्द और भक्तिरस का सञ्चार हो आता था। यह समझकर भी उसने मूर्ति-पूजा करना न छोड़ा। वह नित्य नियमपूर्वक पूजा पर बैठने लगा। इसे उसने अपना नित्य का नियम मान लिया और यह कहकर मन को समझाया कि जहाँ भाव की प्रबलता नहीं वहाँ नियम ही प्रधान है, वहाँ नियम से ही काम लेना चाहिए।

गौरमोहन जब गाँव मे जाता था तब वहाँ के देवालय मे जाकर मन ही मन ध्यान करके कहता था, यही मेरे साधन का विशेष स्थान है; एक ओर देवता और एक ओर भक्ति, इन दोनों के बीच मे ब्राह्मण सेतु-स्वरूप होकर दोनों को परस्पर मिला रहे हैं। क्रमशः गौरमोहन के मन मे यह ख़याल भी पैदा हुआ कि ब्राह्मण के लिए भक्ति की आवश्यकता नहीं। भक्ति साधारण मनुष्यो की ही विशेष सम्पत्ति है। इस भक्त और भक्ति के बीच का जो मार्ग है वही ज्ञान का मार्ग है। यह जैसे दोनों की योगरक्षा कर रहा है, वैसे दोनों की सीमा का भी पालन कर रहा है। भक्त और देवता के बीच यदि निर्मल ज्ञान परदे की तरह न रहे तो सब बाते बिगड़ जायँ। इसलिए भक्ति में तन्मय होना ब्राह्मण के सुख की सामग्री नहीं।

ब्राह्मण ज्ञान के शिखर पर बैठकर इस भक्ति के रस को सर्व साधारण जनो के उपभोगार्थ विशुद्ध रखने के लिए सदा यत्नवान् रहते है। बालक जैसे मिठाई खाकर तृप्त होते हैं वैसे ही भक्त जन भक्ति-रस पान कर तृप्त होते है। ब्राह्मण ज्ञान के पूर्ण अधिकारी होकर इस भक्ति-रस के बॉटनेवाले हैं। ब्राह्मण के लिए संसार जैसे भोग-विलास की वस्तु नही, वैसे ही देव-मूर्ति भी उसके लिए भक्ति-साधन की सामग्री नहीं। ब्राह्मण के लिए ससार मे संयम, नियम, धर्म और ज्ञान, यही साधन के मुख्य पदार्थ हैं।

गौरमोहन को इस मानसिक विचार के आगे हार माननी पड़ी थी, इससे मन के ऊपर क्रुद्ध होकर उसने मन को निकाल देने की बात सोची। उसके इस अपराध के बदले निर्वासन दण्ड का विधान किया। किन्तु उसे बॉधकर देशान्तर को कौन ले जायगा? वह प्रबल सेना है कहॉ?

[७२]

गङ्गा के किनारे एक बाग मे प्रायश्चित्त-सभा की तैयारी होने लगी।

अविनाश के मन मे एक त्रुटि यह मालूम हो रही थी कि कलकत्ते के बाहर जो प्रायश्चित्त का अनुष्ठान हो रहा है, वहॉ लोगो की दृष्टि, जैसी चाहिए, आकृष्ट न होगी। वह जानता था कि गौरमोहन को अपने लिए प्रायश्चित्त की कोई आवश्यकता

नहीं। आवश्यकता है, देश के लोगों के लिए। मारल एफ़ेक्ट। इसलिए लोगों की भीड़-भाड़ मे ही यह काम होना चाहिए।

किन्तु गौरमोहन राज़ी न हुआ। वह वेद-मन्त्र पढ़कर जैसा बृहत् होम करके यह काम करना चाहता है, वैसा कलकत्ता शहर के भीतर होने की सम्भावना नहीं। इसके लिए तपोवन का प्रयोजन है। वेदाध्ययन से प्रतिध्वनित, होमाग्नि से प्रदीप्त गङ्गा के शान्त तट मे दुनिया के गुरु पुराने भारतवर्ष को गौरमोहन जगावेगा, और गङ्गाजल मे स्नान करके पवित्र हो उससे नये जीवन की दीक्षा ग्रहण करेगा। गौरमोहन नैतिक प्रभाव के लिए व्याकुल नहीं है।

अविनाश ने तब अन्य कोई उपाय न देख समाचारपत्रों का सहारा लिया। उसने गौरमोहन से छिपाकर इस प्रायश्चित्त की बात सब समाचारपत्रों मे छपवा दी। केवल यही नहीं, उसने सम्पादकीय कालम मे बड़े-बड़े निबन्ध लिख भेजे। उनमें उसने विशेषकर यही बात जताई कि गौरमोहन के समान तेजस्वी पवित्र ब्राह्मण को कोई दोष स्पर्श नहीं कर सकता। तो भी वे साम्प्रतिक पतित भारतवर्ष के समस्त पातकों का भार अपने ऊपर लेकर सारे देश की ओर से प्रायश्चित्त कर रहे हैं। हमारा देश आज जैसे अपने पाप के फल से विदेशीय के हाथ क़ैद होकर दुःख पा रहा है, वैसे गौरमोहन ने भी अपने जीवन मे क़ैदी बन क़ैदख़ाने का दुःख झेलना स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार जैसे उन्होंने देश का दुःख अपने ऊपर ले लिया है

वैसे ही देश के अनाचार का प्रायश्चित्त भी वे आप ही करने को तैयार हुए हैं। इसलिए हे भारत के पचीस करोड़ दुःखी सन्तानो! तुम लोग इस प्रायश्चित्तकर्त्ता को—इत्यादि।

गौरमोहन इन लेखो को पढ़कर ख़फ़ा हो उठा। किन्तु अविनाश किसी तरह दबनेवाला न था। गौरमोहन उसे गाली भी देता तो भी वह मन मे कुछ न लाता था बल्कि ख़ुश होता था। वह समझता था कि मेरे गुरु (गौरमोहन) का भाव बहुत ऊँचे दर्जे का है। वे संसार से सम्बन्ध रखनेवाली बातों को कुछ भी नहीं समझते। वे वैकुण्ठलोकगामी नारद की भाँति वीणा बजाकर, विष्णु को प्रसन्न कर, गङ्गा की सृष्टि कर रहे हैं किन्तु उस गङ्गा को मर्त्यलोक मे प्रवाहित कर सगर-सन्तान की भस्मराशि को उद्धार करने का काम पृथिवी के भगीरथ का है। वह स्वर्ग के देवता का नहीं। ये दोनो काम बिलकुल स्वतन्त्र हैं।

अविनाश के उत्पात से जब गौरमोहन क्रोध से बावला बन जाता था तब अविनाश मन ही मन हँसता था और गौरमोहन के प्रति उसकी भक्ति बढ़ जाती थी। वह मन ही मन कहता था, हमारे गुरु स्वरूप मे जैसे शिव के सदृश हैं वैसे ही भाव मे भी भोलानाथ हैं। वे कुछ नहीं जानते, सांसारिक ज्ञान की छूत तक उनमे नहीं है। बात-बात मे वे क्रोध से आग-बबूला हो जाते हैं, फिर क्रोध शान्त होते भी देर नहीं लगती।

अविनाश की चेष्टा से गौरमोहन के प्रायश्चित्त के विषय मे चारो ओर ख़ासी धूम मच गई। गौरमोहन को देखने के

लिए, उसके साथ बातें करने के लिए, झुण्ड के झुण्ड लोग उसके घर आने लगे। पहले से भी लोगों की भीड़ बढ़ गई। रोज़-रोज़ उसके पास चारों ओर से इतनी चिट्ठियाँ आने लगी कि उनका पढ़ना भी बन्द कर दिया गया। गौरमोहन को मालूम होने लगा, जैसे इस देशव्यापिनी आलोचना के द्वारा उसके प्रायश्चित्त की सात्विकता नष्ट हो गई हो। यह एक राजस कर्म्म हो गया। यह भी काल का ही दोष है।

कृष्णदयाल आजकल समाचार-पत्रों को हाथ से छूते तक न थे। किन्तु यह बात लोगों के मुँह से उनके कानों में भी जा पहुँची। उनका योग्य पुत्र गौरमोहन बड़े समारोह के साथ प्रायश्चित्त करने बैठा है, और वह अपने पिता के ही पद-चिह्न का अनुसरण करके किसी समय उन्ही की भाँति सिद्ध पुरुष हो जायगा, यह संवाद और यह आशा कृष्णदयाल के कृपा-पात्रो ने उनके आगे बड़े गौरव के साथ प्रकट की।

गौरमोहन के कोठे मे कृष्णदयाल ने बहुत दिनों से पैर न रक्खा था। आज वे अपना रेशमी वस्त्र उतारकर, सूती कपड़े पहिरकर, एकाएक उसके कोठे मे गये। वहाँ उन्होने गौरमोहन को नही देखा। नौकर से पूछने पर मालूम हुआ कि वह ठाकुरजी के घर मे है।

कृष्णदयाल ने चकित होकर फिर नौकर से पूछा—अयँ! ठाकुरजी के कमरे मे उसका क्या काम है?

"वे पूजा करते हैं।"

कृष्णदयाल ने हड़बड़ाकर ठाकुरजी के घर के पास जाकर देखा कि यथार्थ ही गौरमोहन पूजा पर बैठा है।

कृष्णदयाल ने बाहर से पुकारा—गोरा।

गौरमोहन अपने पिता के आगमन से आश्चर्ययुक्त होकर उठ खड़ा हुआ। कृष्णदयाल ने अपने सिद्धाश्रम में विशेष रूप से अपने इष्ट देवता की ही प्रतिष्ठा की है। उनका परिवार वैष्णव था। किन्तु उन्होंने शक्ति का मन्त्र लिया है। कुल-देवता के साथ बहुत दिनों से उनका दर्शन पूजन आदि सम्बन्ध छूटा हुआ है। उन्होंने गौरमोहन से कहा—आओ, आओ, बाहर आओ।

गौरमोहन बाहर आ गया।

कृष्णदयाल ने कहा—यह क्या। यहाँ तुम्हारा क्या काम है।

गौरमोहन कुछ न बोला। कृष्णदयाल ने कहा—पुजारी ब्राह्मण है, वह तो प्रतिदिन पूजा करता ही है। उसी के द्वारा घर भर की ओर से पूजा होती है। तुम पूजाघर के भीतर क्यों आते हो।

गौर—आने में क्या दोष है ?

कृष्णदयाल—बहुत बड़ा दोष है। जिसको जहाँ जाने का अधिकार नहीं, वह वहाँ पर क्यों जाय। जाने से अपराध होता है। सिर्फ़ तुम्हीं नहीं, घर भर के हम सभी लोग इस दोष के भागी होते हैं।

गौरमोहन—यदि आन्तरिक भक्ति की ओर दृष्टि देकर देखे तो देवता के सामने बैठने का अधिकार बहुत थोड़े लोगों को है। किन्तु आप क्या यह कहते है कि हमारे इस रामभजन पाण्डेय को यहाँ पूजा करने का जो अधिकार है, मुझे वह भी नहीं।

कृष्णदयाल गौरमोहन को क्या जवाब दे, यह उन्हे न सूझा। कुछ देर चुप रहकर बोले—देखो, पूजा करना ही रामभजन का जाति-व्यवसाय है। व्यवसाय मे जो अपराध होता है, उसे देवता ग्राह्य नही करते। अगर वे उसका अपराध देखा करें तो पूजा का व्यवसाय ही बन्द हो जाय—तो फिर समाज का काम ही न चले। किन्तु तुम तो पुजारी नही हो, पूजा करना तुम्हारा पेशा नही, तब तुम्हे इस घर मे जाने की ज़रूरत ?

गौरमोहन के सदृश आचारनिष्ठ ब्राह्मण के लिए भी ठाकुरजी के मन्दिर मे प्रवेश करना अपराध है, यह बात कृष्णदयाल के सदृश मान्य व्यक्ति के मुँह से नितान्त असङ्गत न मालूम हुई। इसलिए गौरमोहन ने इसे सह लिया, कुछ प्रतिवाद न किया।

तब कृष्णदयाल ने फिर कहा—गोरा, एक बात और सुनता हूँ। तुम प्रायश्चित्त करोगे, इसके लिए क्या सब पण्डितों को निमन्त्रित किया है ?

गौरमोहन—जी हाँ।

कृष्णदयाल ने अत्यन्त उत्तेजित होकर कहा—मैं अपने जीते जी यह कभी न होने दूँगा।

गौरमोहन अब अपने मन को न रोक सका। उसने पूछा—क्यों?

कृष्णदयाल—मैंने तुमसे एक दिन और कहा था कि तुम प्रायश्चित्त न कर सकोगे।

गौर—कहा तो था, किन्तु कारण तो आपने कुछ बताया नहीं।

कृष्णदयाल—कारण बताने की मैं कोई आवश्यकता नहीं देखता। हम तो तुम्हारे गुरुजन हैं, मान्य हैं, शास्त्रीय क्रिया-कर्म हमारी अनुमति के बिना तुम नहीं कर सकते। उसमे पितरो का श्राद्ध करना पड़ता है, सो जानते हो न।

गौरमोहन ने विस्मित होकर कहा—इसमे हानि क्या है?

कृष्णदयाल ने क्रुद्ध होकर कहा—बड़ी हानि है। वह मैं कभी न होने दूँगा।

गौरमोहन ने हृदय मे आघात पाकर कहा—देखिए, यह मेरा निजी काम है। मैंने अपनी पवित्रता के ही लिए यह आयोजन किया है। इस पर आप वृथा आलोचना करके क्यों कष्ट पा रहे हैं?

कृष्णदयाल—देखो, तुम बात-बात मे तर्क करना छोड़ दो। यह तर्क का विषय नहीं है। ऐसे बहुत से विषय है जो अब भी तुम्हारे समझने योग्य नहीं। मैं फिर भी तुमसे कहता हूँ कि तुम हिन्दूधर्म मे प्रवेश कर सके हो, इसी का तुमको गर्व है, किन्तु यह तुम्हारी बिलकुल भूल है। तुम कभी हिन्दू

हो नहीं सकते। तुम्हारे शोणित का प्रत्येक कण तुम्हारे सिर से पैर तक उस धर्म के प्रतिकूल है। हिन्दू होने की तुममे कोई योग्यता नहीं। इच्छा करने से भी तुम हिन्दू नहीं होगे। इसके लिए जन्म-जन्मान्तर का पुण्य चाहिए।

गौरमोहन का मुँह लाल हो गया। उसने कहा—मैं जन्म-जन्मान्तर की बात नहीं जानता, किन्तु आपके वंश की रक्त-धारा मे जो अधिकार प्रवाहित होता आया है, क्या उस पर भी मै कोई दावा नहो कर सकता !

कृष्णदयाल—फिर भी विवाद ! मेरे मुँह पर प्रतिवाद करते तुम्हे सङ्कोच नहीं होता ! अपने को हिन्दू कहते हो, परन्तु विलायती बोली कहाँ जायगी। मैं जो कहता हूँ उसे मानो, यह सब करना छोड़ दो।

गौरमोहन सिर झुकाकर चुप हो रहा। कुछ देर बाद बोला—यदि मै प्रायश्चित्त न करूँगा तो शशिमुखी के व्याह मे मैं सबके साथ बैठकर भोजन नहीं कर सकूँगा।

कृष्णदयाल उत्साहित होकर बोले—अच्छा, तो इसमे हर्ज ही क्या है। तुम अलग ही बैठकर खा लेना। तुम्हारे लिए अलग आसन रखवा दिया जायगा।

गौरमोहन—तो समाज मे मुझे अलग होकर रहना पड़ेगा।

कृष्णदयाल—यह तो अच्छा ही होगा। अपने इस उत्साह से गौरमोहन को विस्मित होते देख उन्होंने कहा—

देखते नहीं हो, मैं किसी के साथ भोजन नहीं करता, निमन्त्रण होने पर भी किसी के हाथ का छूआ नहीं खाता। समाज के साथ मेरा क्या सम्पर्क है? तुम जिस सात्त्विक भाव से जीवन बिताना चाहते हो उसके लिए तुम्हे भी इसी मार्ग का अवलम्बन करना उचित है। इसी मे तुम्हारा मङ्गल है।

कृष्णदयाल ने दोपहर के समय अविनाश को बुलाकर कहा—मालूम होता है, तुम्हीं सबने मिलकर गोरा को नचाने का सामान किया है।

अविनाश—यह आप क्या कहते हैं! आप ही का गोरा हम लोगो को नचा रहा है, वह आप तो कम ही नाचता है।

कृष्णदयाल—परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम लोगो का प्रायश्चित्त न होगा। मेरी उसमे सम्मति नहीं है। अभी सब रोक दो।

अविनाश सोचने लगा, बूढ़े की यह कैसी ज़िद है! इतिहास मे ऐसे बहुत लोग पाये जाते हैं, जो अपने पुत्र के महत्त्व से एकदम अपरिचित थे। हमारे कृष्णदयाल भी उसी श्रेणी के हैं। यदि ये दिन-रात संन्यासियो के पास न रहकर अपने बेटे से शिक्षा ग्रहण करते तो इनका विशेष उपकार होता।

अविनाश बड़ा चतुर आदमी था। जहाँ वाद-प्रतिवाद में कोई फल न देखता था, यहाँ तक कि "नैतिक प्रभाव" की भी सम्भावना कम देखने पर वह वृथा विवाद न करता था।

उसने कहा—अच्छा, जो आपकी सम्मति नहीं है तो न होगा। पर बात यह है कि उसका सब आयोजन हो चुका है, निमन्त्रणपत्र भी जहाँ-तहाँ भेजे जा चुके हैं। इसमें अब विलम्ब भी नहीं है, न हो तो एक काम किया जाय। गौरमोहन अलग रहे, हमी लोग प्रायश्चित्त कर ले। देशीय लोगों के पाप का तो अभाव नहीं है।

अविनाश के इस आश्वासन-वाक्य से कृष्णदयाल निश्चिन्त हुए।

कृष्णदयाल की बात पर गौरमोहन की विशेष श्रद्धा कभी नहीं थी, आज भी उसने उनके आदेश को हृदय से स्वीकार न किया। यद्यपि वह देशोपकार के आगे माँ-बाप के हुक्म की पाबन्दी को नही मानता था, तो भी आज दिनभर उसके मन मे पिता के निषेध वाक्य पर दुःख होता रहा। कृष्णदयाल की सब बातों में उसे एक छिपे हुए सत्य रहस्य की धुँधली छाया मालूम होती थी। जितना ही वह सोचता था उतना ही उसका सन्देह दृढ़ होता जाता था। मानों जागने पर वह एक दुःस्वप्न का दुःख पा रहा था। उसे मालूम होने लगा जैसे कोई उसे चारों ओर से ढकेलकर पंक्ति से बाहर फेंक देने की चेष्टा कर रहा हो। आज उसको अपनी एकाकिता एक बृहत् रूप धारण किये दिखाई दी। उसके आगे कर्म-क्षेत्र बहुत लम्बा-चौड़ा है, काम भी बहुत बड़ा है, किन्तु वह अकेला खड़ा है, उसके पास और कोई नहीं है।

कल प्रायश्चित्त सभा होगी। आज रात ही से गौरमोहन बाग़ मे जाकर रहेगा, यही निश्चय हुआ। जब वह जाने की तैयारी कर रहा था उसी समय हरिमोहिनी आ गई। उसे देख गौरमोहन का जी प्रसन्न न हुआ। उसने कहा—आप आई हैं, और मैं अभी बाहर जाने को तैयार हूँ। माँ भी कई दिनो से घर मे नही हैं, यदि उनसे प्रयोजन हो तो—

हरिमोहिनी—नहीं बाबू, मैं तुम्हारे ही पास आई हूँ, ज़रा तुमको बैठना पड़ेगा। बहुत देर तक न बिठाऊँगी।

गौरमोहन बैठ गया। हरिमोहिनी ने सुशीला की बात चलाकर कहा—तुम्हारी शिक्षा से उसका बड़ा उपकार हुआ है। अब तो वह जिस-तिस के हाथ का छूआ पानी नही पीती और उसे हिन्दूधर्म पर बड़ी निष्ठा उत्पन्न हुई है। उसके लिए क्या मुझे कम चिन्ता थी। उसे तुमने रास्ते पर लाकर मेरा कितना बड़ा उपकार किया है, यह मैं एक मुँह से कहाँ तक वर्णन करूँ। ईश्वर तुम्हे लाख वर्ष की आयु दे। तुम अपने कुल-शील के अनुकूल एक सुन्दर लड़की को अच्छे घर से ब्याह लाओ। तुम्हारा घर बसे, धन-जन से तुम्हारा घर भरपूर हो।

फिर बोली—सुशीला सयानी हुई, अब उसका ब्याह कर देने मे क्षण मात्र का भी विलम्ब करना उचित नहीं। हिन्दू के घर मे रहती तो अब तक सन्तान से उसकी गोद कभी की भर

जाती। विवाह मे विलम्ब होना कितना बड़ा अन्याय हुआ है, इस सम्बन्ध मे गौरमोहन अवश्य ही मुझसे सहमत होगा, यह सोचकर हरिमोहिनी बड़ी देर तक कन्यादान के उपयुक्त समय पर धर्म-शास्त्र की आलोचना करती रही। पीछे बोली—सुशीला के ब्याह की बात स्थिर करने के लिए मैंने कितने ही कष्ट सहे है। अन्त मे बहुत अनुनय-विनय करने पर अपने देवर कैलास को राज़ी करके कलकत्ते लाई हूँ। मैंने जिन कठिन विघ्न-बाधाओ की आशङ्का की थी, वे सभी ईश्वर की कृपा से कट गईं। सब बात पक्की हो गई। वर की ओर से एक पैसा चढ़ौआ नहीं लिया जायगा। और सुशीला का पूर्व-वृत्तान्त जानकर भी कोई आपत्ति न की जायगी। इन सब बातों को मैंने बड़े कौशल से पहले ही तय कर लिया है। मैंने असम्भव को सम्भव कर दिखाया है। लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा, परन्तु सुशीला मेरे इस असाध्य साधन पर कृतज्ञता क्या प्रकट करेगी, उलटा विरुद्ध हो पड़ी है। उसके मन का भाव क्या है, यह मेरी समझ मे नही आता। किसी ने उससे कुछ कह दिया है, या उसका मन किसी और ही तरफ़ ढुल गया है यह भगवान् जानें।

किन्तु मैं तुमसे स्पष्ट कहती हूँ, वह लड़की तुम्हारे योग्य नहीं। देहात मे उसका ब्याह होने से उसकी बात कोई नही जान सकेगा, किसी तरह उसका निर्वाह हो जायगा। किन्तु तुम शहर के रहनेवाले हो, शहर मे कोई बात दबाने से दब

नहा सकती। यदि उससे व्याह करोगे तो शहर के लोगों के सामने तुम मुँह दिखाने योग्य न रहोगे।

गौरमोहन ने क्रुद्ध होकर कहा—आप यह क्या बक रही हैं। किसने आपसे कहा है कि मैं उससे व्याह करने ही के लिए उसके पास जाकर शास्त्रीय आलोचना करता था!

हरिमोहिनी—मैं कैसे जानूँ बेटा! बात समाचार-पत्र में छप गई है, वही सुनकर तो मैं लज्जा से मरी जाती हूँ।

गौरमोहन ने समझा कि हरि बाबू ने या उसके दल के किसी व्यक्ति ने अपने काग़ज़ मे इस बात का उल्लेख किया है। वह मुट्ठी बाँधकर बोला—झूठ! बिलकुल झूठ!

हरिमोहिनी उसके इस गर्जन-शब्द से चौंक उठी और डरकर बोली—मैं भी तो यही जानती हूँ। मैं अब तुमसे एक अनुरोध करती हूँ, वह रखना ही होगा। एक बार तुम राधा-रानी के पास चलो।

गौर—क्यों?

हरिमोहिनी—तुम एक बार उसे समझा देना।

गौरमोहन का मन इस उपलक्ष्य का अवलम्बन कर सुशीला के पास जाने को उद्यत हुआ। उसने मन मे कहा—चलो, आज आख़िरी मुलाक़ात कर आवे। कल तुम्हारा प्रायश्चित्त होगा। उसके अनन्तर तुम तपस्वी होगे। आज किसी से मिलने का यही एक रात्रि-मात्र समय है। इसमे यदि कुछ देर

के लिए किसी से मिलूँगा तो कोई अपराध नहीं। अगर अपराध होगा ही तो कल भस्म हो जायगा।

गौरमोहन ने कुछ देर तक चुप रहकर पूछा—उसे क्या समझाना होगा!

और कुछ नहीं—यही कि हिन्दू आदर्श के अनुसार सुशीला सी सयानी लड़की को शीघ्र ही ब्याह कर लेना चाहिए और हिन्दू-समाज मे कैलास के सदृश वर मिलना उसके लिए परम सौभाग्य है। भाग्य ही से उसे ऐसा वर मिला है।

गौरमोहन के हृदय मे यह बात बर्छी की तरह बिधने लगी। जिस व्यक्ति को उसने सुशीला के दर्वाज़े के पास देखा था, उसकी सूरत-शकल याद कर गौरमोहन को मानो बिच्छू ने डङ्क मार दिया। वह सुशीला का हाथ पकड़े, इस बात की कल्पना करना भी गौर के लिए असह्य हो गया। उसने कड़ककर कहा—नहीं, यह कभी नहीं हो सकता।

अब किसी के साथ सुशीला का मिलना असंभव है। बुद्धि और भाव से भरा हुआ सुशीला का गम्भीर हृदय गौरमोहन को छोड़ किसी अन्य व्यक्ति के निकट न कभी इस तरह प्रकाशित हुआ है और न होगा। दैवयोग से ही गौरमोहन ने सुशीला को ऐसे सुदृढ़ सत्य रूप मे देखा है और अपनी सारी बुद्धि के द्वारा उसका अनुभव किया है। तभी उसने उसके हृदय की गम्भीरता का कुछ पता पाया है। दूसरा कोई कैसे उसके गाम्भीर्यभाव का पता पावेगा?

हरिमोहिनी—क्या राधा रानी यों ही सदा कौमार व्रत धारण किये रहेगी। क्या ऐसा भी कभी हो सकता है ?

देखो तो सही। कल गौरमोहन भी प्रायश्चित्त करने को जा रहा है। इसके बाद वह पवित्र हो ब्राह्मणत्व लाभ करेगा और अपने धर्म का पालन करेगा। तो सुशीला क्या सदा कुँवारी ही रहेगी ! उसके ऊपर यह चिरजीवनव्यापी भार डालने का अधिकार किसको है ? स्त्रियों के लिए ऐसा बड़ा भार और क्या हो सकता है ?

हरिमोहिनी कितना क्या बक गई, वह गौरमोहन के कान मे नहीं पहुँचा। वह मन ही मन सोचने लगा, पिता जो इस तरह मुझे प्रायश्चित्त करने से रोकते हैं सो क्या उनके इस निषेध का कोई मूल्य नहीं है ? मैं जो अपने जीवन की बात सोच रहा हूँ, वह शायद मेरी कल्पना मात्र हो, हो सकता है, वह मेरा स्वाभाविक न हो। मैं उस झूठी समझ का बोझ ढोते-ढोते किसी दिन लँगड़ा हो जाऊँगा। उस भ्रमात्मक ज्ञान के निरन्तर भार से मैं जीवन का कोई काम सहज ही सम्पन्न न कर सकूँगा। यह जो इच्छा हृदय को जकड़े हुए है उसे मैं कहाँ ले जाऊँ, उसे किधर हटाऊँ। पिताजी ने कैसे समझ लिया कि मैं भीतर से ब्राह्मण नहीं हूँ, मैं तपस्वी नहीं हूँ; मन्दिर मे प्रवेश करने का मुझे अधिकार नहीं है। इसी लिए उन्होने बरजोरी मुझे प्रायश्चित्त करने से रोका है।

गौरमोहन ने कहा—चलो रे मन, उन्हीं के पास ! एक बार जाकर उनसे पूछूँ तो, उन्होंने मुझमे कौन सा दोष देख लिया है। प्रायश्चित्त भी मै नहीं करने पाऊँगा, ऐसी बात उन्होने क्यो कही। अगर मुझे समझा दें तो मैं उस ओर से छुट्टी पा जाऊँ। सदा के लिए छुट्टी।

गौरमोहन ने हरिमोहिनी से कहा—आप ज़रा यहाँ बैठें, मै अभी आता हूँ।

यह कहकर वह झटपट पिता के सिद्धाश्रम की ओर गया। उसको ऐसा मालूम होने लगा जैसे उसके पिता कृष्णदयाल अभी उसके मन का सन्देह दूर कर देंगे।

सिद्धाश्रम का द्वार भीतर से बन्द था। दो-एक बार धक्का देने पर भी किवाड़ न खुले। किसी की कुछ आहट भी न मिली। भीतर से धूप का सुगन्ध आ रहा था। कृष्ण-दयाल आज संन्यासी को लेकर एकान्त स्थान मे एक अत्यन्त गूढ़ और कठिन योग का अभ्यास कर रहे हैं। इसी से घर के सभी द्वार भीतर से बन्द कर दिये गये हैं। आज सारी रात फाटक बन्द रहेगा। उधर किसी को जाने का अधिकार नहीं।

[७४]

गौरमोहन ने कहा—नहीं, प्रायश्चित्त कल नहीं होगा। मेरा प्रायश्चित्त तो आज ही आरम्भ हो गया है। कल की अपेक्षा आग आज ही ख़ूब प्रज्वलित हो रही है। मेरे नवीन

जन्म के आरम्भ मे मुझे एक बहुत बड़ा हवन करना पड़ेगा, इसी लिए विधाता ने मेरे मन मे इतनी बड़ी वासना को जगा रक्खा है। नही तो ऐसी अद्भुत घटना सङ्घटित क्यों होती! मैं कहाँ था, और कहाँ आ पड़ा। इन लोगों के साथ मेरे मिलने की कोई सम्भावना न थी। और ऐसे विरुद्ध भाव का मिलन भी संसार मे संयोग से ही होता है। फिर उस मिलन से मेरे सदृश उदासीन मनुष्य के मन मे इतनी बड़ी दुर्निवार वासना उत्पन्न हो, इस बात की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। ठीक आज ही मेरी इस वासना का प्रयोजन था। आज तक मैंने देशसेवा मे जो कुछ दिया है वह बहुत ही साधारण था। ऐसा कोई दान नही किया जा सका है, जिससे मुझे कुछ कष्ट मालूम हुआ हो। मै यह नही समझ सकता था कि लोग देश के लिए कोई वस्तु त्याग करने मे कदर्यता क्यों दिखाते हैं। किन्तु भारी यज्ञ ऐसे साधारण दान की अपेक्षा नही रखता। कल सवेरे सर्वसाधारण लोगों के सामने मेरा लौकिक प्रायश्चित्त होगा। ठीक उसके पूर्व, रात मे ही, मेरे जीवन-विधाता ने आकर इस द्वार पर धक्का दिया है। अन्तःकरण के भीतर मेरा आन्तरिक प्रायश्चित्त हुए बिना मैं कल क्योंकर विशुद्ध हो सकूँगा। जो दान मेरे लिए सबसे बढ़-कर कठिन है, वह दान आज अपने देवता को सम्पूर्ण उत्सर्ग कर दूँगा, तभी मैं पूर्ण रूप से पवित्र हो सकूँगा, तभी मैं ब्राह्मण हूँगा। इन बातों को मन ही मन सोचता हुआ ज्योंही गौर-

मोहन हरिमोहिनी के पास आया त्योंही हरिमोहिनी ने कहा—एक बार तुम मेरे साथ चलो। तुम्हारे जाने से, तुम्हारे दो-एक बात कहने ही से सब ठीक हो जायगा।

गौर—मैं क्यों जाऊँ! उसके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है?

हरिमोहिनी—वह तुम पर बड़ी श्रद्धा रखती है। देवता की भाँति तुम्हारी भक्ति करती है और तुमको गुरु मानती है।

गौरमोहन के हृत्पिण्ड को छेदकर मानों सुई इस पार से उस पार निकल गई। उसने कहा—मैं जाने का कोई प्रयोजन नहीं देखता। अब उसके साथ मेरी भेंट होने की कोई सम्भावना नहीं।

हरिमोहिनी ने हुलसकर कहा—यह तो तुम्हारा कहना सही है। इतनी बड़ी लड़की से भेट मुलाक़ात होना अच्छा नहीं। किन्तु आज का मेरा यह काम न कर देने से तुम छुट्टी न पाओगे। इसके बाद मै तुमसे कभी कुछ न कहूँगी।

गौरमोहन ने बार-बार सिर हिलाया। अब नहीं, कदापि नहीं। उपदेश का अन्त हो गया है। वह अपने लिए ईश्वर से निवेदन कर चुका है। वह अपनी पवित्रता मे अब कोई दाग़ लगने न देगा। अब वह उससे भेंट करने को न जायगा।

हरिमोहिनी ने जब देखा कि गौरमोहन किसी तरह जाने को राज़ी नही होता तब उसने कहा—अगर तुम नहीं ही चल सकते तो एक काम करो। उसको एक चिट्ठी लिख दो।

गौरमोहन ने सिर हिलाकर कहा—यह भी नहीं हो सकता। चिट्ठी-पत्री कुछ नहीं।

हरिमोहिनी—अच्छा, तो तुम मुझी को दो पंक्तियाँ लिख दो। तुम सब शास्त्र जानते हो, मैं तुमसे व्यवस्था लेने आई हूँ।

गौर—कैसी व्यवस्था ?

हरिमोहिनी—हिन्दू घर की लड़की को उपयुक्त अवस्था में ब्याह करके गृह-धर्म का पालन करना ही सब धर्मों से बढ़कर है।

गौरमोहन कुछ देर चुप रहकर बोला—आप इन बातों मे मुझे मत घसीटिए। मैं व्यवस्था देनेवाला पण्डित नहीं हूँ।

हरिमोहिनी ने तब कुछ अनखाकर कहा—तुम अपने मन की बात खोलकर क्यों नहीं कहते ? शुरू से फन्दे मे फँसाये हुए हो तुम्हीं—अब सुलझाने के समय कहते हो, मुझे मत घेरो। इसका अर्थ क्या ? साफ़-साफ़ क्यों नहीं कह देते, तुम्हारी इच्छा नहीं कि उसके मन की गाँठ खुले।

और कोई समय होता तो गौरमोहन क्रोध से पागल हो उठता। ऐसा सत्य अपवाद भी वह नहीं सह सकता। किन्तु आज उसका प्रायश्चित्त आरम्भ हुआ है इससे उसने क्रोध न किया। उसने मन मे खूब विचारकर देखा, हरिमोहिनी सच ही कह रही है। वह सुशीला के साथ मोटे बन्धन को काट डालने के लिए निर्मोह हो उठा है किन्तु एक पतला सूत रह गया है मानो वह किसी को सूझता नहीं, ऐसा कपट भाव करके

उसे तोड़ना नहीं चाहता। वह सुशीला के सम्बन्ध को अब भी सर्वथा नहीं त्याग सकता।

किन्तु इस कृपणता को दूर करना होगा। एक हाथ से दान करके दूसरे हाथ से रख छोड़ना कैसे हो सकता है!

तब उसने एक काग़ज़ निकालकर खूब ज़ोर से बड़े-बड़े अक्षरों मे लिखा—विवाह ही स्त्री-जीवन मे साधन का मार्ग है। गृह-धर्म ही उसका प्रधान धर्म है। यह विवाह विषय-भोग के लिए नहीं, कल्याण-साधन के लिए है। संसार सुखमूलक हो या दुःखमूलक, सती स्त्री पवित्रता-पूर्वक एकचित्त से उस संसार को स्वीकार करके अपने घर के भीतर धर्म को मूर्तिमान् कर रक्खे—यही उसका व्रत है, यही उसका मुख्य कर्तव्य है।

हरिमोहिनी—इसके साथ हमारे कैलास की भी कोई बात लिख देते तो अच्छा होता।

गौर—नहीं, मैं उनको नहीं जानता। उनके सम्बन्ध की कोई बात नहीं लिख सकता।

हरिमोहिनी काग़ज़ को यत्न से मोड़ आँचल में बाँधकर लौट आई। सुशीला तब भी अपने घर न आई थी, वह आनन्दी के पास ललिता के घर में थी। वहाँ सुशीला के साथ बात-चीत करने का सुभीता न होगा और ललिता और आनन्दी से विरुद्ध बाते सुनकर उसके मन मे सन्देह भी उत्पन्न हो सकता है, यह आशङ्का करके हरिमोहिनी ने उसे कहला भेजा—कल दो-पहर को तुम यहीं आकर भोजन करना, तुमसे

आवश्यक बातें करनी हैं। फिर तीसरे पहर को यहाँ से चली जा सकती हो।

दूसरे दिन सुशीला मन को कठिन करके ही आई। वह जानती थी कि मौसी मुझसे इस विवाह की बात ही फिर घुमा-फिराकर कहेगी। आज मैं उसे सख़्त जवाब देकर बात को एकदम ख़तम कर दूँगी। यही उसका सङ्कल्प था।

सुशीला जब खा चुकी, तब हरिमोहिनी ने कहा—कल साँझ को मैं तुम्हारे गुरु के पास गई थी।

सुशीला क्षुब्ध हो गई। सोचने लगी कि न मालूम फिर यह मेरी बात कहकर कहीं उनका अपमान न कर आई हो।

हरिमोहिनी—डरो मत, मैं उनसे झगड़ा करने को नहीं गई थी। अकेली थी; सोचा, ज़रा उनसे मिल आऊँ। उनके मुँह से कुछ धर्म-सम्बन्धी बातें सुनकर जी को ठण्डा कर आऊँ। बात ही बात में तुम्हारा ज़िक्र निकल आया। देखा, उनका भी यही मत है। लड़की बहुत दिन तक कुँवारी रहे इसे वे अच्छा नहीं बताते। वे कहते हैं, शास्त्र के मत से यह अधर्म है। ये बातें किरिस्तानों के घर में चलती हैं, हिन्दुओं के घर में नहीं। मैंने उनसे अपने कैलास की बात भी खोलकर कही। वह पढ़ा-लिखा होशियार आदमी है, उसे कौन नहीं जानता।

लज्जा और मर्मान्तिक कष्ट से सुशीला मरने लगी। हरि-मोहिनी ने कहा—उनको तुम गुरु मानती हो! उनकी बात तो तुमको रखनी पड़ेगी।

सुशीला कुछ न बोली। हरिमोहिनी ने कहा—मैंने गौर बाबू से कहा था, आप स्वयं जाकर उसे समझा दे, वह हमारी बात नहीं मानती। उन्होंने कहा—नहीं, अब उसके साथ मुलाक़ात करना ठीक न होगा। यह हमारे हिन्दू-समाज के ख़िलाफ़ है। मैंने कहा, तो उपाय क्या! तब उन्होंने मुझे अपने हाथ से लिख दिया, यह देखो न।

यह कहकर हरिमोहिनी ने धीरे-धीरे आँचल से काग़ज़ खोल उसे पसारकर सुशीला के सामने रख दिया।

सुशीला ने मन ही मन पढ़ा। पढ़ते ही मानों उसकी साँस बन्द हो गई। वह पत्थर की मूर्ति की भाँति निश्चेष्ट बैठ रही।

लेख मे कुछ नई या असङ्गत बात न थी। लिखित वाक्यों के साथ सुशीला का कोई मत-भेद भी न था। किन्तु हरिमोहिनी के हाथ से विशेषकर इस विषय की लिपि उसके पास भेज देने का जो अर्थ था वही सुशीला के विविध कष्टों का कारण हुआ। गौरमोहन के मुँह से आज यह आदेश क्यों! सुशीला का भी वह एक दिन अवश्य आवेगा। उसे भी एक दिन विवाह करना होगा। इसके लिए गौरमोहन को इतनी आतुरता दिखलाने का क्या कारण हुआ! उसके सम्बन्ध मे गौरमोहन का काम क्या समाप्त हो गया है? क्या उसने गौरमोहन के कर्तव्य मे कोई हानि की है या उसके जीवन-पथ मे कोई बाधा हुई है? उसे गौरमोहन को साहाय्य देने या उससे उपकार की प्रत्याशा करने का अब कुछ भी आसरा न रहा! किन्तु वह

ऐसा न सोचती थी। वह अब भी रास्ता देख रही थी। सुशीला अपने इन मानसिक कष्टों के विरुद्ध प्राणपण से लड़ने को तैयार हुई परन्तु वह किसी तरह धैर्य धारण न कर सकी।

हरिमोहिनी ने सुशीला को देर तक सोचने का समय दिया। वह अपने नित्य नियमानुसार कुछ देर के लिए सो रही। नींद टूटने पर उसने सुशीला के कोठे में जाकर देखा, वह जैसी बैठी थी, वैसी ही चुपचाप बैठी है।

हरिमोहिनी ने कहा—राधा, तू किस भावना में पड़ी है, इतना क्यों सोच रही है। इसमें सोचने की कौन सी बात है? क्या गौरमोहन बाबू ने कुछ अनुचित लिखा है?

सुशीला ने गम्भीर स्वर में कहा—नहीं. उन्होंने ठीक ही लिखा है।

हरिमोहिनी हुलसकर बोल उठी—बेटी, तो अब देरी करने से क्या होगा?

सुशीला—नहीं, देरी करना नहीं चाहती, मैं एक बार पिताजी के पास जाऊँगी।

हरिमोहिनी—देखो बेटी, तुम्हारा जो हिन्दू-समाज में विवाह होगा, यह तुम्हारे बाबूजी कभी पसन्द न करेंगे। किन्तु तुम्हारे जो गुरु हैं वे—

सुशीला उकताकर बोल उठी—मौसी, तुम इस बात के पीछे क्यों इस तरह पड़ी हो! मैं उनसे ब्याह की कोई बात कहने नहीं जाती, उनके पास यों ही एक बार जाना चाहती हूँ।

परेश के ही निकट सुशीला की सान्त्वना का स्थान था। उनके पास पहुँचते ही सुशीला के मन की चिन्ता कोसों दूर भाग जाती थी। सुशीला ने परेश बाबू के घर जाकर देखा, वे एक बक्स मे अपने हाथ से कपड़े इत्यादि सँवारकर रखने मे लगे है।

सुशीला ने पूछा—पिताजी, यह क्या ?

परेश ने मुस्कुराकर कहा—बेटी, मैं शिमला पहाड़ पर घूमने जाता हूँ—कल सबेरे की गाड़ी से रवाना हूँगा।

परेश की इस मुस्कुराहट के भीतर जो एक भारी विप्लव का इतिहास छिपा था, वह सुशीला से छिपा न रहा। घर मे उनकी धर्मपत्नी और कन्याएँ और बाहर उनके बन्धु-बान्धव उनको शान्ति का अवकाश न देते थे, उनके स्थिर होकर ईश्वर की उपासना करने मे विघ्न डालते थे। यदि कुछ दिन के लिए भी वे दूर जाकर इस आफ़त को टाल न आवेंगे तो घर मे केवल उन्हें केन्द्र बनकर रहना होगा और उनके चारो ओर कुचक्र घूमता रहेगा। कल उनको विदेश जाना है, आज एक बार भी कोई उनको देखने न आया। कोई अपने घर का आत्मीय व्यक्ति उनके कपड़े आदि सफ़र का सामान ठीक करने न आया। उनको आपही यह सब काम करना पड़ा है, यह देखकर सुशीला के मन मे बड़ी चोट लगी। उसने परेश बाबू को हटाकर पहले उस सन्दूक़ से सब चीज़े बाहर कर डाला, और फिर बड़े यत्न से कपड़ों को तहाकर उन्हे ठिकाने से बक्स के भीतर सँवार-कर रखने लगी। उनके नित्य पाठ की पुस्तकों को उसने इस

तरह रक्खा, जिसमे बक्स मे से सहज ही वे पुस्तके बाहर निकाली जा सके और सामान को इधर-उधर हटाना न पड़े। इस प्रकार कपड़ों को सँवारते-सँवारते सुशीला ने धीरे से पूछा—बाबूजी, क्या आप अकेले ही जायँगे ?

परेश ने सुशीला के इस प्रश्न के भीतर वेदना का आभास पाकर कहा—उसमे मुझे कोई कष्ट न होगा।

सुशीला—नहीं, मै आपको अकेले न जाने दूँगी, मै भी आपके साथ जाऊँगी। मै आपको कुछ दिक न करूँगी।

परेश—बेटी। तुम यह बात क्यों बोलती हो? मुझको तुमने कब दिक किया है ?

सुशीला—आपके पास न रहने से मेरा कल्याण न होगा। कई बातें ऐसी है जो मैं नही समझ सकती। आप मुझे समझा न देंगे तो मै क्या समझूँगी ? कैसे मेरा बेड़ा पार लगेगा ? आप मुझे अपनी बुद्धि का भरोसा करके रहने को कहते हैं— किन्तु मुझमे उतनी बुद्धि नही। मैं मन मे उतना बल भी नहीं पाती। मुझे आप अपने साथ लेते चलिए।

यह कहकर वह परेश बाबू की ओर पीठ करके निहुर-कर बक्स मे कपड़े सँवारकर रखने लगी। उसकी आँखो से टप् टप् आँसू गिरने लगे।

[७५]

गौरमोहन ने जब वह काग़ज़ लिखकर हरिमोहिनी के हाथ मे दिया तब उसे जान पड़ा, जैसे उसने सुशीला के

सम्बन्ध मे त्याग-पत्र लिख दिया हो। किन्तु व्यवस्था लिख देने ही से तो बात तय नहीं हो जाती। उसके हृदय ने उस व्यवस्था को एकदम अग्राह्य कर दिया। उस व्यवस्था पर केवल गौरमोहन का नाम अङ्कित था, उसके हृदय का दस्तख़त तो उसमे न था। इसी से उसका हृदय अबाध्य हो रहा। ऐसी अबाध्यता कि उसकी प्रेरणा से उसी रात को गौरमोहन को एक बार सुशीला के घर की ओर दौड़ लगानी पड़ी। किन्तु ठीक उसी समय गिर्जाघर की घड़ी मे दस बज गये, इससे गौरमोहन को होश हो आया कि अब किसी के घर जाकर भेंट करने का समय नहीं। उस रात को वह उस बाग़ मे, जहाँ प्रायश्चित्त की आयोजना की गई थी, न जा सका। उसने कल ख़ूब तड़के वहाँ हाज़िर होने की ख़बर भेज दी।

गौरमोहन बड़े तड़के उठकर गङ्गा के तट पर उस बाग़ मे गया। किन्तु मन को उसने जैसा पवित्र और बलशाली करके प्रायश्चित्त करने की बात स्थिर की थी, वैसी उसके मन की अवस्था न रही।

कितने ही पण्डित और अध्यापक लोग आये हैं और कितने ही अभी आने को हैं। गौरमोहन यथाक्रम सबका स्वागत कर आया। उन्होने गौरमोहन का सनातन धर्म पर अचल विश्वास देख बार-बार उसकी प्रशंसा की।

बाग़ धीरे-धीरे लोगों से भर गया। गौरमोहन चारो ओर घूम-घूमकर सबकी खोज-ख़बर लेने लगा। किन्तु इतनी

भीड़ के बीच गौरमोहन के अन्त:करण मे मानों कोई कह रहा था—अन्याय करते हो, अन्याय करते हो। क्या अन्याय? यह उस समय सोचकर देखने का समय न था। किन्तु वह किसी तरह अपने गम्भीर हृदय का मुँह बन्द नही कर सका। प्रायश्चित्त अनुष्ठान की विपुल आयोजना के बीच उसका हृदय-वासी कोई एक गृह-शत्रु उसके विरुद्ध आज कह रहा था—अन्याय—घोर अन्याय। यह अन्याय नियम की त्रुटि नहीं, मन्त्र का भ्रम नही, शास्त्र की विरुद्धता नही—यह अन्याय प्रकृति के भीतर है। इसलिए गौरमोहन का अन्त:करण इस अनुष्ठान के उद्योग से विमुख हो पड़ा। वह जो कुछ कर रहा था ऊपर के मन से। भीतर उसका मन अनेक आशङ्काओं से भरा था।

समय समीप आया। शामियाना खड़ा करके सभास्थान प्रस्तुत किया गया। गौरमोहन गङ्गास्नान करके कपड़ा बदलने लगा। इसी समय लोगों की भीड़ में एक प्रकार की चञ्चलता फैल गई। मानो चारो ओर क्रमशः एक उद्वेग का स्रोत उमड़ पड़ा। आख़िर अविनाश ने मुँह उदास करके गौरमोहन से कहा—आपके घर से ख़बर आई है कि कृष्ण-दयाल बाबू के मुँह से रक्त जा रहा है। उन्होंने आपको बहुत जल्द ले आने के लिए गाड़ी के साथ आदमी भेजा है।

गौरमोहन झट गाड़ी पर सवार हो उनको देखने गया। अविनाश उसके साथ जाने को उद्यत हुआ। गौरमोहन ने

कहा—तुम सबके स्वागत-सत्कार करने को यहीं रहो। तुम्हारे जाने से यहाँ का काम न चलेगा।

गौरमोहन ने कृष्णदयाल के कमरे मे जाकर देखा, वे बिछौने पर लेटे हैं और आनन्दी उनके पायताने बैठी धीरे-धीरे उनके पैर दाब रही है। गौरमोहन ने उद्विग्न होकर दोनों के मुँह की ओर देखा। कृष्णदयाल ने उसे पास ही रक्खी हुई एक कुरसी पर बैठने का इशारा किया। गौरमोहन बैठ गया।

उसने माँ से पूछा—अब कैसी तबीअत है?

आनन्दी—अब कुछ अच्छे है। एक आदमी अँगरेज़ डाक्टर को बुलाने गया है।

कोठे मे शशिमुखी और एक नौकर था। कृष्णदयाल ने हाथ हिलाकर उन दोनो को कोठे से जाने का सङ्केत किया।

जब देखा कि सब चले गये तब उन्होने चुपचाप आनन्दी के मुँह की ओर देखा और कोमल स्वर मे गौरमोहन से कहा—मेरा समय अब समीप आ गया। इतने दिन तक मैने जो बात तुमसे छिपा रक्खी थी, वह आज न कहने से मेरे सिर का भार मेरे साथ ही जायगा। मै मुक्त न हो सकूँगा।

गौरमोहन का मुँह म्लान हो गया। वह स्थिर होकर बैठ गया। बड़ी देर तक कोई कुछ न बोला।

पीछे कृष्णदयाल ने कहा—गोरा, तब मैं कुछ न मानता था। इसी लिए इतनी बड़ी भूल मुझसे हुई। सच तो यह है कि उसके बाद मेरे लिए भूल सुधारने का कोई मार्ग भी न था।

यह कहकर वे फिर चुप हो रहे। गौरमोहन भी कोई प्रश्न न करके चुपचाप बैठा रहा।

कृष्णादयाल—मैंने समझा था कि कभी तुमसे कहने की आवश्यकता न होगी। जैसे चल रहा है, चला जायगा। किन्तु अब देखता हूँ, न निभेगा। मेरी मृत्यु के अनन्तर तुम मेरा श्राद्ध कैसे करोगे!—यह कहते समय कृष्णादयाल का हृदय मानों कॉप उठा।

इधर असल बात जानने के लिए गोरा अधीर हो उठा था। उसने आनन्दी की ओर देखकर कहा—माँ, तुम्हीं कहो बात क्या है! क्यों मुझे श्राद्ध करने का अधिकार नहीं है?

आनन्दी इतनी देर सिर नीचा किये चुप-चाप बैठी थी—गौरमोहन का प्रश्न सुनकर उसने सिर उठाया और गौरमोहन के मुँह की ओर दृष्टि स्थिर करके कहा—नहीं बेटा, नहीं है।

गौरमोहन ने चकित होकर पूछा—मैं इनका बेटा नहीं हूँ?

आनन्दी—नहीं।

जैसे ज्वालामुखी पहाड़ से आग का गोला निकलता है, वैसे ही गौरमोहन के मुँह से यह शब्द निकला—क्या तुम मेरी माँ भी नहीं हो?

आनन्दी का कलेजा फट गया। उसने रुँधे हुए कण्ठ से कहा—बेटा, तुम मुझ पुत्रहीना के पुत्र हो, तुम गर्भ के बालक से भी बढ़कर मेरे प्यारे हो।

गोरा ने तब कृष्णादयाल के मुँह की ओर देखकर कहा—तो आपने मुझको कहाँ पाया?

कृष्णदयाल—जब सिपाही-विद्रोह हुआ था, उस समय हम इटावे मे थे। तुम्हारी माँ ने बागी सिपाहियों के डर से भागकर रात को हमारे घर मे आश्रय लिया था। तुम्हारे बाप उसके पहले ही लड़ाई मे मारे गये थे, उनका नाम था—

गौरमोहन ने गरजकर कहा—नाम बताने की ज़रूरत नही। मैं नाम जानना नहीं चाहता।

गोरा की उस उत्तेजना से विस्मित होकर कृष्णदयाल ठहर गये। पीछे बोले—वे आयरिश थे। तुम्हारी माँ उसी रात तुमको प्रसव कर मर गई। तब से तुम बराबर पुत्र की भाँति मेरे घर मे पाले-पोसे गये।

एक ही क्षण मे गोरा को अपना जीवन एक अद्भुत स्वप्न की भाँति दीखने लगा। बाल्यावस्था से अब तक उसके जीवन की जो दीवार तैयार होती आ रही थी वह एकबारगी नष्ट हो गई। मै कौन हूँ, कहाँ हूँ, उसका यह ज्ञान जाता रहा। इतने दिन तक मैंने अपने को क्या मानकर क्या किया और अब क्या करूँगा, उसके लिए एक कठिन समस्या हो गई। कहाँ तो वह अपने को आनन्दी का पुत्र मान हिन्दू धर्म का प्रचारक बन बैठा था और कहाँ अब वह एक आयरिश का मातृ-पितृ-हीन बालक है। मानो उसके लिए सृष्टि ही बदल गई, उसके माँ नहीं, बाप नही, देश नही, जाति नहीं, नाम नही, गोत्र नही, देवता नही! उसके पास नही के सिवा और कुछ भी नही। अब मैं क्या करूँ, किस धर्म का अवलम्बन

करूँ, किस ओर अपना लक्ष्य स्थिर करूँ,—यह कुछ भी वह निश्चय न कर सका। वह अपने को एक दिशाहीन अद्भुत शून्य के भीतर सम्प्राप्त देख हक्का-बक्का सा हो गया। उसका मुँह देख कोई उससे और बात कहने का साहस न कर सका।

इसी समय एक पूर्व परिचित बंगाली चिकित्सक के साथ अँगरेज़ डाक्टर (सिविल सर्जन) आ पहुँचा। डाक्टर ने जैसे रोगी की ओर देखा वैसे गौरमोहन की ओर भी देखे बिना न रह सका। सोचा, यह आदमी कौन है! तब भी गौरमोहन के कपार में गङ्गौट मिट्टी का तिलक था और स्नान के बाद जो रेशमी वस्त्र धारण किया था, वह भी पहिरे ही आया था। बदन में कोई कुरता न था सिर्फ़ एक चादर कन्धे पर थी और उसका सारा विशाल शरीर खुला हुआ था।

अपना परिचय पाने के पूर्व यदि गौरमोहन अँगरेज़ डाक्टर को देख पाता तो उसके मन में विद्वेष उत्पन्न हुए बिना न रहता। आज डाक्टर जब रोगी की परीक्षा कर रहा था तब गौरमोहन ने बड़ी उत्सुकता के साथ उसकी ओर देखा। वह बार-बार अपने मन से पूछने लगा, क्या यही आदमी यहाँ सबकी अपेक्षा मेरा आत्मीय है।

डाक्टर ने परीक्षा करके और पूछकर कहा—कोई वैसा बुरा लक्षण तो दिखाई नहीं देता। नाड़ी की गति भी शङ्काजनक नहीं, हृत्पिण्ड में भी कोई विकार मालूम नहीं होता। जो उपद्रव हुआ है, सावधान होकर औषधि-सेवन करने से फिर न होगा।

डाक्टर के चले जाने पर गौरमोहन कुछ न बोलकर कुरसी से उठने को उद्यत हुआ।

डाक्टर के आने से आनन्दी पास के कमरे मे चली गई थी। वह दौड़कर आई और गोरा का हाथ पकड़कर बोली—बेटा! तू मुझ पर क्रोध मत कर, क्रोध करेगा तो मैं प्राण छोड़ दूँगी।

गौर—तुमने इतने दिन तक मुझसे सब हाल क्यों न कहा? कह देती तो तुम्हारी कोई क्षति न होती।

आनन्दी ने सब दोष अपने ऊपर लेकर कहा—तुझको कही खो न बैठूँ, इस भय से मैंने यह अपराध किया है। आख़िर यदि वही हो, अगर तू मुझे आज छोड़कर चला जाय, तो मैं किसी को दोष न दूँगी। तुम्हारा जाना मेरे लिए प्राण-दण्ड होगा। तू जैसे पहले मेरे पास था तैसे अब भी रह।

गौरमोहन सिर्फ़ "माँ" कहकर चुप हो रहा।

गौरमोहन के मुँह से यह माँ सम्बोधन सुनकर इतनी देर के बाद आनन्दी के रुके हुए आँसू टपक पड़े।

गौरमोहन ने कहा—माँ, मैं एक बार परेश बाबू के घर जाऊँगा।

आनन्दी के हृदय का बोझ हल्का हो गया। उसने आँसू पोछकर कहा—जाओ बेटा!

उनके शीघ्र मरने की आशङ्का नही, उधर गोरा के निकट बात भी प्रकट हो गई, इससे कृष्णदयाल बड़े भयभीत हो गये। आख़िर उन्होंने बड़े कातर भाव से कहा—देखो गोरा, इस

बात को किसी के आगे प्रकट करने की आवश्यकता नहीं। केवल तुम समझ-बूझकर काम करो तो जैसे चला जाता था वैसे चला जायगा। कोई कुछ न जानेगा।

गौरमोहन इसका कुछ जवाव न देकर चला गया। कृष्णदयाल से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, यह जानकर वह ख़ुश हुआ।

महिम को आफिस से एकाएक ग़ैरहाज़िर होने का कोई उपाय न था। वह डाक्टर लाने का सब प्रबन्ध करके एक बार केवल साहब से छुट्टी लेने गया था। गौरमोहन ज्योंही घर से बाहर निकला त्योंही महिम सामने मिल गया। उसने पूछा—गोरा, कहाँ जा रहे हो?

गोरा—समाचार अच्छा है। डाक्टर आये थे। कहा, कोई डर नहीं, शीघ्र आराम हो जायगा।

महिम ने बड़ी तसल्ली पाकर कहा—परसों अच्छा मुहूर्त है—शशिमुखी का व्याह उसी दिन कर दूँगा। तुमको कुछ उद्योग करना पड़ेगा। और देखो, विनय को पहले ही साव-धान कर देना जिसमे वह उस दिन न आवे। अविनाश पक्का हिन्दू है। उसने समझाकर कह दिया है, जिसमे उसके व्याह मे वैसे लोग न आने पावें। एक बात और तुमसे अभी कह रखता हूँ। मैं उस दिन अपने आफ़िस के बड़े साहब को नेवता देकर लाऊँगा। तुम उनसे ज़रा सादगी के साथ पेश आना। और कुछ नहीं, सिर्फ़ जरा सिर नवाकर गुड् ईवनिंग सर् कहने से तुम्हारा हिन्दू-शास्त्र दूषित न होगा वल्कि तुम

पण्डितों से व्यवस्था ले लेना। समझते हो न, वे हमारे राजा के सजातीय हैं, उनके आगे अपना अहङ्कार कुछ कम करने से तुम्हारा अपमान न होगा।

महिम की बात का कोई उत्तर न देकर गोरा चला गया।

[७६]

सुशीला जब अपनी आँखो के आँसू छिपाने के लिए बक्स पर झुककर बक्स के भीतर कपड़े सँवारकर रख रही थी, तब ख़बर आई कि गौरमोहन बाबू आये हैं।

सुशीला ने झट आँखे पोछकर अपना काम बड़ी शीघ्रता से कर डाला। इतने मे गौरमोहन घर के भीतर आ गया।

गौरमोहन के माथे मे तब भी तिलक लगा था। रेशमी वस्त्र भी वह उसी तरह पहने हुए था। ऐसे भेष से कोई किसी के घर भेंट करने नहीं जाता। इस ओर उसको ख़याल ही न था। पहले पहल गोरा से जिस दिन भेंट हुई थी उस दिन की बात सुशीला को याद हो आई। वह जानती थी कि उस दिन गौरमोहन विशेषकर युद्ध का बाना पहनकर आया था। तो आज भी यह युद्ध का ही साज तो नहीं है?

गौरमोहन ने आते ही धरती मे माथा टेककर परेश बाबू को प्रणाम किया, और उनके चरणों की धूल अपने सिर में लगा ली। परेश बाबू ने अकचकाकर उसके दोनो हाथ पकड़कर कहा—आओ, आओ, बैठो।

गौरमोहन ने कहा—मेरा अब कोई बन्धन न रहा।

परेश बाबू ने अचम्भे के साथ कहा—कैसा बन्धन ?

गौर—मैं हिन्दू नहीं हूँ।

परेश—हिन्दू नहीं हो?

गौर—जी नहीं, मैं हिन्दू नहीं। आज खबर मिली है कि मैं ग़दर के समय का परित्यक्त बालक हूँ। मेरे बाप आइरिश-मैन थे। भारतवर्ष के उत्तर से दक्खिन तक समस्त देवमन्दिरों का द्वार आज मेरे लिए बन्द है—आज सारे देश के भीतर किसी पंक्ति में, किसी जगह, मुझे भोजन करने के लिए आसन नहीं।

परेश और सुशीला दोनों स्तब्ध हो बैठ रहे। परेश क्या कहकर उसका प्रबोध करें, उनकी समझ में न आया।

गौरमोहन ने कहा—मैं आज कर्मबन्धन से मुक्त हो गया। मैं जो पतित हूँगा, व्रात्य हूँगा, यह डर अब मुझे नहीं। अब पग-पग पर मुझे आचार-अनाचार की बात सोचकर चलना न पड़ेगा।

सुशीला गौरमोहन के मुँह की ओर एकटक दृष्टि से देखती रही।

गौरमोहन ने कहा—परेश बाबू, इतने दिन तक मैंने भारतवर्ष के उद्धार के लिए जी तोड़ परिश्रम किया है, बहुत साधना की है, उस साधना में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा है। उन बाधाओं को दबाकर उद्देश्य की सफलता के हेतु दिन-रात मैंने बड़ी-बड़ी चेष्टाएँ की हैं। जहाँ-जहाँ मेरे मन में शङ्का होती थी वहाँ मैंने श्रद्धा के द्वारा उसे दबाने की

चेष्टा की है। इस श्रद्धा की नींव को खूब मज़बूत करने की चेष्टा मे लगे रहने के कारण मैं कुछ भी काम नही कर सका—मेरी तो एकमात्र साधना वही थी। इसी कारण वास्तविक भारतवर्ष पर सत्य दृष्टि रखकर उसकी सेवा करने जाकर बार-बार डरकर मैं लौट आया हूँ। मैंने एक निष्क-ण्टक निर्विकार भाव का भारतीय दुर्ग निर्माण कर उस अभेद्य क़िले के भीतर अपनी भक्ति को सर्वथा सुरक्षित रखने के लिए इतने दिन से अपने चारों ओर के विरोधी दल के साथ लड़ने मे कोई कसर नही की। आज एक ही घड़ी मे मेरे उस भाव का क़िला स्वप्न की भाँति भूठा हो गया। मै एकाएक कर्म-बन्धन से विमुक्त हो एक बृहत् सत्य के भीतर आ पड़ा हूँ। सारे भारतवर्ष का भला-बुरा, सुख-दु:ख, ज्ञान-अज्ञान, एक-बारगी मेरे हृदय के पास आ पहुँचा है। आज मैं सत्य की सेवा का अधिकारी हुआ हूँ, सत्य का कर्मक्षेत्र मेरे सामने आ पड़ा है। वह मेरे मन के भीतर का क्षेत्र नही है, वह बाहर के इन पचीस करोड़ लोगो का सच्चा कल्याण-क्षेत्र है।

गौरमोहन के इस नवीन अनुभव के प्रबल उत्साह का वेग परेश के मन को आन्दोलित करने लगा। अब वे बैठे न रह सके, कुरसी से उठ खड़े हुए।

गौरमोहन ने कहा—आप मेरी बात ठीक-ठीक समझ रहे हैं न? बहुत दिनो से मै जो होना चाहता था और हो नही सकता था आज मैं वही हुआ हूँ। मै आज सच्चा भारतवर्षीय

हूँ। भारतवर्ष ही मेरा सब कुछ है। आज मैं हिन्दू मुसलमान किरिस्तान, सबको एक नज़र से देख रहा हूँ, किसी समाज के साथ मेरा कोई विरोध नहीं। आज मैं भारतवर्ष की सभी जातियों को अपनी जाति मानता हूँ, सभी के यहाँ बेखटके भोजन कर सकता हूँ, अपने को सबके सुख-दुःख, हानि-लाभ का भागी समझता हूँ। मैंने बङ्गाल के अनेक जिलों में भ्रमण किया है, छोटी से छोटी बस्ती में भी आतिथ्य ग्रहण किया है। मैंने केवल शहरों की ही सभाओं में वक्तृता नहीं दी है; मैं छोटी-छोटी बस्तियों में घूम-घूमकर साधारण जन-मण्डली में भी कितने ही व्याख्यान दे चुका हूँ। किन्तु इतने दिन तक मैं अपने साथ एक छिपा हुआ परदा लिये घूमता था। किसी तरह उसे हटा नहीं सकता था, इसी से मेरे मन में एक बहुत बड़ी शून्यता थी। उस शून्यता को मैंने विविध उपायों से केवल अस्वीकार करने की चेष्टा की परन्तु वास्तव में उसके ऊपर शिल्प रचना करके उसे और भी विशेष रूप से सुन्दर बनाने का ही यत्न किया था। इसका कारण यह है कि मैं भारतवर्ष को प्राणों से भी बढ़कर चाहता हूँ। मैं उसका जो अंश देखता था, उस अंश में कहीं कुछ भी दोष दिखाने का अवकाश मैं कदापि नहीं सह सकता था। आज उन सब शिल्प-रचनाओं की वृथा चेष्टा करने से उद्धार पाकर मैं निश्चिन्त हुआ।

परेश ने कहा—जब सत्य की प्राप्ति होती है तब वह समस्त अभाव और अपूर्णता होने पर भी हमारी आत्मा को

तृप्त करता है, तब उसे झूठे उपकरण से सजकर सुन्दर बनाने की इच्छा नहीं होती।

गोरा ने कहा—कल रात को मैंने ईश्वर से प्रार्थना की थी कि आज सबेरे ही मुझे नया जीवन प्राप्त हो। इतने दिनों से अर्थात् बाल्यकाल से लेकर आज तक जो कुछ मिथ्या और अपवित्रता मुझे घेरे हुए है वह मेरा पिण्ड छोड़ दे। परन्तु ईश्वर ने मेरी साधारण प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया, उन्होंने किया क्या कि एकाएक अपना सत्य मेरे हाथ में देकर मुझे चौंका दिया। वे इस प्रकार मेरी अपवित्रता को एक ही बेर में समूल नष्ट कर देंगे, यह मैं स्वप्न में भी न जानता था। आज मैं ऐसा पवित्र हो गया हूँ कि चाण्डाल के घर में भी अपवित्रता होने का मुझे भय नहीं रहा। मैं आज सबेरे ही अपना खुला चित्त लेकर एकबारगी भारत-भूमि की गोद में उपविष्ट हुआ हूँ। माता की गोद किसे कहते हैं; यह इतने दिन बाद भली भाँति मुझे मालूम हुआ।

परेश ने कहा—गौर बाबू, तुमने अपनी माता की गोद में जो अधिकार पाया है, उसमें तुम हमें भी थोड़ी सी जगह दो।

गौर—मैं आज मुक्ति प्राप्त करके पहले आप ही के पास क्यों आया हूँ, आप जानते हैं?

परेश—क्यों?

गौर—इस मुक्ति का मन्त्र आप ही के पास है। इसी लिए आपको अब किसी समाज में स्थान नहीं मिलता। मुझे आप

अपना शिष्य बनावे। आज आप उन्ही देवता का मन्त्र मुझको दें, जो हिन्दू मुसलमान किरिस्तान और ब्राह्म आदि सभी समाजो के देवता हैं—जिनके मन्दिर का द्वार सभी जातियों और सभी व्यक्तियो के लिए सदा खुला रहता है, किसी जाति या किसी व्यक्ति के लिए कभी बन्द नहीं होता—जो केवल हिन्दुओं के ही देवता नहीं, सारे भारतवर्ष के देवता हैं! जो पतितपावन किसी के द्वारा पूजित होने पर भी दूषित नही होते वही आपके उपास्य देव हैं, मुझे भी उन्ही की उपासना की शिक्षा दीजिए।

परेश बाबू के चेहरे पर ईश्वरभक्ति की एक अपूर्व माधुर्यमयी गहरी झलक दिखाई दी। वे नीची आँखें करके चुपचाप खड़े रहे।

इतनी देर पीछे गौरमोहन सुशीला की ओर साकांक्ष हुआ। वह अपनी कुरसी पर प्रस्तर-मूर्ति की भाँति बैठी थी।

गौरमोहन ने हँसकर कहा—सुशीला, मैं अब तुम्हारा गुरु नही। तुम्हारे निकट मेरी अब यही एक प्रार्थना है—तुम मेरा हाथ पकड़कर अपने इन गुरुजी के पास मुझे ले चलो। यह कहकर गौरमोहन ने अपना दहना हाथ आगे बढ़ाया। सुशीला ने झट कुरसी से उठकर अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया। तब गौरमोहन ने सुशीला को लेकर परेश को प्रणाम किया।

परिशिष्ट

गौरमोहन ने सन्ध्या होने पर घर लौटकर देखा—आनन्दी घर के सामने बरामदे मे बैठी है।

गौरमोहन ने उसके पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया। आनन्दी ने उसके माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

गौरमोहन ने कहा—तुम्ही मेरी माँ हो। जिस माँ को मैं ढूँढ़ता फिरता था वह मेरे घर के भीतर ही बैठी है। तुम जाति नही मानती, छूआ-छूत का विचार नही करतीं, किसी को घृणा की दृष्टि से नही देखती—तुम्हीं कल्याण की मूर्ति हो,—तुम्हीं मेरी भारतमाता हो।

माँ, अब अपनी लखमिनिया को बुलाओ। उससे कह दो, मुझे पीने को पानी ला दे।

तब आनन्दी ने गद्गद कण्ठ से मीठे स्वर मे गौरमोहन के कान में कहा—गोरा, अब एक बार विनय को बुलवाती हूँ।